तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, भारत

ऑनलाइन एवं दूरस्थ शिक्षा केंद्र

Accredited with NAAC A Grade

12-B Status from UGC

कार्यक्रम: बी.ए. जैनोलॉजी

विषय: जैन धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप

तृतीय वर्ष – द्वितीय पत्र

विषयानुक्रमणिका

पाठ	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 — जैनागम में वर्णित भूगोल एवं खगोल	**1-34**
पाठ-1 तीन लोक रचना	1-5
पाठ-2 मध्यलोक	6-12
पाठ-3 जम्बूद्वीप	13-22
पाठ-4 जैन ज्योतिर्लोक	23-34
इकाई 2 — पर्यावरण संरक्षण में जैन दर्शन का योगदान	**35-60**
पाठ-1 जैन वाङ्मय में पर्यावरण चेतना	35-39
पाठ-2 पर्यावरण संरक्षण और जैनागम	40-47
पाठ-3 जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	48-53
पाठ-4 जैन संस्कृति और पर्यावरण–एक वैज्ञानिक दृष्टि	54-60
इकाई 3 — स्वस्थ जीवन पद्धति	**61-93**
पाठ-1 जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व	61-66
पाठ-2 मानसिक तनाव से मुक्ति के उपाय	67-72
पाठ-3 मानसिक स्वास्थ्य एवं यौगिक जीवन पद्धति	73-76
पाठ-4 प्राणायाम	77-85
पाठ-5 सूक्ष्म योगासन की 16 विधियाँ	86-93
इकाई 4 — अहिंसात्मक जीवन शैली	**94-128**
पाठ-1 अहिंसक आहार-शाकाहार	94-101
पाठ-2 माँसाहार व अण्डाहार-नैतिक व आध्यात्मिक पतन का कारण	102-108
पाठ-3 रात्रि भोजन का त्याग एवं जलगालन	109-116
पाठ-4 परिवार नियोजन करें-गर्भस्थ शिशु हत्या नहीं	117-120
पाठ-5 मादक पदार्थों से हानियाँ एवं स्वास्थ्यवर्द्धक पेय	121-128
इकाई 5 — जैन सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता	**129-156**
पाठ-1 जैन धर्म और विज्ञान	129-137
पाठ-2 आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि	138-146
पाठ-3 पुनर्जन्म की सिद्धि	147-152
पाठ-4 जैन सिद्धान्तों की व्यापकता	153-156

इकाई–1 जैनागम में वर्णित भूगोल एवं खगोल

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) तीन लोक रचना

(2) मध्यलोक

(3) जम्बूद्वीप

(4) जैन ज्योतिर्लोक

पाठ-1 – तीन लोक रचना

1.1 सर्वज्ञ भगवान से अवलोकित अनंतानंत अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में 343 राजू प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। यह लोकाकाश जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचों द्रव्यों से व्याप्त है। आदि और अन्त से रहित — अनादि, अनंत है, स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। छह द्रव्यों से सहित यह लोकाकाश स्थान निश्चय ही स्वयं प्रधान है। इसकी सब दिशाओं में नियम से अलोकाकाश स्थित है।

इस लोक के 3 भेद हैं–अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।

अधोलोक का आकार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश, मध्यलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के ऊपरी भाग के समान एवं ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के सदृश है। सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र 7 राजू है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण — अधोलोक की ऊँचाई 7 राजु है। इसमें 7 भूमियाँ हैं।

ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई 7 राजु है। इसमें प्रथम स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यंत व्यवस्था है।

अधोलोक के तल भाग में लोक की चौड़ाई 7 राजु है। यह चौड़ाई घटते-घटते मध्यलोक में 1 राजु रह गई है। मध्यलोक से ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मलोक (5वें स्वर्ग) तक 5 राजु हो गई है पुनः ब्रह्मस्वर्ग से ऊपर घटते-घटते सिद्धशिला तक चौड़ाई 1 राजु रह गई। इस प्रकार यह लोक पैर फैलाकर खड़े हुए एवं कमर पर हाथ रखे हुए पुरुष के समान बन गया है।

त्रसनाड़ी — तीनों लोकों के बीचों बीच में 1 राजु चौड़ी-मोटी तथा 14 राजु ऊँची-लम्बी त्रसनाड़ी है।

इस त्रसनाड़ी में ही त्रसजीव-दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। शेष सम्पूर्ण लोक में स्थावर — एकेन्द्रिय जीव ही रहते हैं।

1.2 अधोलोक —

अधोलोक में 7 पृथ्वी हैं, उनके नाम — रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा। रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं — खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। इनमें अब्बहुलभाग में नरक हैं।

अधोलोक में सबसे नीचे निगोद स्थान है। वहाँ यह अनादिकाल से एकेन्द्रिय अवस्था में है। वहाँ एक श्वांस में अठारह बार जन्म मरण होता है। इतनी तुच्छ — अल्प आयु है। हम और आप सभी वहीं से आकर त्रस पर्याय को प्राप्त कर मनुष्य हुए हैं।

पुनः सातवाँ नरक है। ऐसे नीचे से ऊपर क्रम से छठा, पाँचवाँ, चौथा, तीसरा, दूसरा एवं पहला नरक है। इन नरकों में नारकी जीव प्रतिक्षण दुःख भोग रहे हैं। आरे से चीरे जाना, कढ़ाई में तले जाना, तिल-तिल बराबर टुकड़े किये जाना आदि कष्ट आपस में एक-दूसरे को देते रहते हैं। जो यहाँ हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, शिकार, परस्त्रीसेवन आदि पाप करते हैं। वे नरकों में जाकर दुःख भोगते हैं। इन नारकियों के दुःखों को देखकर आप पाप न करने की प्रतिज्ञा करें।

अधोलोक में प्रथम पृथ्वी के तीन भाग में से खरभाग में भवनवासी देवों के भवन हैं। भवनवासी देवों के 10 भेद हैं —

असुरकुमार आदि। इनके क्रमशः 64 लाख आदि भवन हैं। प्रत्येक भवनों में विशाल जिनमंदिर हैं। इन प्रत्येक भवनवासी देवों में इंद्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक ऐसे दश भेद माने हैं।

भवनवासी के 10 भेद एवं उनके विमानों की संख्या

भवनवासी के 10 भेद	*विमान संख्या*
1. असुर कुमार के	64 लाख
2. नाग कुमार के	84 लाख
3. सुपर्ण कुमार के	72 लाख
4. द्वीप कुमार के	76 लाख
5. उदधि कुमार के	76 लाख
6. स्तनित कुमार के	76 लाख
7. विद्युत्कुमार के	76 लाख
8. दिक्कुमार के	76 लाख
9. अग्नि कुमार के	76 लाख
10. वायु कुमार के	96 लाख

इन भवनवासी के 10 भेदों में एक-एक में इन्द्र के भवन में ओलगशाला के आगे एक-एक चैत्यवृक्ष हैं। असुरकुमारेन्द्र का चैत्यवृक्ष पीपल है। इसकी कटनी पर जिनप्रतिमाएँ हैं। ऐसे ही नागकुमारेन्द्र का सप्तपर्ण, सुपर्णकुमार का शाल्मलि, द्वीपकुमार का जामुन, उदधिकुमार का वेंतस, स्तनितकुमार का कदंब, विद्युत्कुमार का प्रियंगु, दिक्कुमार का शिरीष, अग्निकुमार का पलाश और वायुकुमार का चिरोंजी चैत्यवृक्ष है।

कुल मिलाकर भवनवासी देवों के भवन 7 करोड़ 72 लाख हैं। इन प्रत्येक भवनों में 1-1 जिनमंदिर हैं। अतः भवनवासी के 7,72,00,000 जिनमंदिर हैं। इनके चैत्यवृक्षों में भी जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

अधोलोक के खरभाग में असुरकुमार को छोड़कर शेष 9 प्रकार के देवों के 7 करोड़ 8 लाख भवन हैं।

द्वितीय पंकभाग में असुरकुमार के 64 लाख भवन हैं।

व्यंतर देवों के भेद व भवन आदि—व्यंतर देव के किन्नर, किंपुरुष आदि 8 भेद हैं। प्रत्येक के असंख्यातों भवन हैं। इनके भवन, भवनपुर और आवास ऐसे तीन प्रकार के स्थान माने गये हैं। अधोलोक के खरभाग में राक्षस को छोड़कर सात प्रकार के व्यंतर देवों के भवन हैं तथा पंकभाग में राक्षस जाति के व्यंतर देवों के भवन हैं।

मध्यलोक में द्वीप, समुद्रों में इनके भवनपुर हैं एवं पर्वत, सरोवर, वृक्ष आदि के ऊपर इनके आवास माने गये हैं। ये सभी व्यंतरदेव असंख्यातों हैं।

व्यंतर देवों के 8 भेद के नाम—1. किन्नर देव, 2. किंपुरुष देव, 3. महोरग देव, 4. गंधर्व देव, 5. यक्ष देव, 6. राक्षस देव, 7. भूतदेव, 8. पिशाच देव

इन व्यंतर देवों के इंद्रों के महल के आगे चैत्यवृक्ष माने गये हैं। किन्नरेंद्र का चैत्यवृक्ष अशोक, किंपुरुषेन्द्र का चंपक, महोरगेंद्र का नागद्रुम, गंधर्वेन्द्र का तुंबरु, यक्षेंद्र का वट, राक्षसेंद्र का कंटक, भूतेन्द्र का तुलसी एवं पिशाचेन्द्र का कदंब चैत्यवृक्ष है। इन सभी चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

1.3 मध्यलोक—

एक राजु प्रमाण विस्तृत एवं एक लाख योजन ऊँचा मध्यलोक है। इसमें असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। प्रथम द्वीप का नाम

जंबूद्वीप है। यह एक लाख योजन व्यास वाला, गोल थाली के समान है। इसको चारों तरफ घेरकर लवणसमुद्र, उसको चारों तरफ से घेरकर धातकीखण्ड, इसे चारों तरफ से घेरकर कालोदधि समुद्र, इसे घेरकर पुष्करद्वीप आदि द्वीप-समुद्र हैं।

तेरहद्वीप समुद्रों के नाम

जंबूद्वीप	—	लवण समुद्र
धातकीखण्ड द्वीप	—	कालोदधि समुद्र
पुष्करवर द्वीप	—	पुष्कवर समुद्र
वारुणीवरद्वीप	—	वारुणीवर समुद्र
क्षीरवर द्वीप	—	क्षीरवर समुद्र
घृतवर द्वीप	—	घृतवर समुद्र
क्षौद्रवर द्वीप	—	क्षौद्रवर समुद्र
नंदीश्वर द्वीप	—	नंदीश्वर समुद्र
अरुणवर द्वीप	—	अरुणवर समुद्र
अरुणाभास द्वीप	—	अरुणाभास समुद्र
कुण्डलवर द्वीप	—	कुण्डलवर समुद्र
शंखवर द्वीप	—	शंखवर समुद्र
रुचकवर द्वीप	—	रुचकवर समुद्र

ऐसे असंख्यातों द्वीप-समुद्रों के बाद अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप एवं स्वयंभूरमण समुद्र है। इस मध्यलोक में ढाईद्वीप तक कर्मभूमि है। यहीं तक मनुष्य हैं। आगे सभी द्वीपों में तिर्यंच-युगल रहते हैं। अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप में बीचों-बीच में स्वयंप्रभ पर्वत है। उसके इधर तक तिर्यंचों की भोगभूमि है पुनः आधे स्वयंभूरमणद्वीप में और पूरे स्वयंभूरमण समुद्र में कर्मभूमियाँ तिर्यंच हैं। इनमें से कोई-कोई तिर्यंच जातिस्मरण अथवा देवों के संबोधन आदि से सम्यक्त्व तथा पाँच अणुव्रत ग्रहणकर देशव्रती बन जाते हैं, वे मरणकर देवगति को प्राप्त कर लेते हैं।

जंबूद्वीप के बीचों-बीच में सुदर्शनमेरु पर्वत है। यह एक लाख योजन ऊँचा है। इसकी चूलिका 40 योजन की है। इसमें हिमवान आदि छह पर्वत, भरतक्षेत्र आदि सात क्षेत्र हैं। इसमें अकृत्रिम 78 जिनमंदिर हैं। सारी रचना आप हस्तिनापुर में खुले मैदान में निर्मित जम्बूद्वीप में देखें।

आगे पुष्कर द्वीप में बीच में चूड़ी के समान आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत है अतः इस द्वीप के दो भाग हो गये। इस तरह जंबूद्वीप, धातकीखण्ड, आधा पुष्कर — पुष्करार्धद्वीप, इस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत के पहले-पहले मनुष्यों के अस्तित्व हैं। यहीं तक पाँच मेरु, 170 कर्मभूमि आदि व्यवस्था है। यहाँ तक 398 अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। इन सबको आप हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप जिनालय में देख सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत से आगे आठवाँ द्वीप — नंदीश्वर द्वीप है। इसमें 52 जिनमंदिर एवं ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप तथा तेरहवें रुचकवर द्वीप के बीच-बीच में कुण्डलवर-रुचकवर पर्वतों पर चार-चार जिनमंदिर, ऐसे 398+52+4+4=458 अकृत्रिम जिनमंदिर मध्यलोक में है। इनके दर्शन आप जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में निर्मित 'तेरहद्वीप रचना' में करें।

1.4 ज्योतिर्लोक —

यहाँ मध्यलोक में चित्रा पृथ्वी से 790 योजन ऊपर आकाश में अधर ज्योतिषी देवों के विमान हैं। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा ऐसे ज्योतिषी देवों के पाँच भेद हैं। ताराओं के विमान भूमि से 31 लाख साठ हजार मील की ऊँचाई पर हैं। सूर्य

के विमान 32 लाख, चन्द्रमा के विमान 35 लाख 20 हजार मील की ऊँचाई पर हैं। ये विमान अर्धगोलक के समान हैं। इनमें समतल भाग में बीच में जिनमंदिर व चारों तरफ देवों के भवन बने हुए हैं। सूर्य का विमान 3147 मील का एवं सबसे छोटा तारा का विमान 250 मील का है। ये सूर्य, चन्द्र आदि असंख्यात द्वीप-समुद्रों में असंख्यातों हैं। ढाईद्वीप तक ये सूर्य, चन्द्र आदि मेरु प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते रहते हैं। इसी से दिन-रात का विभाग होता है। ढाईद्वीप से आगे सभी सूर्यादि विमान स्थिर हैं। प्रत्येक में जिनमंदिर होने से ज्योतिषी देवों के जिनमंदिर असंख्यात हैं। इनका विशेष विवरण 'जैन ज्योतिर्लोक' पुस्तक से या त्रिलोकसार आदि से जानें।

1.5 ऊर्ध्वलोक—

सुमेरु की चूलिका के ऊपर एक बालमात्र के अंतर से प्रथम स्वर्ग है। ऊर्ध्वलोक में-16 स्वर्ग, नवग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर हैं। पुनः सबसे ऊपर सिद्धशिला है।

16 स्वर्गों के नाम—

1. सौधर्म—ईशान स्वर्ग
2. सानत्कुमार—माहेन्द्र स्वर्ग
3. ब्रह्म—ब्रह्मोत्तर स्वर्ग
4. लांतव—कापिष्ठ स्वर्ग
5. शुक्र—महाशुक्र स्वर्ग
6. शतार—सहस्रार स्वर्ग
7. आनत—प्राणत स्वर्ग
8. आरण—अच्युत स्वर्ग

ये 16 स्वर्ग दो-दो एक साथ हैं।

सौधर्म स्वर्ग के 32 लाख विमान हैं। ईशान स्वर्ग के 28 लाख, सानत्कुमार के 12 लाख, माहेन्द्र के 8 लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर के 4 लाख, लांतव-कापिष्ठ के 50 हजार, शुक्र-महाशुक्र के 40 हजार, शतार-सहस्रार के 6 हजार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत के 7 सौ विमान हैं। इनमें प्रत्येक इंद्र के महल के आगे वटवृक्ष नाम के चैत्यवृक्ष हैं। इनमें कटनी पर जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। उनके आगे मानस्तंभ हैं।

सोलह स्वर्गों तक देव-देवियाँ दोनों हैं। इनमें इंद्र, सामानिक, पारिषद, त्रायस्त्रिंश, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक ये 10 भेद हैं। 16 स्वर्ग के ऊपर सभी अहमिंद्र हैं। वहाँ देवियाँ नहीं है।

सौधर्म-ईशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इन चार स्वर्गों में ऐसे मानस्तंभ बने हुए हैं, जिनमें रत्नों के पिटारे हैं। वहाँ उनमें तीर्थंकर भगवन्तों के लिए वस्त्र, अलंकार आदि वस्तुएँ उत्पन्न होती रहती हैं। देवगण वहाँ से लाकर यहाँ तीर्थंकर भगवन्तों को गार्हस्थ्य अवस्था में प्रदान करते हैं।

नवग्रैवेयक के नाम—सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिंकर। इनमें से तीन अधस्तन ग्रैवेयक के 111, तीन मध्यम के 107, तीन उपरिम के 91 विमान हैं।

नवअनुदिश के नाम—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अंक, स्फटिक और आदित्य, ये 1-1 विमान हैं।

पाँच अनुत्तर के नाम—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि, ये भी 1-1 विमान हैं।

ऐसे सौधर्म स्वर्ग से लेकर 32 लाख सब मिलकर 8497023 विमान हैं। इन सबमें 1-1 जिनमंदिर हैं अतः ऊर्ध्वलोक के 84 लाख 97 हजार तेईस जिनमंदिर हैं। प्रत्येक विमान कोई संख्यात योजन के और कोई असंख्यात योजन के हैं। इन सबमें असंख्यातों देव रहते हैं।

स्वर्गों में माता-पिता से जन्म नहीं हैं। वहाँ उपपादशय्या बनी हुई हैं, जिनमें देव 48 मिनट में ही यौवन शरीर प्राप्त कर जन्म लेकर उठकर बैठ जाते हैं। जो हिंसा आदि पापों को छोड़कर देवपूजा, गुरुभक्ति, दान, तीर्थयात्रा, तपश्चरण आदि पुण्य करते हैं। वे देव योनि को प्राप्त करते हैं अतः आपको सदैव पुण्य संपादन करना चाहिए।

1.6 सिद्धशिला—

लोक के अग्रभाग पर मनुष्यलोक ढाईद्वीप प्रमाण विस्तृत 45 लाख योजन प्रमाण सिद्धशिला है। यह मध्य में आठ योजन ऊँची है और क्रम से घटते हुए एक अणु प्रमाण रह गई है। यह "उत्तानचषकमिव[1]"-सीधे रखे हुए कटोरे के समान है। अर्धचंद्र के समान है। ढाईद्वीप से अनादिकाल से लेकर आज तक अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं अतः वहाँ पर एक अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है।

ये सिद्ध भगवान सिद्धशिला के ऊपर घनोदधिवातवलय, घनवातवलय से ऊपर तनुवालवलय में विराजमान हैं। सभी सिद्धों के मस्तक तनुवातवलय के अंतिम भाग से स्पर्शित हैं। आगे लोकाकाश के बाहर धर्मास्तिकाय का अभाव होने से एवं अलोकाकाश में जीव द्रव्य के नहीं होने से सिद्ध भगवान वहीं तक लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं। उन अनंतानंत सिद्धों को हमारा अनंत-अनंत बार नमस्कार होवे।

1.7 नवनिर्मित तीनलोक रचना—

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका शिरामणि ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में तीनलोक रचना का निर्माण हुआ है। जिसमें अधोलोक में नारकी दिखाये गये हैं। इसी अधोलोक में प्रथम पृथ्वी के खरभाग और पंकभाग में भवनवासी के 10 भेद व व्यंतर देवों के 8 भेदों के 1-1 मंदिर ऐसे 10+8=18 मंदिर स्थापित हैं। उन 18 प्रकार के इंद्रों के महल के आगे के प्रतीक में 18 चैत्यवृक्ष हैं। उनमें भी 4-4 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मध्यलोक में-ढाईद्वीप में पाँच मेरु दिखाये गये हैं एवं श्री ऋषभदेव, शांतिनाथ आदि की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ मध्यलोक में मनुष्य और तिर्यंच दिखाये गये हैं। यहीं पर सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र व ताराओं के विमान दिखाये गये हैं।

मध्यलोक के ऊपर सोलह स्वर्गों में 1-1 मंदिर हैं। सौधर्मेन्द्र के महल आदि बने हैं। इंद्र सभा बनाई गई हैं। चैत्यवृक्ष एवं मानस्तंभ तथा नीलांजना आदि नृत्यांगनाएँ हैं। यथास्थान इंद्र-इन्द्राणी, देव-देवियाँ दिखाये गये हैं।

इनसे ऊपर नवग्रैवेयक में नवमंदिर, नव अनुदिश के 9 मंदिर एवं पाँच अनुत्तर के 5 मंदिर हैं। यथास्थान अहमिन्द्र दिखाये गये हैं।

अनंतर सिद्धशिला पर पद्मासन एवं खड्गासन सिद्धप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इस प्रकार यहाँ तीनलोक रचना में अधोलोक में 10+8=18 मंदिर, मध्यलोक में पाँच मेरु में प्रतिमाएँ, मध्यलोक में प्रतिमाएँ एवं सूर्य, चंद्र में प्रतिमा विराजमान हैं। ऊर्ध्वलोक में 16+9+9+5=39 मंदिर हैं। ऐसे 10+8+16+9+9+5=57 मंदिरों में प्रत्येक में 4-4 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

अधोलोक में 18 एवं 16 स्वर्गों में 16 ऐसे 18+16=34 चैत्यवृक्षों में 4-4 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इस प्रकार 57 मंदिर में 57×4=228 पुनः 34 चैत्यवृक्षों की 34×4=136, मध्यलोक में मेरु की 40+2 सूर्य, 2 चंद्र की 4 तथा अन्य 28 प्रतिमाएँ एवं सिद्धशिला की 4 पद्मासन एवं 8 खड्गासन ऐसी 12 प्रतिमाएँ हैं। कुल मिलाकर 228+136+40+4+28+12=448 प्रतिमाएँ तीनलोक रचना में विराजमान हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—तीन लोक कौन-कौन से हैं ? तीन लोक की ऊँचाई और मोटाई कितनी है ?

प्रश्न 2—त्रस नाड़ी की मोटाई और ऊँचाई (लम्बाई) कितनी है ? इसमें कौन से जीव पाये जाते हैं।

प्रश्न 3—अधोलोक की सात नरक पृथ्वियों के क्या नाम हैं ?

प्रश्न 4—भवनवासी देवों के कितने भेद हैं और उनके कुल कितने जिन मंदिर है ?

प्रश्न 5—तीन लोक की प्रतिकृति का निर्माण कहाँ और किनकी प्रेरणा से हुआ।

पाठ-2 – मध्यलोक

2.1 एक राजु लम्बा-चौड़ा और एक लाख योजन ऊँचा मध्यलोक है। इस मध्यलोक में सभी द्वीप और समुद्र असंख्यात हैं। ये सब गोलाकार हैं। इनमें से पहले द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है और अंतिम समुद्र का नाम स्वयंभूरमण समुद्र है। ये सब द्वीप-समुद्र एक दूसरे को वेष्टित किये हुए वलयाकार (चूड़ी के समान आकार के) हैं। इनमें से जो पहला द्वीप है वह थाली के समान आकार वाला है।

सभी समुद्र चित्रा पृथ्वी को खंडित कर वज्रा पृथ्वी के ऊपर हैं। अर्थात् एक हजार योजन गहरे हैं और सभी द्वीप चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं।

प्रथम द्वीप-समुद्र से प्रारम्भ करके सोलह द्वीप और समुद्रों के नाम बताते हैं।

1. जम्बूद्वीप	लवण समुद्र
2. धातकीखण्ड द्वीप	कालोद समुद्र
3. पुष्करवर द्वीप	पुष्करवर समुद्र
4. वारुणीवर द्वीप	वारुणीवर समुद्र
5. क्षीरवर द्वीप	क्षीरवर समुद्र
6. घृतवर द्वीप	घृतवर समुद्र
7. क्षौद्रवर द्वीप	क्षौद्रवर समुद्र
8. नंदीश्वर द्वीप	नंदीश्वर समुद्र
9. अरुणवर द्वीप	अरुणवर समुद्र
10. अरुणाभास द्वीप	अरुणाभास समुद्र
11. कुण्डलवर द्वीप	कुण्डलवर समुद्र
12. शंखवर द्वीप	शंखवर समुद्र
13. रुचकवर द्वीप	रुचकवर समुद्र
14. भुजगवर द्वीप	भुजगवर समुद्र
15. कुशवर द्वीप	कुशवर समुद्र
16. क्रौंचवर द्वीप	क्रौंचवर समुद्र

इस प्रकार सोलह द्वीप और सोलह समुद्रों के नाम बताये हैं। ये सब एक दूसरे को चारों तरफ से घेरे हुए हैं।

2.2 द्वीप समुद्रों का प्रमाण—

इनमें से जम्बूद्वीप का प्रमाण एक लाख योजन है। इसके आगे इस जम्बूद्वीप को वेष्टित किये हुये लवण समुद्र का व्यास दो लाख योजन है। ऐसे ही आगे के द्वीप और समुद्र पहले-पहले से दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

इन बत्तीस द्वीप-समुद्रों के आगे होने वाले असंख्यात द्वीप-समुद्रों के नाम नहीं लिखे जा सकते हैं। अतः अन्त के भी सोलह द्वीप और सोलह समुद्रों के नाम शास्त्र में बताये गये हैं।

2.3 अन्तिम सोलह द्वीप-समुद्रों के नाम–

इन्हें अंतिम समुद्र से प्रारम्भ करने पर देखिये–

1. स्वयंभूरमण समुद्र	स्वयंभूरमण द्वीप

2. अहीन्द्रवर समुद्र	अहीन्द्रवर द्वीप
3. देववर समुद्र	देववर द्वीप
4. यक्षवर समुद्र	यक्षवर द्वीप
5. भूतवर समुद्र	भूतवर द्वीप
6. नागवर समुद्र	नागवर द्वीप
7. वैडूर्य समुद्र	वैडूर्य द्वीप
8. वज्रवर समुद्र	वज्रवर द्वीप
9. कांचन समुद्र	कांचन द्वीप
10. रूप्यवर समुद्र	रूप्यवर द्वीप
11. हिंगुल समुद्र	हिंगुल द्वीप
12. अंजनवर समुद्र	अंजनवर द्वीप
13. श्याम समुद्र	श्याम द्वीप
14. सिंदूर समुद्र	सिंदूर द्वीप
15. हरिताल समुद्र	हरिताल द्वीप
16. मनःशिल समुद्र	मनःशिल द्वीप

ये सोलह समुद्र और सोलह द्वीप हैं। अन्त में स्वयंभूरमण द्वीप है। पुनः उसे वेष्टित कर सबसे अंत में स्वयंभूरमण समुद्र है।

इसलिये सर्वप्रथम तो द्वीप है और अन्त में समुद्र है ऐसा समझना।

इन द्वीपों में किस-किस में क्या-क्या है और समुद्रों में से किस-किस का जल कैसा है ? यह बताते हैं–

2.4 द्वीपों में कहाँ क्या है ?

प्रथम जम्बूद्वीप में, द्वितीय धातकीखण्ड में और तृतीय पुष्करवर द्वीप के आधे भाग में मनुष्यों का आवास है अर्थात् इन ढाई द्वीपों में भोगभूमि और कर्मभूमियों में मनुष्यों का जन्म होता रहता है। पुष्करवर द्वीप के बीचों-बीच में चूड़ी के समान आकार वाला गोलाकार मानुषोत्तर पर्वत है। इससे परे मनुष्यों का निवास नहीं है।

इससे आगे आधे पुष्करवर द्वीप में और समस्त असंख्यात द्वीपों में तथा स्वयंभूरमण द्वीप के आधे भाग में तिर्यंचों का निवास है। ये तिर्यञ्च भोगभूमिज हैं। युगल ही उत्पन्न होते हैं, एक पल्य की उत्कृष्ट आयु प्राप्त करते हैं और अन्त में मरकर देवगति को प्राप्त कर लेते हैं। यथा–

"जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करार्ध और स्वयंभूरमण नामक जो चार द्वीप हैं उनको छोड़कर शेष असंख्यात द्वीपों में उत्पन्न हुए जो पंचेन्द्रिय संज्ञी, पर्याप्तक तिर्यंच जीव हैं वे पल्यप्रमाण आयु से युक्त, दो हजार धनुष ऊँचे, सुकुमार कोमल अंगों वाले, मंदकषायी, फल भोजी हैं। ये युगल-युगल उत्पन्न होकर चतुर्थ भक्त से भोजन करते हैं अर्थात् एक दिन छोड़कर भोजन करते हैं। ये सब मरकर नियम से सुरलोक को जाते हैं। उनकी उत्पत्ति सर्वदर्शियों द्वारा अन्यत्र नहीं कही गई हैं।"

इसके अनन्तर आधे स्वयंभूरमण द्वीप में और स्वयंभूरमण समुद्र में जो तिर्यंच हैं वे कर्मभूमिया कहलाते हैं। अर्थात् स्वयंभूरमण द्वीप में भी बीचों-बीच में चूड़ी के समान आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत के सदृश एक पर्वत है उसका नाम स्वयंप्रभ पर्वत है। इस पर्वत के इधर-उधर भोगभूमिज तिर्यंच हैं और उसके परे कर्मभूमिज तिर्यंच हैं। भोगभूमिज तिर्यंचों में विकलत्रय जीव (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय) नहीं होते हैं। ये कर्मभूमि में ही होते हैं।

अकृत्रिम जिनमंदिर-जम्बूद्वीप से लेकर तेरहवें रुचकवर द्वीप तक ही अकृत्रिम, अनादिनिधन जिनमंदिर हैं आगे नहीं हैं। इन सब मंदिरों की संख्या 458 है।

2.5 समुद्रों में कहाँ कैसा जल है ?

लवण समुद्र, वारुणीवर समुद्र, घृतवर समुद्र और क्षीरवर समुद्र इन चारों का जल अपने नामों के अनुसार है। अर्थात् लवण समुद्र का जल खारा है, वारुणीवर समुद्र का जल मद्य के समान है, घृतवर समुद्र का जल घी के समान है और क्षीरवर समुद्र का जल दूध के समान है। इसी क्षीरवर समुद्र के जल से तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है।

कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र इन तीनों का जल, जल के सदृश ही स्वाद वाला है। शेष सभी समुद्रों का जल इक्षुरस (ईख—गन्ने के रस) के समान मधुर है।

लवण समुद्र, कालोदधि और स्वयंभूरमण समुद्र में ही जलचर जीव हैं, अन्य किसी समुद्र में नहीं हैं।

2.6 मनुष्य लोक—

त्रसनाली के बहुमध्य भाग में चित्रा पृथ्वी के ऊपर पैंतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तार वाला अतिगोल मनुष्य लोक है। इस मनुष्य लोक की ऊँचाई एक लाख योजन है। इसकी परिधि एक करोड़, ब्यालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनन्चास (1,42,30,249) योजन है। और इसका क्षेत्रफल एक सौ साठ खरब, 9 अरब, 3 करोड़, एक लाख, पच्चीस हजार योजन (160,09,03,01,25000) है।

मनुष्य लोक के द्वीप समुद्र-इस 45 लाख योजन प्रमाण मनुष्य लोक के बीचों-बीच में जम्बूद्वीप है जो कि एक लाख योजन व्यास वाला, गोलाकार है। इसको चारों तरफ से वेष्टित कर दो लाख योजन विस्तृत चूड़ी सदृश आकार वाला लवण समुद्र है। इसे वेष्टित कर चार लाख योजन विस्तृत धातकी खण्ड है। इसे घेर कर आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोद समुद्र है। इसको वेष्टित कर सोलह लाख योजन विस्तृत पुष्करवर द्वीप है। इस द्वीप के ठीक बीच में चूड़ी सदृश आकार वाला एक मानुषोत्तर पर्वत है। इस पर्वत तक ही मनुष्य लोक की सीमा है। इसलिये एक लाख योजन जम्बूद्वीप, दो-दो लाख योजन दोनों तरफ का लवण समुद्र ऐसे चार लाख आदि सभी को जोड़ देने से 1 + 2 + 2 + 4 + 4 + 8 + 8 + 8 + 8 = 45 लाख योजन प्रमाण यह मनुष्य लोक हो जाता है।

ढाई द्वीप, दो समुद्र-इस मनुष्य लोक में एक जम्बूद्वीप, द्वितीय धातकी खण्ड तथा तृतीय पुष्करवर द्वीप का आधा पुष्करार्ध द्वीप ये मिलकर ढाई द्वीप हैं। लवण समुद्र और कालोद समुद्र ये दो समुद्र हैं।

2.7 जम्बूद्वीप-

एक लाख योजन विस्तृत इस जम्बूद्वीप के ठीक बीच में सुदर्शन मेरु पर्वत है। यह एक लाख चालीस योजन ऊँचा है, इसकी नींव एक हजार योजन है और चूलिका 40 योजन है। इसकी चौड़ाई पृथ्वी पर 10 हजार योजन है, घटते हुए अग्रभाग पर 4 योजन मात्र है।

इस जम्बूद्वीप में दक्षिण से लेकर भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं। हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी इन छह पर्वतों से ये सात क्षेत्र विभाजित हैं। इन पर्वतों पर ठीक बीच-बीच में क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंच्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह सरोवर हैं। इन सरोवरों से 14 महानदियाँ निकलती हैं जो कि दो-दो युगल से सात क्षेत्रों में बहती हैं। उनके नाम हैं-गंगा-सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रुप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा।

अकृत्रिम चैत्यालय-सुदर्शन मेरु के 16 + गजदंत के 4 + जम्बू-शाल्मलि वृक्ष के 2 + वक्षार के 16 + विजयार्ध

के 34 + कुलाचलों के 6 ऐसे = 78 अकृत्रिम जिनमंदिर जम्बूद्वीप में हैं।

2.8 धातकीखण्ड–

यह द्वितीय द्वीप चार लाख योजन विस्तृत है। इसके दक्षिण–उत्तर में चार लाख योजन लम्बे, एक हजार योजन चौड़े दो इष्वाकार पर्वत हैं। इनके निमित्त से धातकीखण्ड के पूर्व धातकीखण्ड और पश्चिम धातकीखण्ड ऐसे दो भाग हो गये हैं। दोनों भागों में विजय, अचल नाम के दो सुमेरु पर्वत, भरत, हैमवत आदि सात क्षेत्र, हिमवान् आदि कुलाचल और गंगा आदि महानदियाँ हैं। अतः धातकीखण्ड में प्रत्येक रचना जम्बूद्वीप से दूनी है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ पर क्षेत्र आरे के समान आकार वाले हैं। तथा दो इष्वाकार पर्वत के दो जिन मंदिर अधिक हैं। यहाँ पर जम्बूवृक्ष के स्थान पर धातकी वृक्ष है।

2.9 पुष्करार्ध द्वीप–

पुष्करार्ध द्वीप में भी दक्षिण और उत्तर में आठ लाख योजन लम्बे दो इष्वाकार पर्वत हैं। बाकी शेष रचना धातकी खण्डवत् है। यहाँ पर मेरु के नाम मन्दरमेरु और विद्युन्माली मेरु हैं तथा यहाँ के क्षेत्र भी आरे के समान हैं। यहाँ जम्बूवृक्ष के स्थान पर पुष्कर वृक्ष है। जम्बूद्वीप के क्षेत्र–पर्वतों की जितनी लम्बाई–चौड़ाई आदि है उनकी अपेक्षा धातकीखण्ड के क्षेत्रादि की अधिक है तथा पुष्करार्ध के क्षेत्रादि की उनसे भी अधिक है। जैसे जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र का विष्कम्भ 526 योजन है। धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र का बाह्य विष्कम्भ 18547 योजन है। पुष्करार्ध के भरत क्षेत्र का बाह्य विष्कम्भ 65446 योजन है।

2.10 कुभोगभूमि–

लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट पर 24 और बाह्य तट पर भी 24 द्वीप हैं। इसी तरह कालोद समुद्र के अभ्यन्तर और बाह्य दोनों तट सम्बन्धी 24, 24 द्वीप हैं। कुल मिलाकर 24 + 24 + 24 + 24 = 96 कुमानुष द्वीप हैं। ये सभी द्वीप जल से एक योजन ऊपर हैं।

इनमें जन्म लेने वाले मनुष्य एक जंघा वाले, पूँछ वाले, सींग वाले आदि विकृत आकार के होते हैं।

दिशागत द्वीपों के मनुष्य गुफाओं में निवास करते हैं और वहाँ की अत्यन्त मीठी मिट्टी का भोजन करते हैं। विदिशागत आदि शेष द्वीपों के मनुष्य वृक्षों के नीचे निवास करते हैं और कल्पवृक्षों से प्रदत्त फलों का भोजन करते हैं। यहाँ पर युगलिया स्त्री–पुरुष जन्म लेते हैं और एक पल्य की आयु को भोगकर युगल ही मरण करते हैं। यहाँ की सारी व्यवस्था जघन्य भोगभूमि सदृश है। इन मनुष्यों के जो कान और मुख के आकार पशु आदि के सदृश बताये हैं उनसे अतिरिक्त शेष सारे शरीर का आकार मनुष्य सदृश ही है। इसीलिए ये कुमानुष कहलाते हैं। यहाँ कर्मभूमि में कोई भी जीव कुत्सित पुण्य संचित करके कुमानुष योनि में जन्म ले लेते हैं।[1]

इस प्रकार से ढाई द्वीप और दो समुद्र में भोगभूमि, कुभोगभूमि तथा आर्यखण्ड और म्लेच्छखण्ड तथा विद्याधर श्रेणी की अपेक्षा मनुष्यों के निवास स्थान पाँच प्रकार के हो गये हैं। जम्बूद्वीप में जितनी रचना है संख्या में उसकी अपेक्षा दूनी रचना धातकीखण्ड में तथा वैसी ही पुष्करार्ध में है। जैसे कि जम्बूद्वीप में भोगभूमि 6 हैं, तो धातकीखण्ड में 12 इत्यादि। सबका स्पष्टीकरण—शाश्वत भोगभूमि 6 × 5 = 30 (हैमवत, हरि, देवकुरु, उत्तरकुरु, रम्यक्, हैरण्यवत) शाश्वत कर्मभूमि 32 × 5 = 160 (विदेह सम्बन्धी)।

अशाश्वत भोगभूमि 10 (5 भरत, 5 ऐरावत के आर्यखण्ड में षट्कालपरिवर्तन के 3–3 काल में)।

अशाश्वत कर्मभूमि	10	(5 भरत, 5 ऐरावत के आर्यखण्ड के छह काल परिवर्तन में 3-3 काल में)।
आर्यखण्ड	170	(विदेह 160 + भरत 5 + ऐरावत 5 = 170)
म्लेच्छ खण्ड	850	(यहाँ के मनुष्य क्षेत्र से म्लेच्छ हैं, कुछ मनुष्य जाति और क्रिया से म्लेच्छ नहीं भी हैं)।
विद्याधर श्रेणी	240	(यहाँ के मनुष्य आकाशगामी आदि विद्या से सहित होते हैं)।
कुभोगभूमि	96	(लवण समुद्र की 48 + कालोद समुद्र की 48 = 96)।

2.11 ढाई द्वीप के मुख्य-मुख्य पर्वत-

1. सुमेरु पर्वत	5	2. जम्बू, शाल्मली आदिवृक्ष	10
3. गजदंत	20	4. कुलाचल (हिमवान आदि)	30
5. वक्षार	80	6. विजयार्ध	170
7. वृषभाचल	170	8. इष्वाकार	4
9. नाभिगिरि	20		

2.12 ढाई द्वीप सम्बन्धी अकृत्रिम चैत्यालय 398 निम्न प्रकार हैं-

1. पाँच सुमेरु के	80	2. जम्बू आदि दश वृक्ष के	10
3. बीस गजदंत के	20	4. तीस कुलाचल के	30
5. अस्सी वक्षार के	80	6. एक सौ सत्तर विजयार्ध के	170
7. चार इष्वाकार के	4	8. मानुषोत्तर पर्वत की चार दिशा के	4

2.13 नंदीश्वर द्वीप-

जम्बूद्वीप से आठवाँ द्वीप नंदीश्वर द्वीप है। यह नंदीश्वर द्वीप समुद्र से वेष्टित है। इस द्वीप का मण्डलाकार से विस्तार एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन है। इस द्वीप में पूर्व दिशा में ठीक बीचों-बीच अंजनगिरि नाम का एक पर्वत है। यह 84000 योजन विस्तृत और इतना ही ऊँचा समवृत—गोल है तथा इन्द्रनील मणि से निर्मित है। इस पर्वत के चारों ओर चार दिशाओं में चार द्रह हैं, इन्हें बावड़ी भी कहते हैं। ये द्रह एक लाख योजन विस्तृत चौकोन हैं। इनकी गहराई एक हजार योजन है, इनमें स्वच्छ जल भरा हुआ है, ये जलचर जीवों से रहित हैं। इनमें एक हजार उत्सेध योजन प्रमाण विस्तृत कमल खिल रहे हैं। इन वापियों के नाम दिशा क्रम से नन्दा, नन्दावती, नन्दोत्तरा और नन्दिघोषा हैं। इन वापियों के चारों तरफ चार वन—उद्यान हैं जो कि एक लाख योजन लम्बे और पचास हजार योजन चौड़े हैं। ये पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्रवन हैं। इनमें से प्रत्येक वन में वन के नाम से सहित चैत्यवृक्ष हैं। प्रत्येक वापिका के बहु मध्य भाग में दही के समान वर्ण वाले दधिमुख नाम के उत्तम पर्वत हैं। ये पर्वत दश हजार योजन ऊँचे तथा इतने ही योजन विस्तृत गोल हैं। वापियों के दोनों बाह्य कोनों पर रतिकर नाम के पर्वत हैं। जो कि सुवर्णमय हैं, एक हजार योजन विस्तृत एवं इतने ही योजन ऊँचे हैं।

इस प्रकार पूर्व दिशा सम्बन्धी एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर ऐसे तेरह पर्वत हैं। इन पर्वतों के शिखर पर उत्तम रत्नमय एक-एक जिनेन्द्र मन्दिर स्थित हैं।

जैसे यह पूर्व दिशा के तेरह पर्वतों का वर्णन किया है वैसे ही दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर में भी तेरह-तेरह पर्वत हैं।

उन पर भी एक-एक जिनमंदिर हैं। इस तरह कुल मिलाकर 13 + 13 + 13 + 13 = 52 जिनमंदिर हैं।

जैसे पूर्व दिशा में चार वापियों के क्रम से नंदा आदि नाम हैं। वैसे ही दक्षिण दिशा में अंजनगिरि के चारों ओर जो चार वापियाँ हैं उनके पूर्वादि क्रम से अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका ये नाम हैं। पश्चिम दिशा के अंजनगिरि की चारों दिशाओं में क्रम से विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता ये नाम हैं तथा उत्तर दिशा के अंजनगिरि की चारों दिशागत वापियों के रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा नाम हैं।

चौंसठ वन-इन सोलह वापिकाओं के प्रत्येक के चार-चार वन होने से 16 × 4 = 64 वन हैं। प्रत्येक वन में सुवर्ण तथा रत्नमय एक-एक प्रासाद है। उन पर ध्वजायें फहरा रही हैं। इन प्रासादों की ऊँचाई बासठ योजन और विस्तार इकतीस योजन है तथा लम्बाई भी इकतीस योजन ही है। इन प्रासादों में उत्तम-उत्तम वेदिकायें और गोपुर द्वार हैं। इनमें वन खण्डों के नामों से युक्त व्यंतर देव अपने बहुत से परिवार के साथ रहते हैं।

बावन जिनमंदिर-इस प्रकार नंदीश्वर द्वीप में 4 अंजनगिरि, 16 दधिमुख और 32 रतिकर ये 52 जिनमंदिर हैं। प्रत्येक जिनमंदिर उत्सेध योजन से 100 योजन लम्बे, 50 योजन चौड़े और 75 योजन ऊँचे हैं। प्रत्येक जिनमंदिर में 108-108 गर्भगृह हैं और प्रत्येक गर्भगृह में 500 धनुष ऊँची पद्मासन जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। इन मंदिरों में नाना प्रकार के मंगलघट, धूपघट, सुवर्णमालायें, मणिमालायें, अष्ट मंगलद्रव्य आदि शोभायमान हैं।

इन मन्दिरों में देवगण जल, गंध, पुष्प, तंदुल, उत्तम नैवेद्य, फल, दीप और धूपादि द्रव्यों से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की स्तुतिपूर्वक पूजा करते हैं।

ज्योतिषी, वानव्यंतर, भवनवासी और कल्पवासी देवों की देवियाँ इन जिन भवनों में भक्तिपूर्वक नाचती और गाती हैं। बहुत से देवगण भेरी, मर्दल और घण्टा आदि अनेक प्रकार के दिव्य बाजों को बजाते रहते हैं।

इस नंदीश्वर द्वीप में प्रत्येक वर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक चारों प्रकार के देवगण आते हैं और भक्ति से अखण्ड पूजा करते हैं।

2.14 कुंडलवरद्वीप-रुचकवर द्वीप-

कुंडलवर नाम से यह ग्यारहवाँ द्वीप है। इसके ठीक बीच में चूड़ी के समान आकार वाला एक कुण्डलवर पर्वत है। इस पर्वत पर चारों दिशाओं में एक-एक जिनमंदिर हैं। अतः वहाँ चार जिनमंदिर हैं। ऐसे तेरहवाँ द्वीप रुचकवर नाम का है। वहाँ पर भी ठीक बीच में चूड़ी के समान आकार वाला एक रुचकवर पर्वत है। उस पर भी चारों दिशाओं में एक-एक जिनमंदिर होने से वहाँ के भी जिनमंदिर चार हैं। इस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत से बाहर में नंदीश्वर के 52 + कुण्डलवर के 4 + रुचकवर के 4 ऐसे = 60 जिनमंदिर हैं तथा मनुष्यलोक के मानुषोत्तर पर्वत तक 398 जिनमंदिर हैं। ये सब 398 + 60 = 458 अकृत्रिम, अनादिनिधन जिनमंदिर हैं। इस तेरहवें द्वीप से आगे असंख्यात द्वीप-समुद्रों में अन्यत्र कहीं भी स्वतन्त्र रूप से अकृत्रिम जिनमंदिर नहीं हैं। हाँ, सर्वत्र व्यंतर देव और ज्योतिषी देवों के घरों में अकृत्रिम जिनमंदिर अवश्य हैं, वे सब गणनातीत हैं।

2.15 मध्यलोक के सम्पूर्ण अकृत्रिम चैत्यालय-

जम्बूद्वीप के समान ही धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में 2-2 मेरू के निमित्त से सारी रचना दूनी-दूनी होने से चैत्यालय भी दूने-दूने हैं। धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में 2-2 इष्वाकार पर्वत पर 2-2 चैत्यालय हैं। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों ही दिशाओं के 4 चैत्यालय हैं। आठवें नंदीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं के 52 चैत्यालय हैं। 11वें कुण्डलवर द्वीप में स्थित कुण्डलवर पर्वत पर 4 दिशा सम्बन्धी 4 चैत्यालय हैं।

तेरहवें रुचकवर द्वीप में स्थित रुचकवर पर्वत पर चार दिशा सम्बन्धी 4 चैत्यालय हैं। इस प्रकार 458 चैत्यालय

होते हैं। यथा–

जम्बूद्वीप में	78 चैत्यालय
धातकी खण्ड में	156 चैत्यालय
पुष्करार्ध में	156 चैत्यालय
धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध में स्थित इष्वाकार पर्वतों पर	4 चैत्यालय
मानुषोत्तर पर्वत पर	4 चैत्यालय
नंदीश्वर द्वीप में	52 चैत्यालय
कुण्डलगिरि में	4 चैत्यालय
रुचकवरगिरि में	4 चैत्यालय

78 + 156 + 156 + 4 + 4 + 52 + 4 + 4 = 458 चैत्यालय हैं।

2.16 जम्बूद्वीप–हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप रचना में—

1. ढाईद्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं।
2. तेरहद्वीप तक 458 जिनमंदिर में 458 जिन–प्रतिमाएँ हैं।
3. 821 देवभवनों में 821 जिनप्रतिमाएँ हैं।
4. 170 कर्मभूमियों में 170 समवसरण हैं।
5. लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र ये दो समुद्र हैं।
6. एक सिंहासन में 108 जिनप्रतिमाएँ हैं।
7. एक सिंहासन पर श्रीसीमंधर आदि 20 जिन–प्रतिमाएँ हैं।
8. एक सिंहासन पर ऋषभदेव आदि 24 जिन–प्रतिमाएँ हैं।
9. भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र आदि के तीर्थंकरों की शांतिनाथ आदि 16 प्रतिमाएँ हैं।
10. तीस भोगभूमि हैं। दोनों समुद्रों में कुभोगभूमि हैं।
11. इस तेरहद्वीप रचना में 2127 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

2.17 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—मध्यलोक की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है ?

प्रश्न 2—मध्यलोक के प्रथम पाँच द्वीपों के नाम बताइये ?

प्रश्न 3—मनुष्य लोक का विस्तार कितना है, इसमें कौन–कौन से द्वीप समुद्र स्थित हैं ?

प्रश्न 4—ढाईद्वीप सम्बन्धी अकृत्रिम चैत्याल्य कितने व किस प्रकार हैं ?

प्रश्न 5—ढाईद्वीप में शाश्वत व अशाश्वत कर्मभूमियाँ कितनी–2 हैं ?

प्रश्न 6—जम्बूद्वीप परिसर हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप रचना में कुल कितनी प्रतिमाएँ विराजमान हैं ?

पाठ-3 — जम्बूद्वीप

3.1 अनादिसिद्ध अनंतानंत आकाश के मध्य में चौदह राजू ऊँचा, सर्वत्र सात राजू मोटा, तलभाग में पूर्व पश्चिम सात राजू चौड़ा, घटते हुए मध्य में एक राजू चौड़ा, पुनः बढ़ते हुए ब्रह्म स्वर्ग तक पांच राजू चौड़ा और आगे घटते-घटते सिद्धलोक के पास एक राजू चौड़ा ऐसा पुरुषाकार लोकाकाश है।

इसमें मध्यलोक एक राजू चौड़ा और एक लाख चालीस योजन ऊँचा है।

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समूहों से वेष्टित गोल तथा जंबूवृक्ष से युक्त जंबूद्वीप स्थित है। यह एक लाख योजन विस्तार वाला है।

जंबूद्वीप की परिधि — तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन, तीन कोश, एक सौ अट्ठाइस धनुष और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल है अर्थात् योजन 3,16,227 योजन 3 कोश 128 धनुष 13-(1/2) अंगुल है। लगभग 1264908006 मील।

जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल — सात सौ नब्बे करोड़, छप्पन लाख, चौरानवे हजार, एक सौ पचास 790,56,94,150 योजन है अर्थात् तीन नील, सोलह खबर, बाईस अरब, सतहत्तर करोड़, छ्यासठ लाख (3,16,22,77,66,00,000) मील है।

3.2 जम्बूद्वीप के छह कुलाचल-

1. हिमवान — हिमवानपर्वत भरतक्षेत्र की तरफ 14471-5/19 योजन (57885052-12/19 मील) लम्बा है और हैमवत क्षेत्र की तरफ 24932-1/19 योजन (99728210-10/19 मील) लम्बा है। इसकी चौड़ाई 1052-12/19 योजन (4208421(1/19मील) प्रमाण है। ऊंचाई 100 योजन (400000 मील) प्रमाण है।

2. महाहिमवान — यह पर्वत 4210-10/19 योजन (16842105-5/19 मील) विस्तार वाला है। हैमवत की तरफ इसकी लंबाई 37674-16/19 योजन (150699368-8/19 मील) है और हरिक्षेत्र की तरफ इसकी लंबाई 53931-6/19 योजन (215725263-3/19 मील) है। यह पर्वत 200 योजन (800000 मील) ऊँचा है।

3. निषध — यह पर्वत 16842-2/19 योजन (67368000-1/19 मील) विस्तृत है। इसकी हरिक्षेत्र की तरफ लंबाई 73901-17/19 योजन (295604357-17/19 मील) एवं विदेह की तरफ की लंबाई 94156-2/19 योजन (376624421-1/19 मील) है। इसकी ऊंचाई 400 योजन (1600000मील) है।

आगे का **चौथा नील पर्वत** निषध के प्रमाण वाला है। पाँचवां **रुक्मी पर्वत** महाहिमवान सदृश है और **छठा शिखरी पर्वत** हिमवान के प्रमाण वाला है।

पर्वतों के वर्ण — हिमवान् पर्वत का वर्ण सुवर्णमय है आगे क्रम से चांदी, तपाये हुये सुवर्ण, वैडूर्यमणि, चांदी और सुवर्ण सदृश है।

ये पर्वत ऊपर और मूल में समान विस्तार वाले हैं एवं इनके पार्श्वभाग चित्र- विचित्र मणियों से निर्मित हैं।

3.3 कुलाचलों पर छह सरोवर-

1.पद्म सरोवर — यह सरोवर हिमवान् पर्वत के मध्य भाग में है। 500 योजन चौड़ा, इससे दुगुना 1000 योजन लम्बा और 10 योजन गहरा है। इसमें श्रीदेवी निवास करती है। इसकी आयु एक पल्य प्रमाण है।

श्रीदेवी के परिवार कमल — एक लाख चालीस हजार एक सौ पंद्रह (1,40,115) परिवार कमल हैं वे इसी सरोवर में हैं। इन परिवार कमलों की नाल दस योजन प्रमाण है अर्थात् इनकी नाल जल से दो कोश ऊपर नहीं है जल के

बराबर है। इन कमलों का विस्तार आदि मुख्य कमल से आधा-आधा है। इनमें रहने वाले परिवार देवों के भवनों का प्रमाण भी श्रीदेवी के भवन के प्रमाण से आधा है।

2. महापद्म सरोवर—यह सरोवर महाहिमवान् पर्वत पर है। यह 1000 योजन चौड़ा, 2000 योजन लंबा और 20 योजन गहरा है। इसके मध्य में जो मुख्य कमल है वह दो योजन विस्तृत है। इसके मुख्य कमल पर ह्रीदेवी निवास करती है। इसकी आयु भी एक पल्य प्रमाण है।

3.तिगिंछ सरोवर—यह सरोवर निषध पर्वत के मध्य में है। यह 2000 यो. चौड़ा, 4000 योजन लंबा एवं 40 यो. गहरा है। इस सरोवर में जो मुख्य कमल है वह चार योजन विस्तृत है। इसके मुख्य कमल में 'धृतिदेवी' रहती है, इसकी आयु भी एक पल्य की है।

4. केसरी सरोवर—यह सरोवर नील पर्वत पर है। इस सरोवर का सारा वर्णन तिगिंछ के सदृश है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ 'बुद्धि' नाम की देवी निवास करती है।

5. पुंडरीक सरोवर—यह रुक्मी पर्वत पर है। इस सरोवर का सारा वर्णन 'महापद्म' के सदृश है। अन्तर इतना ही है कि इसके कमल पर 'कीर्तिदेवी' निवास करती है।

6. महापुंडरीक—यह शिखरी पर्वत पर है। इस सरोवर का सारा वर्णन पद्म सरोवर के सदृश है। यहाँ 'लक्ष्मी' नाम की देवी रहती है।

विशेष—सरोवरों के चारों ओर वेदिका से वेष्टित वनखण्ड हैं। वे अर्धयोजन चौड़े हैं। सरोवरों के कमल पृथ्वीकायिक हैं, वनस्पतिकायिक नहीं हैं। इनमें बहुत ही उत्तम सुगंधि आती है।

जिनमंदिर—इन सरोवरों में जितने कमल कहे हैं वे महाकमल हैं। इनके अतिरिक्त क्षुद्रकमलों की संख्या बहुत है। इन सब कमलों के भवनों में एक-एक जिनमंदिर है इसलिये जितने कमल हैं उतने ही जिनमंदिर हैं।

3.4 भरतक्षेत्र-

विजयार्ध पर्वत

भरतक्षेत्र के बीच में पूर्व-पश्चिम लंबा विजयार्ध पर्वत है। दक्षिण की तरफ इसकी लम्बाई 9748-11/19 योजन (38994315-15/19) मील है। उत्तर भरत की तरफ इस पर्वत की लंबाई 10720-11/19 योजन (42882315-15/19 मील) है। यह पर्वत 50 योजन (200000मील) चौड़ा और 25 योजन (100000 मील) ऊंचा है।

गंगा-सिंधु नदी

हिमवान पर्वत के पद्म सरोवर की चारों दिशाओं में चार तोरणद्वार हैं। उनमें पूर्व तोरण से गंगा नदी निकलती है। गंगा नदी का निर्गम स्थान वज्रमय है। 6-1/4 योजन (25000 मील) विस्तृत, 1/2 कोस (500 मील) अवगाह से सहित है।

भरतक्षेत्र के छः खंड—बीच के विजयार्ध पर्वत और इन दोनों नदियों के निमित्त से भरतक्षेत्र के छह खंड हो गये हैं। भरत के 526-6/19 योजन (2105263-3/19 मील) में विजयार्ध की चौड़ाई 50 योजन (2,00000 मील) प्रमाण निकल आती है। यथा—(526-6/19-50)÷2=238-3/19 योजन दक्षिण भरत के मध्य का भाग आर्यखंड है और शेष पांच खंड म्लेच्छ खंड हैं अर्थात् दक्षिण भरत 952631-11/19 मील है।

वृषभाचल—उत्तर भरत के मध्य के खंड में एक पर्वत है जिसका नाम 'वृषभ' है। यह पर्वत 100 योजन (4,00000 मील) ऊंचा है, 25 योजन (1,00000 मील) नींव से युक्त, मूल में 100 योजन (4,00000 मील) मध्य में 75 योजन (300000 मील) और उपरिभाग में 50 योजन (2,00000 मील)विस्तार वाला है, गोल है। इस भवन के ऊपर 'वृषभ' नाम से प्रसिद्ध व्यंतर देव का भवन है, उसमें जिनमंदिर है। इस पर्वत के नीचे तथा शिखर पर वेदिका और वनखंड हैं। चक्रवर्ती छह खंड को जीत कर गर्व से युक्त होता हुआ इस पर्वत पर जाकर प्रशस्ति लिखता है। उस समय

इसे सब तरफ प्रशस्तियों से भरा हुआ देखकर सोचता है कि मुझ समान अनंतों चक्रियों ने यह वसुधा भोगी है अतः अभिमानरहित होता हुआ दण्डरत्न से एक प्रशस्ति को मिटाकर अपना नाम पर्वत पर अंकित करता है।

आर्यखण्ड-म्लेच्छ खण्ड की व्यवस्था — भरतक्षेत्र के और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंडों में सुषमासुषमा से लेकर षट्काल परिवर्तन होता रहता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय काल में यहाँ की व्यवस्था में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण ऐसे त्रेसठ शलाका पुरुष जन्म लेते हैं। इस बार यहाँ हुंडावसर्पिणी के दोष से नौ नारद और नौ रुद्र भी उत्पन्न हुए हैं। पुनः पंचम काल और छठा काल आता है। यहाँ अभी पंचम काल चल रहा है। इसमें धर्म का ह्रास होते-होते छठे काल में धर्म नहीं रहता है, प्रायः मनुष्य पाशविक वृत्ति के बन जाते हैं।

विद्याधर की दोनों श्रेणियों की एक सौ दस नगरियों में और पांच म्लेच्छ खंडों में चतुर्थ काल की आदि से लेकर अंत तक काल परिवर्तन होता है।

3.5 हैमवत क्षेत्र–

रोहित-रोहितास्या नदी

पद्म सरोवर के उत्तर तोरण द्वार से 'रोहितास्या' नदी निकल कर दो सौ छियत्तर योजन से कुछ अधिक 276-6/1 योजन (1104000 मील) दूर तक पर्वत के ऊपर बहती है और रोहित् नदी महाहिमवान पर्वत के महापद्म सरोवर के दक्षिण द्वार से निकलकर 1605-5/19 योजन (6421052-12/19 मील) प्रमाण पर्वत पर आकर नीचे गिरती है।

3.6 हरिक्षेत्र–

हरित-हरिकांता नदी

महापद्म सरोवर के उत्तर तोरणद्वार से हरिकांता नदी निकलकर 1605-5/19 योजन प्रमाण (6421052-12/19 मील) पर्वत पर आती है पुनः सौ योजन (400000 मील) पर्वत से दूर ही हरिकांता कुण्ड में गिरती है तथा हरित नदी निषध पर्वत के तिगिंछ सरोवर के दक्षिण तोरणद्वार से निकलकर 7421-1/19 योजन (29684210-10/19 मील)पर्वत पर आकर सौ योजन (400000 मील) पर्वत को छोड़कर ही नीचे हरितकुण्ड में गिरती है। इन दोनों नदियों के उद्गम और प्रवेश के तोरणद्वार, कुण्ड, पर्वत और देवियों के भवनों का प्रमाण तथा नदी की धारा का प्रमाण रोहित नदी से दूना-दूना है, ऐसा समझना।

3.7 जम्बूद्वीप का स्पष्टीकरण–

क्षेत्र तथा कुलाचलों के नाम	विस्तार योजन	विस्तार मील	पर्वतों की ऊँचाई योजन से	पर्वतों की ऊँचाई योजन से	पर्वतों के वर्ण
क्षेत्र भरत	$526\frac{6}{19}$	210563	–	–	–
पर्वत हिमवान	1052	4210526	100	400000	सुवर्ण
क्षेत्र हैमवत	2105	8421052	–	–	–
पर्वत महाहिमवान	4210	16842105	200	800000	रजत
क्षेत्र हरि	8421	33684210	–	–	–
पर्वत निषध	16842	67368421	400	1600000	तपा सोना
क्षेत्र विदेह	33684	134736842	–	–	–

पर्वत नील 16842 67368421 400 1600000 वैडूर्यमणि
क्षेत्र रम्यक 8421 33684210 – – – पर्वत रुक्मी 4210
1684105 200 800000 रजत क्षेत्र हैरण्यवत 2105
8421052 – – – पर्वत शिखरी 1052 4210526 100
400000 सुवर्ण क्षेत्र ऐरावत 526 2105263 – – –

3.8 विदेह क्षेत्र—

सीता-सीतोदा नदी

सीतोदा नदी निषध के तिगिंछ सरोवर के उत्तर तोरण द्वार से निकलकर पर्वत पर 7421–1/19 योजन (29684210–10/19 मील) तक आकर पर्वत को दो सौ योजन (800000 मील) छोड़कर नीचे सीतोदा कुंड में गिरी है। सीता नदी भी नील पर्वत के केसरी सरोवर के दक्षिण तोरणद्वार से निकलकर 7421–1/16 योजन (29684210–10/19 मील) तक पर्वत पर बहकर दो सौ योजन (800000 मील) नीचे पर्वत को छोड़कर सीताकुंड में नीचे गिरी है। ये दोनों नदियां मेरु पर्वत को दो कोस दूर से ही छोड़कर प्रदक्षिणा के आकार की होती हुई विदेह क्षेत्र में चली जाती हैं। सीता नदी पूर्व विदेह में बहती हुई पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है और सीतोदा नदी पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है। सीता–सीतोदा नदियों की परिवार नदियां चौरासी–चौरासी हजार हैं। ये परिवार नदियां देवकुरु–उत्तरकुरु क्षेत्र में ही बहती हैं।

सुमेरु पर्वत-विदेहक्षेत्र के बीचोंबीच में सुमेरु पर्वत है। यह पृथ्वी से 99000 योजन (3960,00000 मील) ऊंचा है। इसकी नींव पृथ्वी के नीचे 1000 योजन (40,00000मील) गहरी है। इसकी चूलिका 40 योजन (160000 मील) है। सुमेरु पर्वत की चार वन है।

1. भद्रसाल वन— सुमेरु पर्वत के चारों तरफ पृथ्वी पर भद्रसाल वन है। यह पूर्व–पश्चिम में 22000 योजन (88000000 मील) है और दक्षिण–उत्तर में 250 योजन (1000000 मील) चौड़ा है। इस भद्रसाल वन में चारों दिशाओं में चार[1] चैत्यालय हैं। ये चैत्यालय सौ योजन लंबे, पचास योजन चौड़े और पचहत्तर योजन ऊंचे हैं। इनका वर्णन त्रिलोकसार आदि में बड़ा ही मनोरम है। इन चैत्यालयों में 108–108 जिनप्रतिमायें हैं, जो बहुत ही सुन्दर हैं। भद्रसाल वन के बाह्य–अभ्यंतर दोनों पार्श्वभाग में वेदिका है जो एक योजन (4000 मील) ऊंची,अर्ध योजन (2000 मील) चौड़ी है।

2. नंदनवन—नंदनवन सर्वत्र पांच सौ योजन (2000000 मील) विस्तृत है। इसकी चारों दिशाओं में भी भद्रसाल वन के चैत्यालय सदृश चार चैत्यालय हैं। नंदन वन में ईशान विदिशा में एक बलभद्र नाम का कूट है।

यह 100 योजन (400000 मील) ऊंचा, 100 योजन चौड़ा और ऊपर में 50 योजन (200000मील) विस्तृत है। नंदनवन में नंदन, मंदर, निषध, हिमवान् ,रजत, रुचक, सागर और वज्र ये आठ कूट हैं। ये सुवर्णमयी, 500 योजन (2000000मील) ऊंचे, 500 योजन (2000000मील) मूल में विस्तृत हैं और 250 योजन (1000000मील) ऊपर में विस्तृत हैं। बलभद्र कूट में बलभद्र नाम का देव और इन कूटों में दिक्कुमारी देवियां रहती हैं।

3. सौमनस वन—सौमनसवन में भी चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं वे प्रमाण में नंदनवन[2] से आधे हैं। वहाँ भी नौ कूट हैं।

4. पांडुकवन—पांडुक वन की चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं जो कि प्रमाण में 100 कोश लंबे, 50 कोश चौड़े और 75 कोश ऊंचे हैं।

पांडुकशिला — इस वन की चारों विदिशाओं में चार शिलायें हैं। ईशान दिशा में पांडुकशिला, आग्नेय में पांडुकंबला, नैऋत्य में रक्ता और वायव्य में रक्तकंबला नाम वाली हैं। ये शिलायें अर्ध चन्द्राकार हैं। 100 योजन (400000 मील) लंबी, 50 योजन (200000मील) चौड़ी और 8 योजन (32000 मील) मोटी हैं। इन शिलाओं के ऊपर बीच में तीर्थंकर के लिये सिंहासन है और उसके आजू-बाजू सौधर्म-ईशान इन्द्र के लिये भद्रासन हैं। ये आसन गोल हैं।

पांडुकशिला पर भरतक्षेत्र के तीर्थंकरों का और पांडुकंबला पर पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का, रक्ता शिला पर पूर्व विदेह के तीर्थंकरों का और रक्तकंबला पर ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

विदेह क्षेत्र का विस्तार — इस विदेहक्षेत्र का विस्तार 33684-4/19 योजन (134736842-2/19 मील) है। इस क्षेत्र के मध्य की लंबाई 100000 योजन (400000000 मील) चालीस करोड़ मील है।

गजदंत पर्वत — भद्रसालवन में मेरु की ईशान दिशा में माल्यवान्, आग्नेय में महासौमनस, नैऋत्य में विद्युत्प्रभ और वायव्य विदिशा में गंधमादन ये चार गजदंत पर्वत हैं। दो पर्वत निषध और मेरु का तथा दो पर्वत नील और मेरु का स्पर्श करते हैं।

बत्तीस विदेह-मेरू की पूर्व दिशा में पूर्वविदेह और पश्चिम दिशा में पश्चिमविदेह हैं। पूर्व विदेह के बीच में सीता नदी है। पश्चिम विदेह के बीच में सीतोदा नदी है। इन दोनों नदियों के दक्षिण-उत्तर तट होने से चार विभाग हो जाते हैं। इन एक-एक विभाग में आठ-आठ विदेह देश हैं।

पूर्व-पश्चिम में भद्रसाल की वेदी है उसके आगे वक्षार पर्वत, उसके आगे विभंगा नदी, उसके आगे वक्षार पर्वत, उसके आगे विभंगा नदी, उसके आगे वक्षार पर्वत, उसके आगे विभंगा नदी, उसके आगे वक्षार पर्वत, उसके आगे देवारण्य व भूतारण्य की वेदी, ये नव हुए। इन नव के बीच-बीच में आठ विदेहदेश हैं। इस प्रकार सीता-सीतोदा के दक्षिण-उत्तर तट संबंधी बत्तीस विदेह हो जाते हैं।

सोलह वक्षार और बारह विभंगा नदियाँ-सीतानदी के उत्तर तट में भद्रसाल की वेदी से लेकर आगे क्रम से चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल ये चार वक्षार पर्वत हैं। गाधवती, द्रहवती,पंकवती ये तीन विभंगा नदियाँ हैं।

सीतानदी के दक्षिण तट में देवारण्य वेदी से लगाकर क्रम से त्रिकूट, वैश्रवण, अंजनात्मा, अंजन ये वक्षारपर्वत और तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला ये तीन विभंगा नदियाँ हैं।

पश्चिम विदेह की सीतोदा नदी के दक्षिण तट में भद्रसाल वेदी से लगाकर क्रम से श्रद्धावान् , विजटावान् , आशीविष, सुखावह ये चार वक्षार और क्षारोदा, सीतोदा, स्रोतोवाहिनी ये तीन विभंगा नदियाँ हैं।

इसी पश्चिम विदेह की सीतोदा नदी के उत्तर तट में देवारण्य की वेदी से लगाकर क्रम से चंद्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल, देवमाल ये चार वक्षार पर्वत हैं। गंभीरमालिनी, फेनमालिनी, ऊर्मिमालिनी ये तीन विभंगा नदियाँ हैं।

देवकुरु-उत्तरकुरु भोगभूमि — मेरु और निषध पर्वत के मध्य में देवकुरु और मेरु तथा नील पर्वत के मध्य में उत्तरकुरु हैं। कुरुक्षेत्र का विस्तार 11842-2/19 योजन (4736421-1/19 मील) प्रमाण है। कुरुक्षेत्रों का वृत्त विस्तार 71143-4/19 योजन (284572842-2/19 मील) तथा एक कला का नौवां अंश (1/19×9) है। कुरुक्षेत्र की जीवा 53000 योजन (212000000 मील) और उसके धनुष का प्रमाण 60418-12/19 योजन (241674526-6/19 मील) प्रमाण है। इसमें उत्तर भोगभूमि की व्यवस्था है।

जंबूवृक्ष — मेरु पर्वत के ईशान कोण में सीता नदी के पूर्व तट पर नील पर्वत के पास में जंबूवृक्ष का स्थल है। यह वृक्ष पृथ्वीकायिक है, जामुन के वृक्ष के समान इनमें फल लटकते हैं अतः यह जंबूवृक्ष कहलाता है

सुमेरु के उत्तर भाग में उत्तरकुरु भोगभूमि है इसमें अर्थात् मेरु की ईशान दिशा में स्थित जंबूवृक्ष और उसकी बारह पद्म वेदिकायें।

शाखा पर जिनमंदिर—जंबूवृक्ष की उत्तरदिशा संबंधी, नील कुलाचल की तरफ जो शाखा है उस शाखा पर जिनमंदिर है।

शाल्मलीवृक्ष—इसी प्रकार सीतोदा नदी के पश्चिम तट में निषध कुलाचल के पास मेरु पर्वत से नैऋत्य दिशा में देवकुरु क्षेत्र में रजतमयी स्थल पर शाल्मलिवृक्ष है। इसका सारा वर्णन जंबूवृक्ष सदृश है। इसकी दक्षिण शाखा पर जिनमंदिर है।

3.9 रम्यक् क्षेत्र—

नारी-नरकांता नदी

इस रम्यक् क्षेत्र का सारा वर्णन हरिक्षेत्र के सदृश है। यहाँ पर नील पर्वत के केसरी सरोवर के उत्तर तोरण द्वार से नरकांता नदी निकली है और रुक्मि पर्वत के महापुंडरीक सरोवर के दक्षिण तोरणद्वार से नारी नदी निकलती है। ये नदियाँ नारी-नरकांता कुंड में गिरती हैं। यहाँ के नाभिगिरि का नाम पद्मवान् है, इस पर पद्म नाम का व्यंतर देव रहता है।

3.10 हैरण्यवत क्षेत्र—

सुवर्णकूला-रूप्यकूला नदी

इस हैरण्यवत क्षेत्र का सारा वर्णन हैमवत क्षेत्र के सदृश है। यहाँ पर रुक्मि पर्वत के महापुंडरीक सरोवर के उत्तर तोरणद्वार से रूप्यकूला नदी एवं शिखरी पर्वत के पुंडरीक सरोवर के दक्षिण तोरणद्वार से सुवर्णकूला नदी निकलती है। यहाँ पर नाभिगिरि का गंधवान् नाम है उस पर प्रभास नाम का देव रहता है।

3.11 ऐरावत क्षेत्र—

रक्ता-रक्तोदा नदी

इस ऐरावत क्षेत्र का सारा वर्णन भरतक्षेत्र के सदृश है। इसमें बीच में विजयार्ध पर्वत है। उस पर नव कूट हैं—सिद्धकूट, उत्तरार्धऐरावत, तमिस्रगुह, माणिभद्र, विजयार्धकुमार, पूर्णभद्र, खंडप्रपात, दक्षिणार्ध ऐरावत और वैश्रवण। यहाँ पर शिखरी पर्वत के पुंडरीक सरोवर के पूर्व-पश्चिम तोरणद्वार से रक्ता-रक्तोदा नदियाँ निकलती हैं जो कि विजयार्ध की गुफा से निकलकर पूर्व-पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं अतः यहाँ पर भी छह खंड हैं। उसमें भी मध्य का आर्यखंड है।

3.12 जंबूद्वीप में तीन सौ ग्यारह पर्वत कहाँ हैं—

सुमेरु पर्वत विदेह के मध्य में है। छह कुलाचल-सात क्षेत्रों की सीमा करते हैं। चार गजदंत मेरु की विदिशा में हैं। सोलह वक्षार विदेह क्षेत्र में हैं। बत्तीस विजयार्ध बत्तीस विदेह देश में हैं और दो विजयार्ध, भरत और ऐरावत में एक-एक हैं अतः चौंतीस विजयार्ध हैं। बत्तीस विदेह के 32, भरत-ऐरावत के दो ऐसे चौंतीस वृषभाचल हैं। हैमवत, हरि तथा रम्यक और हैरण्यवत में एक-एक नाभिगिरि ऐसे चार नाभिगिरि हैं।सीता नदी के पूर्व-पश्चिम तट पर एक-एक ऐसे चार यमकगिरि हैं। देवकुरु-उत्तरकुरु में दो-दो तथा पूर्व-पश्चिम भद्रसाल में दो-दो ऐसे आठ दिग्गज पर्वत हैं। सीता-सीतोदा के बीच बीस सरोवरों में प्रत्येक सरोवर के दोनों तटों पर पाँच-पाँच होने से दो सौ कांचनगिरि हैं।

3.13 जंबूद्वीप की संपूर्ण नदियां कितनी हैं और कहाँ कहाँ हैं?

भरतक्षेत्र की गंगा-सिंधु 2+ इनकी सहायक नदियां 28000+हैमवतक्षेत्र की रोहित-रोहितास्या 2+ इनकी सहायक नदियां 56000+ हरिक्षेत्र की हरित्-हरिकांता 2+ इनकी सहायक 1,12000+ विदेहक्षेत्र की सीता-सीतोदा 2+ इनकी

सहायक 1,68000 (84000×2) + विभंगा नदी 12 + इनकी सहायक 3,36,000 (28000×12) बत्तीस विदेह देशों की गंगा-सिंधु और रक्ता-रक्तोदा नाम की 64+ इनकी सहायक नदियां 896000 (14000×64)। रम्यकक्षेत्र की नारी-नरकांता 2 + इनकी सहायक नदियां 1,12,000+ हैरण्यवत क्षेत्र की सुवर्णकूला 2+ इनकी सहायक 56000+ ऐरावत क्षेत्र की रक्ता-रक्तोदा 2+ इनकी सहायक नदियां 28000= 17,92,090।

अर्थात् सम्पूर्ण जंबूद्वीप में सत्रह लाख, बानवे हजार, नब्बे नदियां हैं। इनमें विदेह की नदियां चौदह लाख, अठहत्तर हैं। सीता-सीतोदा की जो परिवार नदियाँ हैं, वे देवकुरु-उत्तरकुरु में ही बहती हैं। आगे पूर्वविदेह-पश्चिम विदेह में विभंगा तथा गंगा सिंधु और रक्ता-रक्तोदा हैं। जितनी परिवार नदियां हैं वे सभी अपने-अपने कुण्डों से उत्पन्न होती हैं।

3.14 चौंतीस कर्मभूमि–

भरतक्षेत्र के आर्यखंड की एक कर्मभूमि, वैसे ही ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड की एक कर्मभूमि तथा बत्तीस विदेहों के आर्यखंड की 32 कर्मभूमि ऐसे चौंतीस कर्मभूमि हैं। इनमें से भरत-ऐरावत में षट्काल परिवर्तन होने से ये दो अशाश्वत कर्मभूमि हैं एवं विदेहों में सदा ही कर्मभूमि व्यवस्था होने से वे शाश्वत कर्मभूमि हैं।

3.15 छह भोगभूमि आदि–

हैमवत और हैरण्यवत में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है। वहाँ पर मनुष्यों की शरीर की ऊँचाई एक कोस है, एक पल्य आयु है और युगल ही जन्म लेते हैं युगल ही मरते हैं। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से भोग सामग्री प्राप्त करते हैं।

हरिवर्ष क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। वहाँ पर दो कोस ऊँचे, दो पल्य आयु वाले मनुष्य होते हैं। ये भी भोग सामग्री को कल्पवृक्षों से प्राप्त करते हैं।

देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। यहाँ पर तीन कोस ऊंचे, तीन पल्य की आयु वाले मनुष्य होते हैं। ये छहों भोगभूमियां शाश्वत हैं,यहाँ पर परिवर्तन कभी नहीं होता है।

जंबूवृक्ष-शाल्मलिवृक्ष

उत्तरकुरु में ईशान दिशा में जंबूवृक्ष एवं देवकुरु में नैऋत्य दिशा में शाल्मलिवृक्ष हैं।

चौंतीस आर्यखंड

एक भरत में, एक ऐरावत में और बत्तीस विदेहदेशों में बत्तीस ऐसे आर्यखंड चौंतीस हैं।

एक सौ सत्तर म्लेच्छखंड

भरत क्षेत्र के पाँच, ऐरावत क्षेत्र के पाँच और बत्तीस विदेह के प्रत्येक के पाँच-पाँच 5+5+ (32×5) =170 म्लेच्छ खंड हैं।

3.16 इस जंबूद्वीप में हम कहाँ हैं ?—

यह भरतक्षेत्र, जंबूद्वीप के 190 वें भाग (526-6/19) योजन प्रमाण है। इसके छह खंड में जो आर्यखंड है उसका प्रमाण लगभग निम्न प्रकार है।

दक्षिण का भरतक्षेत्र 238-3/19 योजन का है। पद्मसरोवर की लम्बाई 1000 योजन है तथा गंगा-सिंधु नदियां 5-5 सौ योजन पर्वत पर पूर्व-पश्चिम बहकर दक्षिण में मुड़ती हैं। यह आर्यखंड उत्तर-दक्षिण 238 योजन चौड़ा है। पूर्व-पश्चिम में 1000+ 500+500=2000योजन लम्बा है। इनको आपस में गुणा करने से 238×2000 = 4,76,000 योजन प्रमाण आर्यखंड का क्षेत्रफल हो जाता है। इसके मील बनाने से 4,76,000×4000=190,40,00,000 (एक सौ नब्बे करोड़ चालीस लाख) मील प्रमाण क्षेत्रफल हो जाता है।

इस आर्यखण्ड के मध्य में अयोध्या नगरी है। इस अयोध्या के दक्षिण में 119 योजन की दूरी पर लवण समुद्र की वेदी है और उत्तर की तरफ इतनी ही दूर पर विजयार्ध पर्वत की वेदिका है। अयोध्या से पूर्व में 1000 योजन की दूरी पर गंगानदी की तटवेदी है अर्थात् आर्यखंड की दक्षिण दिशा में लवण समुद्र, उत्तर दिशा में विजयार्ध, पूर्व दिशा में गंगा नदी एवं पश्चिम दिशा में सिंधु नदी है ये चारों आर्यखण्ड की सीमारूप हैं।

अयोध्या से दक्षिण में 4,76,000 मील (चार लाख छियत्तर हजार मील) जाने से लवण समुद्र है और उत्तर में, 4,76,000 मील जाने से विजयार्ध पर्वत है। उसी प्रकार अयोध्या से पूर्व में 40,00000 (चालीस लाख) मील दूर गंगानदी तथा पश्चिम में इतनी ही दूर पर सिंधु नदी है।

आज का सारा विश्व इस आर्यखंड में है। हम और आप सभी इस आर्यखंड में ही भारतवर्ष में रहते हैं।

लवणसमुद्र–जंबूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए खाई के सदृश गोल है, इसका विस्तार दो लाख योजन प्रमाण है। एक नाव के ऊपर अधोमुखी दूसरी नाव के रखने से जैसा आकार होता है उसी प्रकार वह समुद्र चारों ओर आकाश में मण्डलाकार से स्थित है। उस समुद्र का विस्तार ऊपर दस हजार योजन और चित्रा पृथ्वी के समभाग में दो लाख योजन है। समुद्र के नीचे दोनों तटों में से प्रत्येक तट से पंचानवे हजार योजन प्रवेश करने पर दोनों और से एक हजार योजन की गहराई में तल विस्तार दस हजार योजन मात्र है।

3.17 जम्बूद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय—

जम्बूद्वीप में 78 अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं यथा–सुमेरू पर्वत सम्बन्धी 16 चैत्यालय हैं।

सुमेरू पर्वत की विदिशा में 4 गज दंत के 4 चैत्यालय हैं।

हिमवदादि षट्कुलाचल के 6 चैत्यालय हैं।

विदेह के 16 वक्षार पर्वतों के 16 चैत्यालय हैं।

32 विदेहस्थ विजयार्ध के 32 चैत्यालय हैं।

भरत, ऐरावत के 2 विजयार्ध के 2 चैत्यालय हैं।

देवकुरू, उत्तर कुरू के जम्बू, शाल्मलि 2 वृक्षों के 2 चैत्यालय हैं।

इस प्रकार 16 + 4 + 6 + 16 + 32 + 2 + 2 = 78 जिन चैत्यालय जम्बूद्वीप सम्बन्धी हैं।

हस्तिनापुर में निर्मित विश्व की प्रथम जम्बूद्वीप रचना में—

1. सुदर्शनमेरु नाम से सुमेरु पर्वत एक है।
2. अकृत्रिम 78 जिनमंदिर में 78 जिनप्रतिमाएँ हैं।
3. 123 देवभवनों में 123 जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं।
4. श्रीसीमंधर आदि तीर्थंकर के 6 समवसरण में चतुर्मुखी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।
5. हिमवान आदि 6 पर्वत हैं।

अतः कुल मिलाकर 78 + 123 + 6 = 207 प्रतिमाएँ विराजमान हैं तथा पर्वतों के गोमुख से नीचे जटाजुट सहित 14 जिनप्रतिमाएँ हैं।

3.18 भूभ्रमण खण्डन—

कोई आधुनिक विद्वान कहते हैं कि जैनियों की मान्यता के अनुसार यह पृथ्वी वलयाकार चपटी गोल नहीं है किन्तु यह पृथ्वी गेंद या नारंगी के समान गोल आकार की है तथा सूर्य, चन्द्र, शनि, शुक्र आदि ग्रह, अश्विनी, भरिणी आदि

नक्षत्रचक्र, मेरु के चारों तरफ प्रदक्षिणारूप से अवस्थित हैं, घूमते नहीं हैं। यह पृथ्वी एक विशेष वायु के निमित्त से ही घूमती है। इस पृथ्वी के घूमने से ही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का उदय, अस्त आदि व्यवहार बन जाता है इत्यादि।

दूसरे कोई वादी पृथ्वी का हमेशा अधोगमन ही मानते हैं एवं कोई-कोई आधुनिक पंडित अपनी बुद्धि में यों मान बैठे हैं कि पृथ्वी दिन पर दिन सूर्य के निकट होती चली जा रही है। इसके विरुद्ध कोई-कोई विद्वान् प्रतिदिन पृथ्वी को सूर्य से दूरतम होती हुई मान रहे हैं। इसी प्रकार कोई-कोई परिपूर्ण जलभाग से पृथ्वी को उदित हुई मानते हैं।

किन्तु उक्त कल्पनायें प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती हैं। थोड़े ही दिनों में परस्पर एक-दूसरे का विरोध करने वाले विद्वान् खड़े हो जाते हैं और पहले-पहले के विद्वान् या ज्योतिष यन्त्र के प्रयोग भी युक्तियों द्वारा बिगाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार छोटे-छोटे परिवर्तन तो दिन-रात होते ही रहते हैं।

भूगोल का वायु के द्वारा भ्रमण मानने पर तो समुद्र, नदी, सरोवर आदि के जल की जो स्थिति देखी जाती है उसमें विरोध आता है।

जैसे कि पाषाण के गोले को घूमता हुआ मानने पर अधिक जल ठहर नहीं सकता है अतः भू अचला ही है भ्रमण नहीं करती है। पृथ्वी तो सतत घूमती रहे और समुद्र आदि का जल सर्वथा जहाँ का तहाँ स्थिर रहे, यह बन नहीं सकता अर्थात् गंगा नदी जैसे हरिद्वार से कलकत्ता की ओर बहती है, पृथ्वी के गोल होने पर उल्टी भी बह जायेगी, समुद्र और कुओं के जल गिर पड़ेगे। घूमती हुई वस्तु पर मोटा अधिक जल नहीं ठहर कर गिरेगा ही गिरेगा।

दूसरी बात यह है कि पृथ्वी स्वयं भारी है। अधःपतन स्वभाव वाले बहुत से जल, बालू, रेत आदि पदार्थ हैं जिनके ऊपर रहने से नारंगी के समान गोल पृथ्वी हमेशा घूमती रहे और यह सब ऊपर ठहरे रहें, पर्वत, समुद्र, शहर, महल आदि जहाँ के तहाँ बने रहें यह बात असंभव है।

यहाँ पुनः कोई भूभ्रमणवादी कहते हैं कि घूमती हुई इस गोल पृथ्वी पर समुद्र आदि के जल को रोके रहने वाली एक वायु है जिसके निमित्त से समुद्र आदि ये सब जहाँ के तहाँ ही स्थिर बने रहते हैं।

इस पर जैनाचार्यों का उत्तर—जो प्रेरक वायु इस पृथ्वी को सर्वदा घुमा रही है, वह वायु इन समुद्र आदि को रोकने वाली वायु का घात नहीं कर देगी क्या ? यह बलवान् प्रेरक वायु तो इस धारक वायु को घुमाकर कहीं फेंक देगी। सर्वत्र ही देखा जाता है कि यदि आकाश में मेघ छाए हैं और हवा जोरों से चलती है तब उस मेघ को धारण करने वाली वायु को विध्वंस करके मेघ को तितर-बितर कर देती है, वे बेचारे मेघ नष्ट हो जाते हैं या देशांतर में प्रयाण कर जाते हैं।

उसी प्रकार अपने बलवान् वेग से हमेशा भूगोल को सब तरफ से घुमाती हुई जो प्रेरक वायु है, वह वहाँ पर स्थित हुए समुद्र, सरोवर आदि को धारने वाली वायु को नष्ट-भ्रष्ट कर ही देगी अतः बलवान् प्रेरक वायु भूगोल को हमेशा घुमाती रहे और जल आदि की धारक वायु वहाँ बनी रहे, यह नितांत असंभव है।

पुनः भूभ्रमणवादी कहते हैं कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है अतएव सभी भारी पदार्थ भूमि के अभिमुख होकर ही गिरते हैं। यदि भूगोल पर से जल गिरेगा तो भी वह पृथ्वी की ओर ही गिरकर वहाँ का वहाँ ही ठहरा रहेगा अतः वह समुद्र आदि अपने-अपने स्थान पर ही स्थिर रहेंगे।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि—आपका कथन ठीक नहीं है। भारी पदार्थों का तो नीचे की ओर गिरना ही दृष्टिगोचर हो रहा है अर्थात् पृथ्वी में एक हाथ का लम्बा चौड़ा गड्ढा करके उस मिट्टी को गड्ढे के एक ओर ढलाऊ ऊँची कर दीजिये। उस पर गेंद रख दीजिये, वह गेंद नीचे की ओर गड्ढे में ही लुढ़क जायेगी। जबकि ऊपर भाग में मिट्टी अधिक है तो विशेष आकर्षण शक्ति के होने से गेंद को ऊपर देश में ही चिपकी रहना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं होता है अतः कहना पड़ता है कि भले ही पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होवे किन्तु उस आकर्षण शक्ति की सामर्थ्य से समुद्र के जलादिकों का घूमती हुई पृथ्वी से तिरछा या दूसरी ओर गिरना नहीं रुक सकता है।

जैसे कि प्रत्यक्ष में नदी, नहर आदि का जल ढलाऊ पृथ्वी की ओर ही यत्र-तत्र किधर भी बहता हुआ देखा जाता है और लोहे के गोलक, फल आदि पदार्थ स्वस्थान से च्युत होने पर गिरने पर नीचे की ओर ही गिरते हैं।

इस प्रकार जो लोग आर्यभट्ट या इटली, यूरोप आदि देशों के वासी विद्वानों की पुस्तकों के अनुसार पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं कि—जैसे अपरिचित स्थान में नौका में बैठा हुआ कोई व्यक्ति नदी पार कर रहा है। उसे नौका तो स्थिर लग रही है और तीरवर्ती वृक्ष, मकान आदि चलते हुए दिख रहे हैं परन्तु यह भ्रम मात्र है, तद्वत् पृथ्वी की स्थिरता की कल्पना भी भ्रममात्र है।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि— साधारण मनुष्य को भी थोड़ा सा ही घूम लेने पर आखों में घूमनी आने लगती है (चक्कर आने लगता है), कभी-कभी खंड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कँपकँपी, मस्तक में भ्रांति होने लग जाती है तो यदि डाकगाड़ी के वेग से भी अधिक वेगरूप पृथ्वी की चाल मानी जायेगी तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर,पुराने ग्रह, कूपजल आदि की क्या व्यवस्था होगी। बुद्धिमान् स्वयं इस बात पर विचार कर सकते हैं।

3.19 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—जम्बूद्वीप का विस्तार कितना है ? इसके छह कुलाचलों के नाम लिखें ?

प्रश्न 2—छह कुलाचलों पर स्थित सरोवरों का नामोल्लेख करें ?

प्रश्न 3—जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों के नाम बताइये ?

प्रश्न 4—जम्बूद्वीप में कुल अकृत्रिम चैत्यालय कितने हैं ?

प्रश्न 5—जम्बूद्वीप की रचना कहाँ और किनकी प्रेरणा से निर्मित हुई है ?

प्रश्न 6—सुदर्शन मेरु की ऊँचाई कितनी है ? इससे सम्बन्धित कितने चैत्यालय हैं ?

पाठ-4 — जैन ज्योतिर्लोक

4.1 इसमें पृथ्वी तल से 790 योजन से लेकर 900 योजन तक की ऊँचाई अर्थात् 110 योजन में स्थित ज्योतिषी देवों के विमानों को बतलाया है। इस विमानों से सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे मय अपने परिवारों के ध्रुवों को छोड़कर अढ़ाई द्वीप में तो सुमेरू पर्वत के चारों ओर परिभ्रमण करते हुए दिखाये गये हैं और इसके बाहर वाले अवस्थित दिखाये गये हैं। पाठ में इन्हीं विमानों की स्थित ऊँचाई और विस्तार का ठीक प्रमाण ग्रन्थान्तरों से देख शोध कर सही लिखा है। सूर्य और चन्द्र विमानों में जिन चैत्यालयों का स्वरूप भी यथावत् संक्षिप्त रूप से बताया गया है। किस देव की कितनी स्थिति है इसे भी पाठ में खोला गया है और किस-किस प्रकार उनका भ्रमण है उस पर भ्झी पूर्ण प्रकाश डाला गया है। सूर्य एवं चन्द्रमा जिन 184 वीथियों में होकर गमन करते हैं उनका प्रमाण शास्त्रोक्त विधि से सही निकाल कर लिखा गया है। जम्बूद्वीप में होने वाले दो सूर्य और दो चन्द्रमा किस प्रकार सुमेरू के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं, उनकी गतियों का माप आधुनिक मान्य माप के आधार पर सही निकाला गया है। रात-दिन का होना, उनका बड़ा-छोटा होना, ऋतुओं का होना, ग्रहण का होना, सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन का होना, इत्यादि सभी खगोल सम्बन्धी तत्त्वों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है।

वर्तमान में वैज्ञानिकों की चन्द्रलोक यात्रा की चर्चा यत्र-तत्र-सर्वत्र ही हो रही है। जैन एवं अजैन, सभी बन्धुगण प्रायः इस चर्चा में बड़ी ही रुचि से भाग ले रहे हैं, जैन सिद्धान्त के अनुसार यह यात्रा कहाँ तक वास्तविक है, इस पाठ को पढ़ने वाले आस्तिक्य बुद्धिधारी पाठकगण स्वयंमेव ही निर्णय कर सकते हैं।

इस विषय पर विशेष ऊहापोह न करके इस पाठ में केवल जैन सिद्धान्त के अनुसार ज्योतिर्लोक का कुछ थोड़ा-सा वर्णन किया जा रहा है।

आज प्रायः बहुत से जैन बन्धुओं को भी यह मालूम नहीं है कि जैन सिद्धान्त में सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रों आदि के विमानों का क्या प्रमाण है एवं वे यहाँ से कितनी ऊँचाई पर हैं इत्यादि ? क्योंकि त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, लोक विभाग, श्लोकवार्तिक, आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय का प्रायः आजकल अभाव सा ही देखा जाता है।

इसीलिए कुछ जैन बन्धु भी भौतिक चकाचौंध में पड़कर वैज्ञानिकों के वाक्यों को ही वास्तविक मान लेते हैं अथवा कोई-कोई बन्धु संशय के झूले में ही झूलने लगते हैं।

वास्तव में वैज्ञानिक लोग तो हमेशा ही किसी भी विषय के अन्वेषण एवं परीक्षण में ही लगे रहते हैं। किसी भी विषय में अंतिम निर्णय देने में वे स्वयं ही असमर्थ हैं। ऐसा वे स्वयं ही लिखा करते हैं।

परन्तु अनादिनिधन जैन सिद्धान्त में परम्परागत सर्वज्ञ भगवान ने सम्पूर्ण जगत को केवलज्ञान रूपी दिव्य चक्षु से प्रत्यक्ष देखकर प्रत्येक वस्तु तत्त्व का वास्तविक वर्णन किया है। उनमें कुछ ऐसे भी विषय हैं, जो कि हम लोगों की बुद्धि एवं जानकारी से परे हैं। उसके लिये कहा है कि-

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः।।

अर्थ — जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया कोई-कोई तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। किसी भी हेतु के द्वारा उसका खण्डन नहीं हो सकता है परन्तु — "जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है" इतने मात्र से ही उस पर श्रद्धान करना चाहिये। क्योंकि "जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं हैं" इस प्रकार की श्रद्धा से जिनका हृदय ओतप्रोत है उन्हीं महानुभावों के लिये यह मेरा प्रयास है।

तथा जो आधुनिक जैन बन्धु या अजैन बन्धु अथवा वैज्ञानिक लोग जो कि मात्र जैनधर्म में "ज्योतिर्लोक के विषय में क्या मान्यता है" यह जानना चाहते हैं, उनके लिये ही संक्षेप से यह विवरण दिया गया है।

4.2 ज्योतिष्क देवों के भेद—

ज्योतिष्क देवों के 5 भेद हैं–1. सूर्य, 2. चन्द्रमा, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र, 5. तारा।

इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं। ये सभी विमान अर्धगोलक के सदृश हैं तथा मणिमय तोरणों से अलंकृत होते हुये निरन्तर देव-देवियों से एवं जिन मंदिरों से सुशोभित रहते हैं। अपने को जो सूर्य, चन्द्र, तारे आदि दिखाई देते हैं यह उनके विमानों का नीचे वाला गोलाकार भाग है।

ये सभी ज्योतिर्वासी देव मेरू पर्वत को 1121 योजन अर्थात् 44,84,000 मील छोड़कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते हैं। इनमें चन्द्रमा एवं सूर्य ग्रह 510 योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में स्थित परिधियों के क्रम से पृथक्-पृथक् गमन करते हैं। परन्तु नक्षत्र और तारे अपनी-अपनी एक परिधि रूप मार्ग में ही गमन करते हैं।

4.3 ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊँचाई का क्रम—

उपरोक्त 5 प्रकार के ज्योतिर्वासी देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से 790 योजन से प्रारम्भ होकर 900 योजन की ऊँचाई तक अर्थात् 110 योजन में स्थित हैं। यथा–इस चित्रा पृथ्वी से 790 योजन के ऊपर प्रथम ही ताराओं के विमान हैं। अनन्तर 10 योजन जाकर अर्थात् पृथ्वीतल से 800 योजन जाकर सूर्य के विमान हैं तथा 80 योजन अर्थात् पृथ्वी तल से 880 योजन (35,20,000 मील) पर चन्द्रमा के विमान हैं।

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊँचाई

विमानों के नाम	(चित्रा पृथ्वी से ऊँचाई)	
	योजन में	मील में
इस पृथ्वी से तारे	790 योजन से ऊपर	3160000 मील पर
इस पृथ्वी से सूर्य	800 योजन से ऊपर	3200000 मील पर
इस पृथ्वी से चन्द्र	880 योजन से ऊपर	3520000 मील पर
इस पृथ्वी से नक्षत्र	884 योजन से ऊपर	3536000 मील पर
इस पृथ्वी से बुध	888 योजन से ऊपर	3552000 मील पर
इस पृथ्वी से शुक्र	891 योजन से ऊपर	3564000 मील पर
इस पृथ्वी से गुरु	894 योजन से ऊपर	3576000 मील पर
इस पृथ्वी से मंगल	897 योजन से ऊपर	3588000 मील पर
इस पृथ्वी से शनि	900 योजन से ऊपर	3600000 मील पर

4.4 सूर्य, चन्द्र आदि के विमानों का प्रमाण—

सूर्य का विमान योजन का है। यदि 1 योजन में 4000 मील के अनुसार गुणा किया जाये तो 3147 मील का होता है एवं चन्द्रमा का विमान योजन अर्थात् 3672 मील का है।

शुक्र का विमान 1 कोश का है। यह बड़ा कोश लघु कोश से 500 गुणा है। अतः 500×2 मील से गुणा करने पर 1000 मील का आता है। इसी प्रकार–

ताराओं के विमानों का सबसे जघन्य प्रमाण कोश अर्थात् 250 मील का है।

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिम्बों का प्रमाण	योजन से	मील से	किरणें
सूर्य	योजन	3147	12000
चन्द्र	योजन	3672	12000
शुक्र	1 कोश	1000	2500
बुध	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम 500 मील	मंद किरणें
मंगल	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम 500 मील	मंद किरणें
शनि	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम 500 मील	मंद किरणें
गुरु	कुछ कम 1 कोश	कुछ कम 1000 मील	मंद किरणें
राहु	कुछ कम 1 योजन	कुछ कम 4000 मील	मंद किरणें
केतु	कुछ कम 1 योजन	कुछ कम 4000 मील	मंद किरणें
तारे	कोश	250 मील	मंद किरणें

BB 41

इन सभी विमानों की बाहल्य (मोटाई) अपने-अपने विमानों के विस्तार से आधी-आधी मानी गयी है।

राहु के विमान चन्द्र विमान के नीचे एवं केतु के विमान सूर्य विमान के नीचे रहते हैं अर्थात् 4 प्रमाणांगुल (2000 उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर चन्द्र-सूर्य के विमान स्थित होकर गमन करते रहते हैं। ये राहु-केतु के विमान 6-6 महीने में पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र एवं सूर्य के विमानों को आच्छादित करते हैं। इसे ही ग्रहण कहते हैं।

4.5 सूर्य, चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन—

सभी ज्योतिर्देवों के विमानों में बीचोंबीच में एक-एक जिनमंदिर है और चारों ओर ज्योतिर्वासी देवों के निवास स्थान बने हैं।

वे जिन भवन समुद्र के सदृश गंभीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग, पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान हैं। उन जिन भवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरों से युक्त जिन प्रतिमायें विराजमान हैं।

उन जिनेन्द्र प्रासादों में श्री देवी व श्रुतदेवी यक्षी एवं सर्वाण्ह व सानत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ भगवान के आजू-बाजू में शोभायमान होती हैं। सब देव गाढ़ भक्ति से जल, चंदन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से परिपूर्ण नित्य ही उनकी पूजा करते हैं।

4.6 ज्योतिष्क देवों की आयु का प्रमाण—

चन्द्रदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य और 1 लाख वर्ष की है।

सूर्यदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य और 1 हजार वर्ष की है।
शुक्रदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य और 100 वर्ष की है।
वृहस्पतिदेव की उत्कृष्ट आयु – 1 पल्य की है।
बुध, मंगल आदि की उत्कृष्ट आयु – आधा पल्य की है।
देवों की तथा ताराओं की उत्कृष्ट आयु – चौथाई पल्य की है।
तथा ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु अपने-अपने पति की आयु से आधा प्रमाण होती है।

4.7 सूर्य के बिम्ब का वर्णन—

सूर्य के विमान 3147 मील के हैं एवं इससे आधे मोटाई लिये हैं तथा अन्य वर्णन उपर्युक्त प्रकार के चन्द्र के विमानों के सदृश ही है। सूर्य की देवियों के नाम–द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा, अर्चिमालिनी ये चार अग्रमहिषी हैं। इन एक-एक देवियों के चार-चार हजार परिवार देवियाँ हैं एवं एक-एक अग्रमहिषी विक्रिया से चार-चार हजार प्रमाण रूप बना सकती हैं।

4.8 बुध आदि ग्रहों का वर्णन—

बुध के विमान स्वर्णमय चमकीले हैं। शीतल एवं मंद किरणों से युक्त हैं। कुछ कम 500 मील के विस्तार वाले हैं तथा उससे आधे मोटाई वाले हैं। पूर्वोक्त चन्द्र, सूर्य विमानों के सदृश ही इनके विमानों में भी जिन मंदिर, वेदी, प्रासाद आदि रचनायें हैं। देवी एवं परिवार देव आदि तथा वैभव उनसे कम अर्थात् अपने-अपने अनुरूप हैं। 2-2 हजार आभियोग्य जाति के देव इन विमानों को ढोते हैं।

शुक्र के विमान उत्तम चांदी से निर्मित 2500 किरणों से युक्त हैं। विमान का विस्तार 1000 मील का एवं बाहल्य (मोटाई) 500 मील की है। अन्य सभी वर्णन पूर्वोक्त प्रकार ही है।

वृहस्पति के विमान स्फटिक मणि से निर्मित सुन्दर मंद किरणों से युक्त कुछ कम 1000 मील विस्तृत एवं इससे आधे मोटाई वाले हैं। देवी एवं परिवार आदि का वर्णन अपने-अपने अनुरूप तथा बाकी मंदिर, प्रासाद आदि का वर्णन पूर्वोक्त ही है।

मंगल के विमान पद्मराग मणि से निर्मित लाल वर्ण वाले हैं। मंद किरणों से युक्त 500 मील विस्तृत, 250 मील बाहल्ययुक्त हैं। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

शनि के विमान स्वर्णमय, 500 मील विस्तृत एवं 250 मील मोटे हैं। अन्य वर्णन पूर्ववत् है।

नक्षत्रों के नगर विविध-विविध रत्नों से निर्मित रमणीय मंद किरणों से युक्त हैं। 1000 मील विस्तृत व 500 मील मोटे हैं। 4-4 हजार वाहन जाति के देव इनके विमानों को ढोते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

ताराओं के विमान उत्तम-उत्तम रत्नों से निर्मित, मंद-मंद किरणों से युक्त 1000 मील विस्तृत, 500 मील मोटाई वाले हैं। इनके सबसे छोटे से छोटे विमान 250 मील विस्तृत एवं इससे आधे बाहल्य वाले हैं।

4.9 सूर्य का गमन क्षेत्र—

पहले यह बताया जा चुका है कि जम्बूद्वीप 1 लाख योजन (100000 × 4000 = 400000000 मील) व्यास वाला है एवं वलयाकार (गोलाकार) है।

सूर्य का गमन क्षेत्र पृथ्वी तल से 800 योजन (800 × 4000 = 3200000 मील) ऊपर जाकर है।

वह इस जम्बूद्वीप के भीतर 180 योजन एवं लवण समुद्र में 330 योजन है अर्थात् समस्त गमन क्षेत्र 510 योजन या 2043147 मील है।

इतने प्रमाण गमन क्षेत्र में 184 गलियाँ हैं। इन गलियों में सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा हैं।

इस 510 योजन के गमन क्षेत्र में सूर्य बिम्ब को एक-एक गली योजन प्रमाण वाली है। एक गली से दूसरी गली का अन्तराल 2-2 योजन का है।

अतः 184 गलियों का प्रमाण × 184 = 144 योजन हुआ। इस प्रमाण को 510 योजन गमन क्षेत्र में से घटाने पर 510 − 144 = 366 योजन कुल गलियों का अंतराल क्षेत्र रहा।

366 योजन में एक कम गलियों का अर्थात् गलियों के अन्तर 183 हैं उसका भाग देने से गलियों के अन्तर का प्रमाण 366 ÷ 183 = 2 योजन (8000 मील) का आता है। इस अन्तर में सूर्य की 1 गली का प्रमाण योजन को मिलाने से सूर्य के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण 2 योजन (11147 मील) का हो जाता है।

इन गलियों में एक-एक गली में दोनों सूर्य आमने-सामने रहते हुये एक दिन रात्रि (30 मुहूर्त) में एक गली के भ्रमण को पूरा करते हैं।

4.10 दोनों सूर्यों का आपस में अंतराल का प्रमाण—

$\frac{99640-10000}{2}$ जब दोनों सूर्य अभयंतर गली में रहते हैं तब आमने-सामने रहने से पहले सूर्य से दूसरे सूर्य का आपस में अन्तर 99640 योजन (398460000 मील) का रहता है एवं प्रथम गली में स्थित सूर्य का मेरू से अन्तर 44820 योजन (179280000 मील) का रहता है।

अर्थात् 1 लाख योजन प्रमाण वाले जम्बूद्वीप में से जम्बूद्वीप सम्बन्धी, दोनों तरफ के सूर्य के गमन क्षेत्र को घटाने से 100000 − 180 × 2 = 99640 योजन आता है तथा इसमें मेरू पर्वत का विस्तार घटाकर शेष को आधा करने से मेरू से प्रथम वीथी में स्थित सूर्य का अन्तर निकलता है। = 44820 योजन (179280000 मील) का होता है।

4.11 सूर्य की अभ्यंतर गली की परिधि का प्रमाण—

अभ्यन्तर (प्रथम) गली की परिधि का प्रमाण 315089 योजन (1260356000 मील) है। इस परिधि का चक्कर (भ्रमण) 2 सूर्य 1 दिन-रात में लगाते हैं। अर्थात् जब 1 सूर्य भरत क्षेत्र में रहता है तब दूसरा सूर्य ठीक सामने ऐरावत क्षेत्र में रहता है। जब 1 सूर्य पूर्व विदेह में रहता है, तब दूसरा पश्चिम विदेह में रहता है। इस प्रकार उपर्युक्त अंतर से (99640 योजन) गमन करते हुये आधी परिधि को 1 सूर्य एवं आधी को दूसरा सूर्य अर्थात् दोनों मिलकर 30 मुहूर्त (24 घण्टे) में 1 परिधि को पूर्ण करते हैं।

पहली गली से दूसरी गली की परिधि का प्रमाण $17\frac{38}{61}$ योजन (4300000 मील) अधिक है। अर्थात् 315089 + 14 = 315106 योजन अधिक-अधिक होता है। यथा–315106 + 17 योजन = 315124 योजन प्रमाण तीसरी गली की परिधि है। इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते मध्य की 92वीं गली की परिधि का प्रमाण–316702 योजन (1266808000 मील) है। तथैव आगे वृद्धिंगत होते हुये अंतिम बाह्य गली की परिधि का प्रमाण–318314 योजन (1273256000 मील) है।

4.12 दिन रात्रि के विभाग का क्रम—

प्रथम गली में सूर्य के रहने पर उस गली की परिधि (315089 योजन) के 10 भाग कीजिये। एक-एक गली में 2-2 सूर्य भ्रमण करते हैं। अतः एक सूर्य के गमन सम्बन्धी 5 भाग हुये। उन 5 भागों में से 2 भागों में अंधकार (रात्रि) एवं 3 भागों में प्रकाश (दिन) होता है। यथा–315089 ÷ 10 = 31508 योजन दसवां भाग (126035600 मील) प्रमाण हुआ। एक सूर्य सम्बन्धी 5 परिधि का आधा 315089 ÷ 2 = 15754 योजन है। उसमें दो भाग में अंधकार एवं 3 भागों में प्रकाश है।

इसी प्रकार से क्रमशः आगे-आगे की वीथियों में प्रकाश घटते-घटते एवं रात्रि बढ़ते-बढ़ते मध्य की गली में दोनों ही (दिन-रात्रि) 2 -2 भाग में समान रूप से हो जाते हैं। पुनः आगे-आगे की गलियों में प्रकाश घटते-घटते तथा अंधकार बढ़ते-बढ़ते अंतिम बाह्य गली में सूर्य के पहुँचने पर 3 भागों में रात्रि एवं 2 भागों में दिन हो जाता है अर्थात् प्रथम गली में सूर्य के रहने से दिन बड़ा एवं अंतिम गली में रहने से छोटा होता है।

इस प्रकार सूर्य के गमन के अनुसार ही भरत-ऐरावत क्षेत्रों में और पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रों में दिन-रात्रि का विभाग होता रहता है।

4.13 छोटे-बड़े दिन होने का विशेष स्पष्टीकरण—

श्रावक मास में जब सूर्य पहली गली में रहता है। उस समय दिन 18 मुहूर्त[1] (14 घंटे 24 मिनट) का एवं रात्रि 12 मुहूर्त (9 घंटे 36 मिनट) की होती है।

पुनः दिन घटने का क्रम–

जब सूर्य प्रथम गली का परिभ्रमण पूर्ण करके दो योजन प्रमाण अंतराल के मार्ग को उल्लंघन कर दूसरी गली में जाता है तब दूसरे दिन दूसरी गली में जाने पर परिधि का प्रमाण बढ़ जाने से एवं मेरू से सूर्य का अंतराल बढ़ जाने से दो मुहूर्त का 61वाँ भाग (1 मिनट) दिन घट जाता है एवं रात्रि बढ़ जाती है। इसी तरह प्रतिदिन दो मुहूर्त के 61वें भाग प्रमाण घटते-घटते मध्यम गली में सूर्य के पहुँचने पर 15 मुहूर्त (12 घंटे) का दिन एवं 15 मुहूर्त की रात्रि हो जाती है।

तथैव प्रतिदिन 2 मुहूर्त के 61वें भाग घटते-घटते अंतिम गली में पहुँचने पर 12 मुहूर्त (9 घंटे 36 मिनट) का दिन एवं 18 मुहूर्त (14 घंटे 24 मिनट) की रात्रि हो जाती है।

जब सूर्य कर्कट राशि में आता है तब अभ्यंतर गली में भ्रमण करता है और जब सूर्य मकर राशि में आता है तब बाह्य गली में भ्रमण करता है।

विशेष–श्रावण मास में जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब 18 मुहूर्त का दिन एवं 12 मुहूर्त की रात्रि होती है। वैशाख एवं कार्तिक मास में जब सूर्य बीचों-बीच की गली में रहता है तब दिन एवं रात्रि 15-15 मुहूर्त (12 घण्टे) के होते हैं।

तथैव माघ मास में सूर्य जब अंतिम गली में रहता है तब 12 मुहूर्त का दिन एवं 18 मुहूर्त की रात्रि होती है।

4.14 दक्षिणायन एवं उत्तरायण—

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जब सूर्य अभ्यंतर मार्ग (गली) में रहता है, तब दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है एवं जब 184वीं (अंतिम गली) में पहुँचता है तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। अतएव 6 महीने में दक्षिणायन एवं 6 महीने में उत्तरायण होता है।

जब दोनों ही सूर्य अंतिम गली में पहुँचते हैं तब दोनों सूर्यों का परस्पर में अन्तर अर्थात् एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अंतराल–100660 योजन (402640000 मील) का रहता है। अर्थात् जम्बूद्वीप 1 लाख योजन है तथा लवण समुद्र में सूर्य का गमन क्षेत्र 330 योजन है उसे दोनों तरफ का लेकर मिलाने पर 100000 + 330 + 330 = 100660 योजन होता है। अंतिम गली से अंतिम गली तक यही अंतर है।

4.15 एक मुहूर्त में सूर्य के गमन का प्रमाण—

जब सूर्य प्रथम गली में रहता है तब एक मुहूर्त में 5251 योजन (210059433 मील) गमन करता है। अर्थात्–प्रथम गली की परिधि का प्रमाण 315089 योजन है। उनमें 60 मुहूर्त का भाग देने से उपर्युक्त संख्या आती है क्योंकि 2 सूर्यों के द्वारा 30 मुहूर्त में 1 परिधि पूर्ण होती है। अतः 1 परिधि के भ्रमण में कुल 60 मुहूर्त लगते हैं। अतएव 60 का भाग दिया जाता है।

उसी प्रकार जब सूर्य बाह्य गली में रहता है तब बाह्य परिधि में 60 का भाग देने से–318314 ÷ 60 = 5305 योजन (21220933 मील) प्रमाण 1 मुहूर्त में गमन करता है।

एक मिनट में सूर्य का गमन

एक मिनट में सूर्य की गति 447623 मील प्रमाण है। अर्थात् 1 मुहूर्त की गति में 48 मिनट का भाग देने से 1 मिनट की गति का प्रमाण आता है। यथा–21220933 ÷ 48 = 447623 योजन ?

4.16 अधिक दिन एवं मास का क्रम—

315089
(460

जब सूर्य एक पथ से दूसरे पथ में प्रवेश करता है तब मध्य के अन्तराल 2 योजन (8000 मील) को पार करते हुये ही जाता है। अतएव इस निमित्त से 1 दिन में 1 मुहूर्त की वृद्धि होने से 1 मास में 30 मुहूर्त (1 अहोरात्र) की वृद्धि होती है। अर्थात् यदि 1 पथ के लांघने में दिन का इकसठवाँ भाग उपलब्ध होता है तो 184 पथों के 183 अंतरालों को लांघने में कितना समय लगेगा– × 183 ÷ 1 = 3 दिन तथा 2 सूर्य सम्बन्धी 6 दिन हुये।

इस प्रकार प्रतिदिन 1 मुहूर्त (48 मिनट) की वृद्धि होने से 1 मास में 1 दिन तथा 1 वर्ष में 12 दिन की वृद्धि हुई एवं इसी क्रम से 2 वर्ष में 24 दिन तथा ढाई वर्ष में 30 दिन (1 मास) की वृद्धि होती है तथा 5 वर्ष (1 युग) में 2 मास अधिक हो जाते हैं।

4.17 चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन—

जब सूर्य पहली गली में आता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। इस समय सूर्य अभ्यंतर गली की परिधि 315089 योजन को 60 मुहूर्त में पूरा करता है। इस गली में सूर्य निषध पर्वत पर उचित होता है वहाँ से उसे अयोध्या नगरी के ऊपर आने में 9 मुहूर्त लगते हैं। अब जब वह 315089 योजन प्रमाण उस वीथी को 60 मुहूर्त में पूर्ण करता है तब वह 9 मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पूरा करेगा। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर– × 9 = 47263 योजन अर्थात् 1890534000 मील होता है।

4.18 पक्ष-मास-वर्ष आदि का प्रमाण—

जितने काल में एक परमाणु आकाश के 1 प्रदेश को लांघता है उतने काल को 1 समय कहते हैं। ऐसे असंख्यात समयों की 1 आवली होती है। अर्थात्–

असंख्यात समयों की 1 आवली
संख्यात आवलियों का 1 उच्छवास
7 उच्छवासों का 1 स्तोक
7 स्तोकों का 1 लव
38 लवों की 1 नाली[1]
2 घटिका का 1 मुहूर्त होता है।

इसी प्रकार 3773 उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है एवं 30 मुहूर्त[2] का 1 दिन-रात होता है अथवा 24 घण्टे का 1 दिन-रात होता है।

15 दिन का 1 पक्ष — 2 पक्ष का 1 मास
2 मास की 1 ऋतु — 3 ऋतुओं का 1 अयन
2 अयन का 1 वर्ष — 5 वर्षों का 1 युग होता है।

प्रति 5 वर्ष के पश्चात् सूर्य श्रावक कृष्णा 1 को पहली गली में आता है।

4.19 दक्षिणायन एवं उत्तरायण का क्रम—

जब सूर्य श्रावक कृष्णा 1 के दिन प्रथम गली में रहता है तब दक्षिणायन होता है एवं उसी वर्ष माघ कृष्णा 7 को उत्तरायन है। तथैव दूसरी वर्ष–

श्रावक कृष्णा 13 को दक्षिणायन एवं माघ शुक्ला 4 को उत्तरायन होता है। तीसरी वर्ष–श्रावक शुक्ला 10 को दक्षिणायन, माघ कृष्णा 1 को उत्तरायन। चौथी वर्ष–श्रावण कृष्णा 7 को दक्षिणायन, माघ कृष्णा 13 को उत्तरायन। पांचवें वर्ष–श्रावण शुक्ला 4 को दक्षिणायन, माघ शुक्ला 10 को उत्तरायन होता है।

पुनः छठे वर्ष से उपरोक्त व्यवस्था प्रारम्भ हो जाती है अर्थात्–पुनः श्रावण कृष्णा 1 के दिन दक्षिणायन एवं माघ कृष्णा 7 को उत्तरायन होता है। इस प्रकार 5 वर्ष में एक युग समाप्त होता है और छठे वर्ष से नया युग प्रारम्भ होता है। इस प्रकार प्रथम वीथी से दक्षिणायन एवं अंतिम वीथी से उत्तरायन होता है।

4.20 सूर्य के 184 गलियों के उदय स्थान—

सूर्य के उदय निषध और नील पर्वत पर 63 हरि और रम्यक क्षेत्रों में 2 तथा लवण समुद्र में 119 हैं। 63 + 2 + 119 = 184 हैं। इस प्रकार 184 उदय स्थान होते हैं।

4.21 चन्द्रमा का विमान, गमन क्षेत्र एवं गलियाँ—

चन्द्र का विमान योजन (3672 मील) व्यास का है। सूर्य के समान चन्द्रमा का भी गमन क्षेत्र 510 योजन है। इस गमन क्षेत्र में चन्द्र की 15 गलियाँ हैं। इनमें वह प्रतिदिन क्रमशः एक-एक गली में गमन करता है। चन्द्र बिम्ब के प्रमाण योजन की ही एक-एक गली हैं अतः समस्त गमन क्षेत्र में चन्द्र बिम्ब प्रमाण 15 गलियों को घटाने से एवं शेष में 1 कम (14) गलियों का भाग देने से एक चन्द्र गली से दूसरी चन्द्र गली के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा–

510 – × 15 = 510 – 13 = 497 योजन

इसमें 14 का भाग देने से–497 ÷ 14 = 35 योजन (142004 मील) प्रमाण एक चन्द्र गली से दूसरी चन्द्र गली का अन्तराल है।

इसी अन्तर में चन्द्र बिम्ब के प्रमाण को जोड़ देने से चन्द्र के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण आता है। यथा–35 + = 36 योजन अर्थात् 145653 मील प्रतिदिन गमन करता है।

इस प्रकार प्रतिदिन दोनों ही चन्द्रमा 1-1 गलियों में आमने-सामने रहते हुये एक-एक गली का परिभ्रमण पूरा करते हैं।

चन्द्र को एक गली के पूरा करने का काल

अपनी गलियों में से किसी भी एक गली में संचार करते हुये चन्द्र को उस परिधि को पूरा करने में 62 मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। अर्थात् एक चन्द्र कुछ कम 25 घण्टे में 1 गली का भ्रमण करता है। सूर्य को 1 गली के भ्रमण में 24 घण्टे एवं चन्द्र को 1 गली के भ्रमण में कुछ कम 25 घण्टे लगते हैं।

चन्द्र का एक मुहूर्त में गमन क्षेत्र

चन्द्रमा की प्रथम वीथी (गली) 315089 योजन की है। उसमें एक गली को पूरा करने का काल 62 मुहूर्त का भाग देने से 1 मुहूर्त की गति का प्रमाण आता है। यथा–315089 ÷ 62 = 5073 योजन एवं 4000 से गुणा करके इसका मील बनाने पर–20294256 मील प्रमाण एक मुहूर्त (48 मिनट) में चन्द्रमा गमन करता है।

एक मिनट में चन्द्रमा का गमन क्षेत्र

इस मुहूर्त प्रमाण गमन क्षेत्र के मील में 48 मिनट का भाग देने से 1 मिनट की गति का प्रमाण आ जाता है। यथा–20294256 ÷ 48 = 422797 मील होता है। अर्थात् चन्द्रमा 1 मिनट में इतने मील गमन करता है।

4.22 कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष का क्रम—

जब यहाँ मनुष्य लोक में चन्द्र बिम्ब पूर्ण दिखता है। उस दिवस का नाम पूर्णिमा है। राहु ग्रह चन्द्र विमान के नीचे गमन करता है और केतु ग्रह सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। राहु और केतु के विमानों के ध्वजा दण्ड के ऊपर चार प्रमाणांगुल (2000 उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर जाकर चन्द्रमा और सूर्य के विमान हैं। राहु और चन्द्रमा अपनी-अपनी गलियों को लांघकर क्रम से जम्बूद्वीप की आग्नेय और वायव्य दिशा से अगली-अगली गली में प्रवेश करते हैं अर्थात् पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी आदि गली में प्रवेश करते हैं।

पहली से दूसरी गली में प्रवेश करने पर चन्द्र मण्डल के 16 भागों में से 1 भाग राहु के गमन विशेष से आच्छादित होता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार राहु प्रतिदिन एक-एक मार्ग में चन्द्र बिम्ब की 15 दिन तक एक-एक कलाओं को ढकता रहता है। इस प्रकार राहु बिम्ब के द्वारा चन्द्र की 1-1 कला का आवरण करने पर जिस मार्ग में चन्द्र की 1 ही कला दिखती है वह अमावस्या का दिन होता है।

फिर वह राहु प्रतिपदा के दिन से प्रत्येक गली में 1-1 कला को छोड़ते हुये पूर्णिमा को पन्द्रहों कलाओं को छोड़ देता है तब चन्द्र बिम्ब पूर्ण दीखने लगता है। उसे ही पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष का विभाग हो जाता है।

4.23 चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण का क्रम—

इस प्रकार 6 मास में पूर्णिमा के दिन चन्द्र विमान पूर्ण आच्छादित हो जाता है उसे चन्द्रग्रहण कहते हैं तथैव छह मास में सूर्य के विमान को अमावस्या के दिन केतु का विमान ढक देता है उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं।

विशेष–ग्रहण के समय दीक्षा, विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित माने हैं तथा सिद्धान्त ग्रन्थों के स्वाध्याय का भी निषेध किया है।

4.24 सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मन्द गमन—

सबसे मन्द गमन चन्द्रमा का है। उससे शीघ्र गमन सूर्य का है। उससे तेज गमन ग्रहों का, उससे तीव्र गमन नक्षत्रों का एवं सबसे तीव्र गमन ताराओं का है।

4.25 एक चन्द्र का परिवार—

इन ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतिन्द्र है। अतः एक चन्द्र (इन्द्र) के–1 सूर्य (प्रतीन्द्र), 88 ग्रह, 28 नक्षत्र, 66 हजार 975 कोड़ाकोड़ी तारे ये सब परिवार देव हैं।

कोड़ाकोड़ी का प्रमाण

1 करोड़ को 1 करोड़ से गुणा करने पर कोड़ाकोड़ी संख्या आती है।

$$10000000 \times 10000000 = 10000000000000$$

एक तारे से दूसरे तारे का अन्तर

एक तारे से दूसरे तारे का जघन्य अन्तर 142 मील अर्थात् महाकोश है। इसका लघु कोश 500 गुणा होने से हुआ उसका मील बनाने पर × 2 = 142 हुआ।

मध्यम अन्तर–50 योजन (20000 मील) का है एवं उत्कृष्ट अन्तर–100 योजन (400000 मील) का है।

4.26 जम्बूद्वीप सम्बन्धी तारे—

जम्बूद्वीप में दो चन्द्र सम्बन्धी परिवार तारे 133 हजार 950 कोड़ाकोड़ी प्रमाण हैं। उनका विस्तार जम्बूद्वीप के 7 क्षेत्र एवं 6 पर्वतों में है देखिये चार्ट–

क्षेत्र एवं पर्वत	तारों की संख्या कोड़ाकोड़ी से
भरत क्षेत्र में	705 कोड़ाकोडी तारे
हिमवन पर्वत में	1410 कोड़ाकोडी तारे
हेमवत क्षेत्र में	2820 कोड़ाकोडी तारे
महाहिमवान पर्वत में	5640 कोड़ाकोडी तारे
हरि क्षेत्र में	11280 कोड़ाकोडी तारे
निषध पर्वत में	22560 कोड़ाकोडी तारे
विदेह क्षेत्र में	45120 कोड़ाकोडी तारे

नील पर्वत में	22560 कोड़ाकोडी तारे
रम्यक क्षेत्र में	11280 कोड़ाकोडी तारे
रुक्ति पर्वत में	5640 कोड़ाकोडी तारे
हैरण्यवत क्षेत्र में	2820 कोड़ाकोडी तारे
शिखरी पर्वत में	4110 कोड़ाकोड़ी तारे
ऐरावत क्षेत्र में	705 कोड़ाकोड़ी तारे

कुल जोड़ 133950 कोड़ाकोड़ी हैं। इस प्रकार 2 चन्द्र सम्बन्धी सम्पूर्ण ताराओं का कुल जोड़ 133950000000000000000 प्रमाण है।

4.27 ध्रुव ताराओं का प्रमाण—

जो अपने स्थान पर ही रहते हैं। प्रदक्षिण रूप से परिभ्रमण नहीं करते हैं उन्हें ध्रुव तारे कहते हैं।

वे जम्बूद्वीप में 36, लवण समुद्र में 139, धातकी खण्ड में 1010, कालोदधि समुद्र में 41120 एवं पुष्करार्ध द्वीप में 53230 हैं। ढ़ाई द्वीप के आगे सभी ज्योतिष्क देव एवं तारे स्थिर ही हैं।

ढ़ाई द्वीप एवं दो समुद्र सम्बन्धी सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण

द्वीप-समुद्र में	चन्द्रमा	सूर्य
जम्बूद्वीप	2	2
लवण समुद्र	4	4
धातकी खण्ड	12	12
कालोदधि समुद्र	42	42
पुष्करार्द्ध द्वीप	72	72

नोट–सर्वत्र ही 1-1 चन्द्र, 1-1 सूर्य (प्रतीन्द्र), 88-88 ग्रह, 28-28 नक्षत्र एवं 66 हजार 975 कोड़ाकोड़ी तारे हैं। इतने प्रमाण परिवार देव समझना चाहिये।

इस ढ़ाई द्वीप के आगे-आगे असंख्यात द्वीप एवं समुद्र पर्यन्त दूने-दूने चन्द्रमा एवं दूने-दूने सूर्य होते गये हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिष्क देवों का भ्रमण

मानुषोत्तर पर्वत से इधर-उधर के ही ज्योतिर्वासी देवगण हमेशा ही मेरू की प्रदक्षिण देते हुए गमन करते रहते हैं और इन्हीं के गमन के क्रम से दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर आदि का विभाग रूप व्यवहार काल जाना जाता है।

4.28 नक्षत्रों के नाम—

1. कृत्तिका, 2. रोहिणी, 3. मृगशीर्षा, 4. आर्द्रा, 5. पुनर्वसू, 6. पुष्य, 7. आश्लेषा, 8. मघा, 9. पूर्वाफाल्गुनी, 10. उत्तराफाल्गुनी, 11. हस्त, 12. चित्रा, 13. स्वाति, 14. विशाखा, 15. अनुराधा, 16. ज्येष्ठा, 17. मूल, 18. पूर्वाषाढ़ा, 19. उत्तराषाढ़ा, 20. अभिजित, 21. श्रवण, 22. घनिष्ठा, 23. शतभिषक, 24. पूर्वाभाद्रपदा, 25. उत्तराभाद्रपदा, 26. रेवती, 27. अश्विनी, 28. भरिणी।

4.29 धातकी खण्ड के सूर्य चन्द्रादि का वर्णन

धातकी खण्ड का व्यास 4 लाख योजन का है। इसमें 12 सूर्य एवं 12 चन्द्रमा हैं। 510 योजन प्रमाण वाले यहाँ पर 6 गमन क्षेत्र हैं। एक-एक गमन क्षेत्रों में पूर्ववत् 2-2 सूर्य-चन्द्र परिभ्रमण करते हैं।

4.30 कालोदधि के सूर्य, चन्द्रादिकों का वर्णन—

कालोदधि समुद्र का व्यास 8 लाख योजन का है। यहाँ पर 42 सूर्य एवं 42 चन्द्रमा हैं। यहाँ पर 510 योजन प्रमाण वाले 21 गमन क्षेत्र अर्थात् वलय हैं। यहाँ पर भी प्रत्येक वलय में 2-2 सूर्य एवं चन्द्र तथा उनकी 184-184 एवं 15-15 गलियाँ हैं। मात्र परिधियाँ बहुत ही बड़ी-बड़ी होने से गमन अतिशीघ्र रूप होता है।

4.31 पुष्करार्ध द्वीप के सूर्य, चन्द्र—

पुष्करवर द्वीप 16 लाख योजन का है। उसमें बीच में वलयाकार (चूड़ी के आकार वाला) मानुषोत्तर पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत के इस तरफ ही मनुष्यों के रहने के क्षेत्र हैं। इस आधे पुष्करवर द्वीप में भी धातकी खण्ड के समान दक्षिण और उत्तर दिशा में दो इष्वाकार पर्वत हैं। जो एक ओर से कालोदधि समुद्र को छूते हैं एवं दूसरी ओर मानुषोत्तर पर्वत का स्पर्श करते हैं। यहाँ पर भी पूर्व एवं पश्चिम में 1-1 मेरू होने से 2 मेरू हैं तथा भरत क्षेत्रादि क्षेत्र एवं हिमवन् पर्वत आदि पर्वतों की भी संख्या दूनी-दूनी है।

मध्य में मानुषोत्तर पर्वत के निमित्त से इस द्वीप के दो भाग हो जाने से ही इस आधे भाग को पुष्करार्ध कहते हैं।

इस पुष्करार्ध द्वीप में 72 सूर्य एवं 72 चन्द्रमा हैं। इनके 510 योजन प्रमाण वाले 36 गमन क्षेत्र (वलय) हैं। प्रत्येक में 2-2 सूर्य एवं 2-2 चन्द्र हैं। एक-एक वलय में 184-184 सूर्य की गलियाँ तथा 15-15 चन्द्र की गलियाँ हैं। 18 वलयों में सूर्य-चन्द्र आदि 3 मेरूओं (1 जम्बूद्वीप सम्बन्धी एवं 2 धातकी खण्ड सम्बन्धी) की ही प्रदक्षिणा करते हैं। शेष 18 वलय के सूर्य, चन्द्रादि 2 पुष्करार्ध के मेरू सहित पाँचों ही मेरूओं की सतत प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

4.32 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—ज्योतिष्क देवों के कितने भेद हैं और कौन-कौन से हैं।

प्रश्न 2—चन्द्रदेव एवं सूर्य देव की उत्कृष्ट आयु कितनी है।

प्रश्न 3—नक्षत्र कितने होते हैं ?

प्रश्न 4—जम्बूद्वीप में कितने सूर्य और चन्द्रमा हैं।

प्रश्न 5—धातकी खण्ड द्वीप में कितने सूर्य और चन्द्रमा हैं।

इकाई–2 पर्यावरण संरक्षण में जैन दर्शन का योगदान

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) जैन वाङ्मय में पर्यावरण चेतना

(2) पर्यावरण संरक्षण और जैनागम

(3) जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण

(4) जैन संस्कृति और पर्यावरण–एक वैज्ञानिक दृष्टि

पाठ-1–जैन वाङ्मय में पर्यावरण चेतना

1.1 पर्यावरण का अर्थ–

''परि + आ' उपसर्ग युक्त 'वृ' धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से बने 'पर्यावरण' शब्द का तात्पर्य है चारों ओर का वातावरण। यह वातावरण अर्थात् पर्यावरण दो प्रकार का होता है–भौतिक एवं आध्यात्मिक। भौतिक पर्यावरण अर्थात् प्राकृतिक वातावरण में भूमि, जल, वायु एवं वनस्पति आदि समाविष्ट हैं, जिनसे जीव मात्र की दैहिक आवश्यकता पूर्ण होती है। आध्यात्मिक पर्यावरण से आत्मा संतुष्ट होती है। आत्म संतुष्टि से न केवल आध्यात्मिक पर्यावरण अपितु भौतिक पर्यावरण भी शुद्ध होता है। जीव सृष्टि एवं वातावरण का पारस्परिक आकलन ही पर्यावरण है इस विश्वास के ह्रास के साथ पर्यावरण का ह्रास एवं प्रदूषण का प्रादुर्भाव हुआ। आज की विडम्बना यह है कि पर्यावरण और प्रदूषण अंतरंग प्रतीत होने लगे हैं।

पर्यावरण प्रकृतिदत्त है। प्रदूषण के अर्थ में पर्यावरण का चिंतन विगत दो तीन दशक से ही आया है, जबकि भारतीय ऋषि, मनीषी भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति अत्यन्त प्राचीन काल से ही सजग थे। प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप में उनका चिंतन समग्र भारतीय वाङ्मय में परिलक्षित होता है।

ऋग्वेद संहिता में इन्द्र वरुण, पर्जन्य, सूर्य आदि सभी प्राकृतिक तत्वों में देवत्व का आधान किया गया है। औपनिषदिक दर्शनों में पंचमहाभूतों को सृष्टि की उत्पत्ति का मूल माना और उनकी विशुद्धि पर बल दिया।

अथर्ववेद में जल शुद्धि विषयक अनेक मंत्र हैं। पृथ्वी के माहात्म्य स्वरूप पृथ्वी सूक्त (अथर्व–12.1), कठोपनिषद् (कठ–5–10) में वायु की महिमा, वृहदारण्यकोपनिषद् (वृहद–3–9–28) में वृक्ष वनस्पतियों में जीवनत्व का उद्घोष है। समग्र वैदिक वाङ्मय में पंचमहाभूतों की पर्यावरणीय उपयोगिता का निदर्शन है। पौराणिक साहित्य आयुर्वेद, चरक–संहिता, वास्तुशास्त्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा स्मृति ग्रंथों में भी पर्यावरण चेतना का निदर्शन होता हैं।

समग्र जैन वाङ्मय में पर्यावरण विषयक सूक्ष्म चिंतन व्याप्त है। इनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति में देवत्व की नहीं अपितु जीवत्व की अवधारणा है। आचारांग सूत्र के प्रथम पांच अध्याय में षट्कायिक जीवों का सविस्तार वर्णन है। आचार्य उमास्वामि ने तत्त्वार्थसूत्र में जीव के भेद बताते हुए लिखा है–

संसारिणस्त्रसस्थावराः।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।

अर्थात् संसारी जीव त्रस एवं स्थावर दो प्रकार के होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पतिकायिक ये पांच स्थावर (जीव) हैं।

जैन वाङ्मय में जीव तत्व का सूक्ष्म, वैज्ञानिक वर्णन और वर्गीकरण किया गया है। जीव जातियों के अन्वेषण की चौदह मार्गणाएँ, जीवों के विकास के चौदह गुणस्थान और आध्यात्मिक दृष्टि से गुण दोषों के आधार पर जीव के भेदोपभेद का भी वर्णन किया गया है। इस तरह संपूर्ण ब्रह्माण्ड जीवत्व से ओतप्रोत है और संपूर्ण पर्यावरण एक जीवन्त

इकाई है। इसके प्रति स्वत्व का और संरक्षण का भाव होना चाहिये।

1.2 पर्यावरण संरक्षण में अहिंसादि व्रत पालन का योगदान–

आचरणपूर्वक इस षट्कायिक पर्यावरणीय संहिता की रक्षा जैन सिद्धांतों का मूलाधार है। आचार्य उमास्वामि का सूत्र है–

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

अर्थात् प्रत्येक जीव एक दूसरे पर आश्रित या पूरक है। कोई जीव यदि हमारा सहायक बनता है तो उसकी सुरक्षा हमारा कर्तव्य है। यथा–वृक्ष हमें शुद्ध वायु, जल, फल ईंधनादि प्रदान करते हैं। अतः वृक्षों का संरक्षण और संवर्धन हमारा कर्तव्य है। वृक्षों में भूमि, वायु और ध्वनि प्रदूषण को अवशोषित करने की सामर्थ्य है। उदाहरणार्थ–भोपाल गैस त्रासदी में बड़, पीपल, इमली और अशोक जैसे घने वृक्षों के पत्ते जल गये थे। उन वृक्षों के समीपस्थ निवासरत व्यक्तियों पर गैस का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हुआ। निश्चय ही विषैली गैस की अधिक मात्रा वृक्षों द्वारा अवशोषित की गई।

पर्यावरण संरक्षण में वृक्षों की उपयोगिता एवं वृक्षारोपण के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए पद्मपुराण में कहा गया है कि–

प्रतिष्ठां ते गमिष्यन्ति यैः वृक्षाः समारोपिताः।

वरांगचरित्र एवं धर्मशर्माभ्युदय में वनों, उद्यानों, वाटिकाओं तथा नदी के तीरों पर भी वृक्षारोपण का वर्णन है।

तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर अंकित चिह्न पर्यावरण संरक्षण के प्रतीक है। चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस चिन्हों में से तेरह चिन्ह प्राणी जगत से संबंद्ध है। पशु जगत से बैल, हाथी, घोड़ा, बंदर, हिरण एवं बकरा मानव के सहयोगी रहे हैं। चकवा पक्षी समूह का तथा कल्पवृक्ष वनस्पति जगत का प्रतीक है। जलचर मगर, मछली, कछुआ और शंख का जल शुद्धि में महत्वपूर्ण योगदान है। लाल और नीलकमल अपने सौन्दर्य एवं सुकुमारता से शान्ति और प्रेम का संदेश देते हैं। स्वस्तिक एवं कलश कल्याण के प्रतीक हैं।

तीर्थंकरों के जन्म से पूर्व उनकी माताओं द्वारा देखे गये सोलह स्वप्न भी पशु जगत एवं प्राकृतिक जगत से सम्बद्ध मंगल और क्षेम के प्रतीक हैं।

तीर्थंकरों की समवसरण सभा में भी प्रमद वन, अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम वृक्षों की व्याप्ति वर्णित है। साथ ही प्रत्येक जीव का स्थान निर्धारित है तथा सभी को तीर्थंकर वाणी सुनने का अधिकार है।

प्रकृति ने न केवल वनस्पति अपितु मानव की सेवा, सहायता और सुरक्षा के लिये पशु–पक्षियों की सृष्टि भी की है। जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत वराङ्गचरित, पद्मानन्द महाकाव्य, धर्मशर्माभ्युदय और चन्द्रप्रभचरित प्रभृति महाकाव्यों में गाय, भैस, बैल, घोड़ा आदि की कृषि, व्यवसाय, युद्धादि में उपयोगिता का वर्णन है। साथ ही पशु–पक्षियों के साथ दुर्व्यवहार की निन्दा तथा पशु–पक्षियों के वध के प्रति ग्लानि भाव और बलि का विरोध भी वर्णित है।

पशु सृष्टि भी मानव के लिये वरदान है। गो प्रभृति जीव न केवल दुग्ध अपितु मलमूत्रादि के रूप में ईंधन, खाद, गैस और ऊर्जा भी प्रदान करते हैं। सर्प जैसा विषैला प्राणी फसल नष्ट करने वाले कीटों को खाकर उसकी सुरक्षा तथा केंचुआ जैसा क्षुद्र प्राणी मिट्टी को उर्वरा बनाता है। तात्पर्य यह है कि पर्यावरण रक्षण में प्रत्येक प्राणी का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में योगदान होता है। आधुनिक कृषि वैज्ञानिक इसकी पुष्टि करते हैं। प्राणी और वनस्पति जगत का संरक्षण अहिंसा से ही संभव है। जैनाचार में अहिंसा अत्यन्त व्यापक अर्थ रखती है। मन, वचन और कर्म से किसी जीव की हिंसा न करना ही अहिंसा है। अहिंसा को माता और विश्वरक्षक कहा है।

जैन शास्त्रों में जलशुद्धि एवं मितव्यतिता पर विशेष बल दिया है। जल का उपयोग छानकर एवं उबालकर करना श्रावकों का कर्तव्य बताया है। आज स्थान–स्थान पर एकत्रित जल में उत्पन्न दलदल, सीलन, सड़न, रोगाणुओं की उत्पत्ति, भूमि, जल और वायु प्रदूषण का बहुत बड़ा कारण अनावश्यक जल और दूषित पदार्थों को प्रवाहित करना ही है। यह असंख्य जल के जीवों की हिंसा भी है। जैन विधि से जल शुद्धि एवं मितव्ययिता से ही जल प्रदूषण से मुक्ति संभव है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप पांच महाव्रत भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण की शुद्धि में सार्थक भूमिका का निर्वाह करते हैं। **अहिंसा** और **सत्य** परस्पर अन्योन्याश्रित है।

हित–मित–प्रिय और हिंसा रहित वचन बोलना चाहिये। सत्य त्याग से प्राणी हिंसक हो सकता है। असत्य भाषण से स्वच्छन्दता, घृणा, प्रतिशोध, वैर, वैमनस्य आदि दुर्भावनाएँ भी जन्म लेती हैं। सत्य से आत्मसंतुष्टि होती है और भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण शुद्ध होता है।

मन, वचन और कर्म से किसी की सम्पत्ति बिना आज्ञा के न लेना और न दूसरों को देना अस्तेय या अचौर्य है। चौर्य कर्म के मूल में लोभ की प्रवृत्ति प्रबल है। व्यक्ति द्वारा वनों की अवैध कटाई व चोरी, अभयारण्यों में बाघ, हिरण, हाथी आदि पशुओं का शिकार, दूषित गैस उत्सर्जक, आधुनिक उपकरण एवं वाहनों का प्रयोग, व्यापार में मिलावट, कम तोलना, रिश्वत लेना या देना स्तेयकर्म है। अस्तेय या अचौर्यव्रत पालन से व्यक्ति, समाज और देश में व्याप्त आर्थिक प्रदूषण की रक्षा संभव है।

दस बाह्य परिग्रह और चौदह अंतरंग परिग्रह है।

क्षेत्र, वास्तु, धनधान्य, दासी–दास, चतुष्पद पशु, आसन, शयन, वस्त्र और भांड दस परिग्रह हैं। वस्तुओं के भोगोपभोग की इच्छा ही परिग्रह है और निःस्पृहता अपरिग्रह है। अतः परिग्रहपरिमाण व्रत का पालन करना चाहिये। इससे आवश्यकताएँ सीमित एवं प्राकृतिक संसाधनों की बचत संभव है। अपरिग्रह को अपनाकर न केवल मनुष्य और समाज अपितु विविध देश भी **सामरिक** संभावनाओं को समाप्त कर परमाणु विस्फोटों से पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं।

प्राकृतिक शोषण में जनसंख्या वृद्धि की महती भूमिका हैं जनसंख्या नियंत्रण हेतु ब्रह्मचर्य व्रत सार्थक है। 'ब्रह्मचर्य व्रत जीवन को मर्यादित एवं मैथुन सेवन को नियंत्रित करता है आचार्य समन्तभद्र ने कहा है–

न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतैर्यत्,
सा परदार–निवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि।

अर्थात् जो पाप के भय से न स्वयं परस्त्री के समीप जाता है और न दूसरों को भेजता है, उसकी वह क्रिया परस्त्री त्याग तथा स्वदार संतोष नामक ब्रह्मचर्यव्रत है।

इस व्रत का पालन न करने के परिणामस्वरूप सामाजिक प्रदूषण फैलता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण–आर्थिक दृष्टि से समृद्ध भोगवाद के चरम बिन्दु पर पहुँची अमेरिका का असन्तुलित सामाजिक जीवन है, जहाँ प्रतिदिन तीन में से एक नारी को जीवन में एक बार बलात्कार सदृश घृणित शोषण का शिकार होना पड़ता है। विदेशों में ही नहीं अपितु भारत में भी एड्स प्रभावित रोगियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इन परिस्थितियों में ब्रह्मचर्य व्रत वैयक्तिक, सामाजिक और शारीरिक पर्यावरण शुद्धि हेतु वरदान है।

1.3 अनेकान्त एवं पर्यावरण–

जैनधर्म के प्रमुख सिद्धांत अनेकान्तवाद के अनुसार वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक है। वस्तु अनेक विरोधी धर्मों का समूह रूप है। जैसे दीपक में अञ्जन, बादल में बिजली और समुद्र में वड़वानल। समस्त वस्तु जाति **उत्पाद्व्यय–ध्रौव्यरूप** त्रयात्मक है। एक ही वस्तु में सत् और असत् दोनों रूप विद्यमान होते हैं। इस तथ्य की पुष्टि हेतु शूकर का दृष्टान्त दिया गया है–कि विष्ठा हमारे लिये अभक्ष्य किन्तु शूकर के लिये परमभक्ष्य है। शूकर के प्रति हमारी दृष्टि घृणित होती है किन्तु पर्यावरण शुद्धि में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

परमाणु असीम शक्ति का जनक है, जिसमें निर्माण और विध्वंस दोनों ही सामर्थ्य है। इस परमाणु शक्ति का उपयोग कारखानों के संचालन हेतु विद्युत के रूप में, पृथ्वी में छिपी खनिज संपदा और तेल आदि ज्ञात करने तथा सुरंग निर्माण जैसे कार्यों में करते हुए। युद्धादि में विनाश हेतु, प्रयुक्त रेडियाधर्मी प्रदूषण से पर्यावरण की रक्षा करना चाहिये। इस प्रकार

भक्ष्य–अभक्ष्य, घृणित–प्रशंसनीय, निर्माण–विध्वंस परस्पर विरोधी धर्म है। विश्वरक्षिका अनेकान्त दृष्टि को पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में समझना चाहिये। अनेकान्त की वचनपद्धति स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद और स्याद्वाद में वैचारिक प्रदूषण दूर करने की सामर्थ्य है।

1.4 आचार–संहिता के अनुपालन से पर्यावरण संरक्षण–

श्रावक एवं श्रमण की आचारशुद्धि हेतु जैन वाङ्मय के चरणानुयोग भाग में आचारसंहिता निर्दिष्ट है। वर्तमान में श्री कुन्दकुन्दाचार्य, आचार्य श्री उमास्वामी, आचार्य श्री समन्तभद्र आदि द्वारा रचित लगभग 36 श्रावकाचार उपलब्ध हैं। **श्रावकाचार** संहिता में श्रावक के लिये ग्यारह प्रतिमाओं का विधान है। यथा—1. दर्शन प्रतिमा, 2. व्रत प्रतिमा, 3. सामायिक प्रतिमा, 4. प्रोषध प्रतिमा 5. सचित्तत्याग प्रतिमा 6. रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा, 7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा 8. आरम्भत्याग प्रतिमा 9. परिग्रहत्याग प्रतिमा 10. अनुमतित्याग प्रतिमा 11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा।

सामान्यतया आठ मूलगुण, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह श्रावक का सर्वमान्य आचार है। मद्य, मांस, मधु तथा पांच उदुम्बर फलों का त्याग ये गृहस्थ के आठ मूलगुण है। जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, परदाराभिलोभन, चोरी एवं शिकार ये सप्त व्यसन त्याज्य हैं। प्रतिदिन देवपूजा, गुरूपासना, शास्त्र स्वाध्याय, संयम धारण, तपश्चरण और दान श्रावक के छः कर्तव्य हैं।

पांच अणुव्रत—मन वचन काय से त्रस्त प्राणियों का रक्षण **अहिंसाणुव्रत** है। असत्य वचन त्यागकर धर्म के निधान स्वरूप सत्यवचन बोलना **सत्याणुव्रत** है। मन, वचन, कर्म से पर सम्पत्ति को बिना आज्ञा के न लेना **अचौर्याणुव्रत** है। स्वभार्या के अतिरिक्त शेष समस्त स्त्रियों के साथ विषय सेवन का त्याग **ब्रह्मचर्याणुव्रत** है और संसार के धनधान्यादि दस प्रकार के परिग्रह का नियम **परिग्रह परिमाणाणुव्रत** है।

तीन गुणव्रत—पूर्व आदि दिशाओं में नदी, ग्राम, नगर आदि स्थानों की मर्यादा निर्धारित कर जन्मपर्यन्त उससे बाहर न जाना, उस मर्यादा में लेन–देन आदि कार्यों को करना **दिग्व्रत** है। बिना प्रयोजन के पापारम्भों का त्याग **अनर्थदण्डविरति** गुणव्रत है। इन्द्रियजय हेतु भोगोपभोग की वस्तुओं का अल्पसमय अथवा जीवनपर्यन्त नियम **भोगोपभोग परिमाण** नामक गुणव्रत है।

चार शिक्षाव्रत—दिग्व्रत की सीमा के अन्तर्गत प्रतिदिन गमनागमन की सीमा का नियम ग्रहण करना **देशावकाशिक** नामक **शिक्षाव्रत** है। दुर्ध्यान एवं दुर्लेश्या छोड़कर प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीन बार सामायिक करना **सामायिक** शिक्षाव्रत है। प्रत्येक मास की अष्टमी, चतुर्दशी को सर्वगृहारम्भों का त्याग कर नियमपूर्वक उपवास या एकाशन **प्रोषधोपवास नामक शिक्षाव्रत** है और अतिथि को शुद्ध चित्त से प्रतिदिन निर्दोष विधिपूर्वक आहार देना **अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत** है।

श्रावक के ये द्वादश व्रत आचरण को संयमित, आवश्यकताओं को नियंत्रित तथा दान, शील, तप आदि भावनाओं को विकसित करने में समर्थ हैं। विवेक की रक्षा, सूक्ष्म और स्थूल जीवों की रक्षार्थ अष्ट मूलगुण सार्थक है। चरित्र की शुद्धि सप्तव्यसन त्याग से सम्भव है। आत्मशुद्धि में षडावश्यक सहायक है। इन सबके परिपालन से पर्यावरण शुद्ध बना रहता है।

1.5 श्रमणाचार—

संहिता में श्रमण अर्थात् मुनि के पंच महाव्रत, पंच समितियाँ, पंचेन्द्रिय निग्रह, षडावश्यक एवं स्नान त्यागादि सात गुण, कुल 28 मूलगुण निर्दिष्ट हैं।

पंचमहाव्रत–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पंच महाव्रत हैं।

पंच समितियाँ—ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और व्युत्सर्ग ये पांच समितियाँ है। सूर्यालोक रहने पर चार

हाथ आगे भूमि को देखकर गमन करना **ईर्या समिति** है। हित, मित, प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक दिये गये आहार को एक बार ग्रहण करना एषणा समिति है। पिच्छि कमण्डलु को सावधानीपूर्वक रखना और उठाना **आदाननिक्षेपण समिति** और जीवजन्तु रहित भूमि पर मलमूत्र का त्याग करना **व्युत्सर्ग समिति** है।

पंचेन्द्रिय निग्रह—इन्द्रियों को लुभावने लगने वाले विषयों से राग न करना तथा अशोभनीय विषयों से द्वेष न करना इन्द्रिय निग्रह है।

षडावश्यक—सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग का पालन मुनियों का कर्त्तव्य है।

सात गुण—स्नानत्याग, अदन्तधावन, भूमिशयन, खड़े होकर भोजन करना, एक बार भोजन करना, नग्न रहना, केशलुंचन ये मुनियों के सप्त गुण है।

श्रमणाचार संहिता में स्नानत्याग, अदन्तधावन, भूमिशयन, पादगमन, ईर्या समिति पालन के मूल में क्षुद्र जीवों के प्रति अहिंसा की भावना, पंचेन्द्रिय निग्रह में निर्विकार भाव का, नग्नत्व में अपरिग्रह का, सामायिक–स्तुति–वंदना में आत्मशुद्धि का तथा द्वादशानुप्रेक्षाओं के मनन तथा क्षमादि दस धर्म के अनुशीलन में आत्मोत्थान का चिन्तन समाहित है। इस प्रकार श्रावक एवं श्रमणाचार संहिता आचारशुद्धि, भावशुद्धि और अन्ततः पर्यावरण शुद्धि की ओर प्रेरित करती है।

1.6 प्रकृति प्रेम–

पर्यावरण संरक्षण के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यक्त करने वाले जैनाचार्यों, मुनियों एवं कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य को भी निहारा है। समग्र जैन वाङ्मय में प्रकृति के सुकुमार रूपों का चित्रण, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद आदि ऋतु वर्णन, प्रातः, संध्या, रात्रि, ज्योत्सना का चित्रण, संयोग–वियोग, प्रेम–वात्सल्य, राग–द्वेष, वैराग्य आदि भावों की प्रतीक एवं मानवीकरण रूप में अभिव्यक्ति, नगर, ग्राम, वन–उपवन, नदी–सरोवर, तीर्थ–पर्वत, वृक्ष–वनस्पति, पशु–पक्षी आदि रूपों का वर्णन उनके सूक्ष्म पर्यावरणीय चिंतन का परिचायक है।

पर्यावरण संरक्षण जैन जीवन–पद्धति का मूलाधार है, जिसने संपूर्ण ब्रह्माण्ड में जीवत्व को माना और **'आत्मा यथा स्वस्थ तथा परस्य विश्वैक संवादविधिर्नरस्य'** कहकर प्रत्येक जीव की समान भाव और **'यथा स्वयं वाञ्छति तत्परेभ्यः कुर्वज्जनः'** से षट्कायिक जीवों की रक्षा अर्थात् अहिंसा का सन्देश दिया।

नित्य स्तुत्य आलोचनापाठ, सामायिक पाठ और शांतिपाठ से भी षट्कायिक जीवों के संरक्षण एवं संतुलन का स्वर उद्घोषित होता है। इस प्रकार जैन वाङ्मय में बाह्य पर्यावरण के साथ अन्तः पर्यावरण का भी सूक्ष्म विश्लेषण है। मानव का आध्यात्मिक चिंतन उसे भौतिक जगत में कर्म हेतु प्रवृत्त करता है। अतः भौतिक पर्यावरण शुद्धि के लिये आध्यात्मिक अर्थात् आत्म शुद्धि आवश्यक है। अंतः शुद्धि और बाह्यशुद्धि का अनन्य संबंध है। इसके लिये अहिंसा का व्यवहार और अनेकान्त का विचार परमावश्यक है। जैन सिद्धांत एवं आचार तन शुद्धि, मन शुद्धि, और पर्यावरण शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं जिन्हें वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं के संदर्भ में समझना और आचरण में समाहित करना आज की महती आवश्यकता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—पर्यावरण शब्द से क्या तात्पर्य है, यह कितने प्रकार का है ?

प्रश्न 2—जैनागम में वर्णित षट्काय जीव कौन–कौन से हैं ?

प्रश्न 3—तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर अंकित चिह्न पर्यावरण संरक्षण के प्रतीक किस प्रकार हैं ?

प्रश्न 4—अनेकान्तवाद किस प्रकार का प्रदूषण दूर करने में सहायक है ?

पाठ-2–पर्यावरण संरक्षण और जैनागम

2.1 पर्यावरण एवं जीवन–

स्वास्थ्य और जीवन का पर्यावरण के साथ घनिष्ठ संबंध है। पर्यावरण निःसर्ग है, प्रकृति है। पर्यावरण, प्रकृति का एक ऐसा रक्षा कवच है जो मानव के विकास में सार्थक पृष्ठभूमि का काम करता है। प्रकृति की सुरक्षा हमारी गहन अहिंसा और आत्म–संयम की परिचायिका है। प्रकृति का प्रदूषण पर्यावरण के असंतुलन का और असंतुलन, अव्यवस्था और भूचाल का प्रतीक है। अतः प्राकृतिक संतुलन बनाये रखना हमारा धर्म है, कर्तव्य है और आवश्यकता भी। अन्यथा विनाश के कगारों पर हमारा जीवन बैठ जायेगा और कटी हुई पतंग के समान डगमगाने लगेगा। यह ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सत्य है।

हमारे यहाँ प्रारंभ में पर्यावरण संरक्षण की समस्या नहीं थी। चारों दिशाओं में हरे–भरे खेत, घने जंगल, कल–कल करती नदियां, जड़ी–बूटियों से भरे पर्वत आदि सभी कुछ प्राकृतिक सुषमा का बखान करते थे। हमारा प्राचीन साहित्य इसी प्रकृति की सुरम्य छटा के वर्णन से आपूर है। उसमें व्यक्ति की भद्र प्रकृति और उसकी पापभीरूता का भी दिग्दर्शन होता है। वनस्पति जगत को कल्पवृक्ष कहकर प्रकृति का जो सम्मान यहाँ किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अवतारों और जैन तीर्थंकरों के चिन्ह पशु–पक्षियों में से ग्रहण किये गये हैं। प्राचीन मूर्तिकला, स्थापत्यकला तथा मुद्राओं पर अशोक, कदम्ब, पीपल आदि वृक्षों के चित्र भी इसी के प्रमाण हैं। बसंत ऋतु में रंग बिरंगे मनमोहक, पुष्प, ग्रीष्म ऋतु का तपता हुआ वायु मंडल, वर्षा ऋतु की लहलहाती धरती और शीत ऋतु की सुहावनी रातें भला कौन भूल सकता है?

प्राचीन ऋषियों–महर्षियों और आचार्यों ने इस प्राकृतिक तत्व को न केवल भलीभाँति समझ लिया था बल्कि उसे उन्होंने जीवन में उतारा भी था। वे प्रकृति के रम्य प्रांगण में स्वयं रहते थे, उसका आनंद लेते थे और वनवासी रहकर स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति की सुरक्षा किया करते थे। वैदिक ऋषि–महर्षि, महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुषों के जीवन की अनेक घटनायें प्रकृति की छत्र–छाया में घटित हुई हैं। कालांतर में उन वृक्षों की पूजा का विधान रचकर उनकी सुरक्षा का प्रबंध धर्म मान लिया गया। पीपल (बोधिवृक्ष) ज्ञान प्रकाशक है,ग्राम गोष्ठी और व्याकुल पथिक के लिए आश्रय दाता है। वटवृक्ष भी ज्ञान और समृद्धि का प्रतीक है। अशोक वृक्ष ने सीताजी को आश्रय दिया था, इस बात को हम सभी जानते हैं। वृक्षों की उपयोगिता के कारण वे अनेक जनश्रुतियों के भी केन्द्र बन गये। जनश्रुतियों की चर्चा से अधिक महत्व यहाँ वृक्षों के संरक्षण का है।

2.2 पर्यावरण असन्तुलन–

इधर कुछ वर्षो से पर्यावरण संतुलन काफी डगमगा गया है। बढ़ती हुई आबादी तथा आधुनिक औद्योगिक मनोवृति ने पर्यावरण को बुरी तरह प्रदूषित कर दिया है। जंगल के जंगल कटते चले जा रहे हैं। सामर्थ्य के बाहर खेतों से खाद्यान्न पैदा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कीटनाशक दवाओं और रासायनिक खादों के प्रयोग से खाद्य सामग्री दूषित होती जा रही है, शुद्ध पेय जल कम होता जा रहा है। वन्य पशु–पक्षी लुप्त से हो रहे हैं। कालिदास जैसे महाकवियों के वन–उपवन, अरण्य आज अदृश्य से होते जा रहे हैं। पर्यावरण के असंतुलित हो जाने से ऋतुचक्र में बदलाव आया। भीषण बाढ़ का प्रकोप बढ़ा, कैंसर, हृदयाघात, मानसिक तनाव, रक्त चाप जैसे विघातक रोगों की संख्या बढ़ी, शुद्ध हवा, पानी मिलना मुश्किल सा हो गया, गंगा–नर्मदा जैसी नदियों की पवित्रता पर प्रश्नचिन्ह लग गया।

प्रकृति प्रदत्त सभी वनस्पतियाँ हम–आप जैसी सांस लेती हैं कार्बनडाय–आक्साइड के रूप में और सांस छोड़ती हैं आक्सीजन के रूप में। यह कार्बन–डाय–ऑक्साइड पेड़–पौधों के हरे पदार्थ द्वारा सूर्य की किरणों के माध्यम से

फिर आक्सीजन में बदल जाती है। इसलिए बाग–बगीचों का होना स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक है। पेड़–पौधों की यह जीवन प्रक्रिया हमारे जीवन को संबल देती है, स्वस्थ हवा और पानी देकर आह्वान करती है, जीवन को संयमित और अहिंसक बनाये रखने का। सारा संसार इन जीवों से भरा हुआ है और हर जीव का अपना–अपना महत्व है। उनके अस्तित्व की हम उपेक्षा नहीं कर सकते। उनमें भी सुख–दुख के अनुभव करने की शक्ति होती है। उनका संरक्षण हमारा नैतिक उत्तरदायित्व है।

इसी तरह हमारे चारों ओर की भूमि, हवा और पानी हमारा पर्यावरण है। आज के भौतिक वातावरण में, विज्ञान की चकाचौंध में हम अज्ञानवश अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए अपने प्राकृतिक वातावरण को दूषित कर रहे हैं। हमने वन–उपवन को नष्ट–भ्रष्ट कर ऊँची–ऊँची अट्टालिकायें बना लीं, बड़े–बड़े कारखाने स्थापित कर लिए, जिनसे हानिकारक रसायनों, गैसों का निर्झरण हो रहा है, उपयोगी पशु–पक्षियों और कीड़ो–मकोड़ों को समाप्त किया जा रहा है। वाहनों आदि से ध्वनि प्रदूषण, कारखानों की सारी गंदगी कूड़ा–कचड़ा आदि जलाशयों में बहा देने जैसे जल–प्रदूषण और गैसों से वायु–प्रदूषण हो रहा है। सारी प्राकृतिक संपदा को हम अपने क्षणिक लाभ के लिए असंतुलित करने के दोषी बन रहे हैं। कुछ प्रदूषण प्रकृति से होता है पर उसे प्रकृति ही स्वच्छ कर देती है। जैसे–पेड़, पौधों की कार्बन–डाई–आक्साइड सूर्य की किरणों से साफ होकर आक्सीजन में बदल जाती है। वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि अलग–अलग तरह के पेड़–पौधों की पत्तियाँ विभिन्न गैसों आदि के जहर, धूल आदि से जूझकर पर्यावरण को स्वच्छ रखती है। जंगल कट जाने से वर्षा कम होती है, हवा बदल जाती है, सूखा पड़ता है, बाढ़ आती है, गर्मी अधिक होती है, यदि हमने पर्यावरण की सुरक्षा अब भी नहीं की तो पर्यावरण जहरीला होकर हमारे जीवन को तहस–नहस कर देगा।

2.3 वन सम्पदा का विनाश और मंडराता पर्यावरणीय खतरा–

शाकाहार और वन–सम्पदा एक दूसरे से अभिन्न है। वृक्ष–वध ही पर्यावरण की हत्या है। वृक्ष–पादप और लतायें शाकाहार के सृजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती हैं। पृथ्वी–हरा भरा ग्रह, शस्य श्यामल और सुजलाम्– सुफलाम् की संज्ञा, इन्हीं वन–सम्पदा के कारण है। सघन वन, जहाँ मेघों को अपने पास बुलाकर भूमि को सिंचन का वरदान देते हैं, वहीं वनोपज औषधियां आदि मधुर रस देते हैं।

कल्पवृक्ष की अवधारणा जीव–संस्कृति का श्रेष्ठ अवदान है वृक्ष ही तो कल्पवृक्ष हैं, क्योकि उनसे जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें पूरा करती हैं। सदियों से वन, मानव व पशु–पक्षियों के जीवन से जुड़ा हुआ है। वन जल व मृदा का भी संरक्षण करता है। वायुमण्डलीय तापक्रम, आर्द्रता, वर्षा का नियंत्रण, बाढ़ की रोकथाम, तूफानी हवाओं से बचाव और वन्य प्राणियों के संरक्षण में वनों का अपरिमित महत्त्व है।

इस प्रकार वन पर्यावरण संतुलन में एक अहम् भूमिका का निर्वाहन करते हैं, क्योंकि पर्यावरण संतुलन का समीकरण तभी गड़बड़ा जाता है जब वर्षा अभाव, असमय वर्षा या अनावृष्टि हो, अन्न का अकाल तथा रेगिस्तान का प्रसार, धरती की ताप वृद्धि तथा धरती के पादप वृक्षों का सर्वनाश हो।

अमेरिका में जंगल की 26 करोड़ एकड़ भूमि को मांसाहार उत्पादन के लिये नष्ट किया गया। एक सर्वेक्षण के अनुसार वहाँ एक एकड़ भूमि में 2000 कि.ग्रा. आलू उत्पन्न होता है, वहीं केवल 125 कि.ग्रा. गौमांस ही उत्पन्न हो पाता है। एक एकड़ भूमि में जितना शाकाहार उत्पन्न होता है वहाँ उतने गौमांस के लिये सात एकड़ भूमि की आवश्यकता होती है।

भारत में पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखने के लिये कुल क्षेत्रफल का कम से कम 33.3 प्रतिशत वनों से

आच्छादित होना चाहिये। लेकिन वनों की बेहताशा कटाई से यह क्षेत्रफल लगभग 20 प्रतिशत (7 करोड़ एकड़) रह गया है। इससे न केवल पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है वरन ईंधन की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। साथ ही भू–संरक्षण, भूस्खलन एवं मरुस्थलीकरण जैसे परिस्थितिकरण विक्षोभ के कारण लाखों टन उपजाऊ मिट्टी प्रतिवर्ष क्षरित हो जाती है।

2.4 वनस्पतियाँ पौष्टिकता के सर्वश्रेष्ठ स्त्रोत हैं–

वनस्पति जनित आहार में दीर्घजीविता के तत्त्व विद्यमान होते हैं। वृक्ष स्वयं इसके जीते जागते उदाहरण हैं। जैसे कुरुक्षेत्र (हरियाणा) का ज्योतिसर स्थित वटवृक्ष लगभग 5 हजार वर्षों से यथावत है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के क्वान्सलेण्ड नगर में 12 हजार साल पुराना मेक्रोजामिया जाति का वृक्ष है। जिसने मनुष्य के प्राचीन रूप से लेकर वर्तमान रूप तक देखा है।

वनों के सफाया होने से जीव–जन्तुओं की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। सन् 1600 से अबतक लगभग 120 स्तनधारियों की तथा 225 पक्षियों की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। और 20वीं सदी के अन्त तक लगभग 650 वन्य प्राणियों की प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं।

2.5 ''जीवो जीवस्य भोजनम्'' का सिद्धान्त अनुचित है–

दिशा–दृष्टि से दूर पड़ा हुआ व्यक्ति ''जीवो जीवस्य भोजनम्'' मानकर स्वयं की रक्षा के लिए दूसरे का अमानुषिक वध और शोषण करता है। अपनी प्रशंसा, सम्मान, पूजा, जन्म–मरण मोचन तथा दुख–प्रतिकार करने के लिए वह अज्ञानतापूर्वक शस्त्र उठाता है और सबसे पहले पृथ्वी और पेड़–पौधों पर प्रहार करता है जो मूक हैं, प्रत्यक्षतया कुछ कर नहीं सकते। परन्तु ये मात्र मूक हैं इसलिए चेतनाशून्य हैं और निरर्थक हैं, यह सोचना वस्तुतः हमारी अज्ञानता है। उनकी चेतना सतत मूर्छित और बाहर से लुप्त भले ही लग रही हो पर उन्हें हमारे अच्छे–बुरे भावों का ज्ञान हो जाता है और शस्त्रच्छेदन होने पर कष्ट की अनुभूति भी होती है। डॉ. जगदीशचन्द्र वसु एवं न्यूयार्क के प्रसिद्ध वैज्ञानिक क्ल्यू बेकस्टर ने अपने प्रयोगों के आधार पर सिद्ध किया है कि पौधों में भी भाव बोध–शक्ति है, भले ही वे मूक अवस्था में हो। आंतरिक भावों में पवित्रता बनाये रखने के लिए इनका संरक्षण आवश्यक है।

2.6 विभिन्न प्रदूषण–

जल प्रदूषण–

जल को प्रदूषित करने में कागज, स्टील, शक्कर, वनस्पति घी, रसायन उद्योग, चमड़ा–शोधन, शराब उद्योग, वस्त्र–रंगाई उद्योग बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं। सैप्टिक टैंकों और मलवाहक पाइपों के हिसाब से भी जल प्रदूषित हो रहा है यह दूषित जल निश्चित ही हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। पीलिया और पोलियो जैसे वायरस रोग, दस्त, हैजा, टायफाइड जैसे वैक्टीरिया रोग और सूक्ष्म जीवों व कृमियों से उत्पन्न होने वाले रोग दूषित–प्रदूषित जल के उपयोग से ही होते हैं। एक बूंद पानी में हजारों जीव रहते हैं, यह वैज्ञानिक तथ्य है। आज के प्रदूषित पर्यावरण में नदियों और समुद्रों का जल भी उपयोगिता की दृष्टि से प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देता है। खाड़ी–युद्ध के संदर्भ में समुद्र में गिराये हुए तेल से समुद्री जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया और उसमें रहने वाले खाद्य शैवाल (काई) लवण आदि उपयोगी पदार्थ दूषित हो गये। अनेक जल संयंत्रों के खराब होने का भी अंदेसा हो गया था।

वायु प्रदूषण–

स्वचालित वाहनों और औद्योगिक संसाधनों से निकलने वाली गैसों से वायुमंडल तेजी से दूषित हो रहा है।

विषाक्त धुँआ और गैस मनुष्य के फेफड़ों में जाकर स्वास्थ्य पर कुठाराघात करती है। खाँसी, दमा, सिलिकोसिस, तपैदिक, कैंसर आदि बीमारियाँ वायु–प्रदूषण से ही हो रही है।

ध्वनि प्रदूषण–

मोटर–वाहनों, कल–कारखानों आदि का तीव्र शोर पर्यावरण को अपनी कम्पनों द्वारा दूषित करता है जिससे मनुष्य की श्रवण–शक्ति प्रभावी होती है और वे बहरे हो जाते हैं। इतना ही नहीं, शोर से उनका हृदय और मस्तिष्क भी कमजोर हो जाता है। शोर से अनिद्रा, सिर दर्द, तनाव, चिड़चिड़ाहट और झुंझलाहट भी बढ़ती है। इससे रोगियों को स्वस्थ होने में देर लगती है और कभी–कभी तो अधिक शोर रोगियों की मृत्यु का भी कारण बन जाता है। सन् 1905 में नोबिल पुरस्कार विजेता राबर्ट कोच ने ध्वनि प्रदूषण के बारे में कहा था कि एक दिन ऐसा आयेगा जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बड़े शत्रु के रूप में निर्दयी "शोर" से संघर्ष करना पड़ेगा। यह ध्वनि–प्रदूषण उद्योग धंधों, मशीनों, परिवहन और मनोरंजन के साधनों द्वारा उत्पन्न हो रहा है जिसे संयमित किया जाना परमावश्यक है क्योंकि इसका दुष्प्रभाव पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं और प्राकृतिक संपदा पर पड़ता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण–

रेडियोधर्मी प्रदूषण भी हो रहा है–अणु, परमाणु, हाइड्रोजन बमों आदि के परीक्षणों से। यह प्रदूषण वनस्पति को बुरी तरह प्रभावित करता है। भूमि की उर्वराशक्ति को नष्ट करता है और सारे वातावरण को विषैला बना देता है। हीरोशिमा और नागासाकी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। हमारे सामने एक उदाहरण और है भोपाल गैस कांड का। ऊर्जा का यदि सही उपयोग किया जावे तो वह मानव के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। कोयला, तेल, गैस, बिजली, भाप, पेट्रोल, डीजल आदि ऊर्जा के ही रूप हैं, जिनसे हम अपनी सुविधाओं को जुटाते हैं। इसका ताप पर्यावरण संतुलन को बिगाड़ता है। रेडियोधर्मी विकरण से त्वचा जल जाती है। यह न तो दिखाई देती है, न इसमें कोई गंध होती है पर शरीर पर घातक प्रभाव छोड़ती है।

ओजोन गैस–

इसी तरह ओजोन गैस हमारे लिए एक जीवनदायिनी शक्ति है जो रसायनिक क्रियाओं के द्वारा सूर्य की पराबैंगनी किरणों के विषैले विकिरण को पृथ्वी तक आने ही नहीं देती। परन्तु पिछले दो दशकों में हमने आधुनिकता की अंधी दौड़ में क्लोरो–फ्लोरो कार्बन का प्रचुर उत्पादन किया है जिससे ओजन की छतरी में विशाल छिद्र हो चुके हैं और उसका क्षरण प्रारंभ हो गया है। फलतः प्रदूषण के कारण भयानक रोगों को हमने आमंत्रित कर लिया है। इसके बावजूद आवश्यकता को ध्यान में रखकर अमेरिका ने क्लोरों–फ्लोरो कार्बन का उत्पादन पुनः प्रारंभ कर दिया है। 1 जनवरी 1987 में कनाडा के मांट्रियल शहर में 48 देशों ने एक समझौता किया जिसमें उसके उत्पादन पर नियंत्रण का प्रस्ताव था। भारत सहित चीन, ब्राजील, दक्षिण कोरिया आदि राष्ट्रों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर करने से अपनी असमर्थता व्यक्त की, इस तर्क के साथ कि उक्त घातक रसायनों के लिए अमेरिका ही सर्वाधिक उत्तरदायी है।

भूमि प्रदूषण–

वायु प्रदूषण के साथ–साथ भूमि प्रदूषण भी आजकल बढ़ता जा रहा है। कृषि में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग का दुष्प्रभाव भूमि पर पैदा होने वाले खाद्यान्न, फल, सब्जियों आदि पर पड़ता है और हमारे भोजन को दूषित कर देता है। कीटनाशक डी. डी. टी. और बी. एच.सी. की विषाक्त तो अब और भी बढ़ गई है। जिन कीटाणुओं पर इनका प्रयोग किया जाता है, उनमें अब निरोधक क्षमता बढ़ गयी है इससे इन दवाओं का असर उन पर कम हो गया है। पर हमारे खान–पान में इन दवाओं से प्रभावित जो वनस्पतियाँ आ रही हैं उनसे कैंसर, मस्तिष्क–रुधिर व हृदय रोगों में वृद्धि हुई हैं

यह एक विश्वजनीन सत्य है कि पदार्थ में रूपान्तरण प्रक्रिया चलती रहती है। '**सदद्रव्यलक्षणम्**' और '**उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्**' सिद्धान्त सृष्टि संचालन के प्रधान तत्व है। रूपांतरण के माध्यम से प्रकृति में संतुलन बना रहता है। पदार्थ पारस्परिक सहयोग से अपनी जिन्दगी के लिए ऊर्जा एकत्रित करते हैं और कर्म सिद्धान्त के आधार पर जीवन के सुख–दुख के साधन संजो लेते हैं। प्राकृतिक संपदा को असुरक्षित कर, उसे नष्ट–भ्रष्ट कर हम अपने सुख–दुख की अनुभूति में यथार्थता नहीं ला सकते। अप्राकृतिक जो भी होगा, वह मुखौटा होगा, दिखावा के अलावा और कुछ नहीं। प्रकृति का हर तत्व कहीं न कहीं उपयोगी होता है। यदि उसे उसके स्थान से हटाया गया तो उसका प्रतिफल बुरा भी हो सकता है।

आर्थिक विकास एवं तीव्र औद्योगीकरण दोनों परस्पर पर्यायार्थक शब्द हो गये हैं। जनसंख्या की वृद्धि के साथ–साथ आर्थिक विकास भी आवश्यक हो गया और फलतः उद्योगों की स्थापना होने लगी। उद्योग के क्षेत्र में दो घटक होते हैं–उत्पादक और उपभोक्ता। दोनों की वृत्तियों से पर्यावरण प्रभावित होता है। उपभोक्ता क्रमशः आरामदायक और विलासिता संबंधी वस्तुओं को खरीदता है और उत्पादक उसका शोषण कर अधिक से अधिक पैसा अर्जित करने का प्रयत्न करता है। फलतः दोनों के बीच विषाक्त वातावरण बन जाता है और अनैतिकता घर कर जाती है।

जनसंख्या वृद्धि –

जनसंख्या वृद्धि का यह भी एक कुपरिणाम हुआ है कि वनों को काटकर खेती की जाने लगी है। उत्पादन बढ़ाने वाले आधुनिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग होने लगा है जिससे नैसर्गिक उत्पादन क्षमता में ह्रास हुआ है और पर्यावरण पर कुप्रभाव पड़ा है। आबादी जैसे जैसे बढ़ेगी, वस्त्र, आवास और अन्न की समस्या भी उत्पन्न होगी। इस समस्या का समाधान करने के लिए एक ओर वनों को और भी काटना शुरू हो जायेगा तो दूसरी और जीव–हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ेगी।

2.7 धर्म ही पर्यावरण का रक्षक–

पर्यावरण का संबंध मात्र प्राकृतिक संतुलन से नहीं है बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक वातावरण को परिशुद्ध और पवित्र बनाये रखने के लिए भी किया जाता है। संक्षेप में कहा जाय तो धर्म ही पर्यावरण का रक्षक है और नैतिकता उसका द्वारपाल। आज हमारे देश में चारों ओर नैतिकता और भ्रष्टाचार सुरसा की भाँति बढ़ रहा है। चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या शिक्षा का, धर्म का क्षेत्र हो या व्यापार का, सभी के सिर पर पैसा कमाने का भूत सवार है, माध्यम चाहे कैसा भी हो। इससे हमारे सारे सामाजिक संबंध तहस–नहस हो गये हैं। भ्रातृत्व और प्रतिवेशी संस्कृति किनारा काट रही है, आहार का प्रकार मटमैला हो रहा है, शाकाहार के स्थान पर अप्राकृतिक खान–पान स्थान ले रहा है। मिलावट ने व्यापारिक क्षेत्र को सड़ी रबर की तहर दुर्गंधित कर दिया है। अर्थलिप्सा की पृष्ठभूमि में बर्बरता बढ़ रही है। भौतिक वासनाओं की पूर्ति में हम अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को भूल बैठे हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक क्रियाओं के बीच समन्वय समाप्त हो गया है। हमारी धार्मिक भावनायें मात्र बाह्य आचरण का प्रतीक बन गयी हैं। परिवार का आदर्श जीवन समाप्त हो गया हैं

ऐसी विकट परिस्थिति में पर्यावरण का यह बाह्य और आंतरिक असंतुलन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में जबरदस्त क्रांति लायेगा। यह क्रांति अहिंसक हो तो निश्चित ही उपादेय होगी, पर यह असंतुलन और बढ़ता गया तो खूनी क्रांति होना भी असंभव नहीं। जहाँ एक दूसरे समाज के बीच लम्बी–चौड़ी खाई हो गयी हो, एक तरफ प्रासाद और दूसरी तरफ झोपड़ियाँ हो, एक और कुपच और दूसरी ओर भूख से मृत्यु हो तो ऐसा समाज बिना वर्ग–संघर्ष के कहाँ रह सकता है ? सामाजिक क्षमता और वर्ग संघर्ष की व्यथा–कथा को दूर करने के लिए अहिंसक समाज की रचना और पर्यावरण की विशुद्धि एक अपरिहार्य साधन है। यही मानव धर्म है, यही हमारी नैतिकता है। सभी धार्मिक ग्रंथ

प्रत्यक्ष–परोक्षरूप से मन को शुभ भावों की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं जिससे पर्यावरण संतुलन कायम रहे।

2.8 प्रदूषण स्त्रोतों का नियंत्रण आवश्यक–

उपर्युक्त पर्यावरण प्रदूषण के भयानक दुष्परिणामों से बचने के लिए यह अब आवश्यक है कि हम प्रदूषण स्त्रोतों को नियंत्रित करें, वनीकरण और वृक्षारोपण संबंधी चिपको आंदोलन जैसे कल्याणकारी कदमों को स्वीकार करें। औद्योगिक विकास को रोके बिना प्रदूषित पदार्थों को कुशलतापूर्वक निस्तारित करने की योजना बनायें, रासायनिक अवशिष्ट पदार्थों को जल में न बहाकर उनको खाद आदि जैसे उपयोगी पदार्थ में परिवर्तित करें, जनसंख्या को नियंत्रित करें, आध्यात्मिकता का वातावरण बनायें, शाकाहार का प्रचार–प्रसार करें और पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं को दूर करने के लिए जनचेतना को जाग्रत करें और लोगों को समझायें कि शुद्ध पर्यावरण ही हमारा जीवन है। उस पर छाने वाले हर संकट की काली बदली हमारे लिए खतरे की घंटी है। अतः हम प्रकृति से अपने महनीय जीवन की कीमत पर खिलवाड़ न करें और पर्यावरण को स्वस्थ और संतुलित बनाये रखने के लिए निःस्वार्थ होकर विकास के हर कदम को तर्क और विवेक की कसौटी पर भलीभाँति कसें, ताकि भावी पीढ़ी पर्यावरण प्रदूषण के शिकार से बच सके।

प्रकृति वस्तुतः जीवन की परिचायिका है। पतझड़ के बाद बंसत और बंसत के बाद पतझड़ आती है। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख का चक्र एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। वनस्पति और प्राणी जगत प्रकृति के अभिन्न अंग हैं। उनकी सौन्दर्य–अभिव्यक्ति जीवन की यथार्थता है। बसंतोत्सव हमारे हर्ष और उल्लास का प्रतीक बन गया है। कवियों और लेखकों ने उसकी उन्मादकता को पहचाना है, सरस्वती की वंदना कर उसका आदर किया है और हल जोतकर जीवन के सुख का संकेत दिया है।

जैनागमों में मूलतः स्थावर और त्रस ये दो प्रकार के जीव हैं। स्थावर जीवों में चलने–फिरने की शक्ति नहीं होती, ऐसे जीव पांच प्रकार के होते हैं–1. पृथ्वीकायिक, 2. अपकायिक (जलकायिक) 3. वनस्पतिकायिक 4. अग्निकायिक और 5. वायुकायिक। दो इन्द्रियों से लेकर पाँच इन्द्रियों वाले जीव त्रस कहलाते हैं। जैन शास्त्रों में जीवों के भेद–प्रभेदों का वर्णन विस्तार से मिलता है जो वैज्ञानिक दृष्टि से भी खरा उतरा है।

2.9 पर्यावरण का असंतुलन हिंसाजन्य है–

वैज्ञानिक अनुसंधान के फलस्वरूप हम यह जानते हैं कि पर्यावरण का असंतुलन हिंसाजन्य है और यह हिंसा तब तक होती रहती है जब तक हमें आत्मबोध न हो। आत्म तुला की कसौटी पर कसे बिना व्यक्ति न तो दूसरे के दुःख को समझ सकता है और न उसके अस्तित्व को स्वीकार कर पाता है। यह अस्तित्व बोध अहिंसात्मक आचार–विचार की आस्था का आधार स्तम्भ है। अहिंसा के चार मुख्य आधार स्तम्भ है–आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद। प्राकृतिक पर्यावरण और नैतिक पर्यावरण, दोनों की सुरक्षा के लिए इन चारों मापदंडों का पालन करना आवश्यक है। इन चारों की पृष्ठभूमि में अहिंसा–दर्शन प्रहरी के रूप में खड़ा रहता है।

स्थावर जीवों में भी प्राणों का स्पन्दन है, उनकी चेतना सतत मूर्छित और बाहर से लुप्त भले ही लग रही हो पर उन्हें हमारे अच्छे बुरे भावों का ज्ञान हो जाता है और शस्त्रच्छेदन होने पर कष्टानुभूति भी होती है। भगवती सूत्र में तो यह कहा है कि पृथ्वीकायिक जीव आक्रांत होने पर वृद्ध पुरुष से कहीं अधिक अनिष्टतर वेदना का अनुभव करता है।

इतिहास यह बताता है कि पृथ्वी के गर्भ में करोड़ों साल पहले के जीवों का रूप छिपा है जो फासिल्स (जीवाश्म) के रूप में हमें प्राप्त हो सकता है। पृथ्वी के निरर्थक खोदने से उनकी टूटने की संभावना हो सकती है और साथ ही पृथ्वी के भीतर रहने वाले जीवों के वध की भी जिम्मेदारी हमारे सिर पर आ जाती है।

2.10 जीव रक्षा से पर्यावरण संरक्षण–

इसी तरह जलकायिक जीव होते हैं जिनकी हिंसा न करने के लिए हमें सावधान किया गया है। क्षेत्रीय निमित्त से जल में कीड़े उत्पन्न होने को तो सभी ने स्वीकार किया है पर जल के रूप में उत्पन्न होने वाले जीवों की स्वीकृति जैन दर्शन में ही दिखाई देती है। इसीलिए वहाँ जल गालन और प्रासुक जल सेवन को बहुत महत्व दिया गया है। साथ ही यह भी निर्देश है कि जो पानी जहाँ से ले आयें, उसकी बिलछावनी धीरे से उसी में छोड़नी चाहिए ताकि उसके जीव न मर सकें। ''**पानी पीजे छानकर, गुरु कीजे जान कर**'' कहावत स्वच्छ पानी के उपयोग का समर्थन करती है।

अग्नि में भी जीव होते हैं जिन्हें हम मिट्टी, जल आदि डालकर प्रमादवश नष्ट कर डालते हैं। वायुकायिक जीव भी इसी तरह हम से सुरक्षा की आशा करते हैं। वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा आज सर्वाधिक बड़ी समस्या बनी हुई है। पेड़–पौधों को काटकर आज हम उन्हें व्यर्थ ही जलाते चले जा रहे हैं। वे मूक–बधिर अवश्य दिखाई देते हैं पर उन्हें हम आप जैसी कष्टानुभूति होती है। वनस्पतिकायिक जीव भी हम जैसे ही श्वासोच्छ्वास लेते हैं। शरद्, हेमन्त, वसंत, ग्रीष्म आदि सभी ऋतुओं में कम से कम आहार ग्रहण करते हैं। कि तुलसी जैसे सभी हरे पौधे, हरी घास और बाँस आदि परोपकारी वनस्पतियां हमारे जीवन के निर्माण की दिशा में बहुविध उपयोगी है।

भवनों में भित्ति–चित्रों पर प्राकृतिक चित्रों को उकेरकर उन्हें जन–जीवन से समरस किया गया है। वनस्पति और पशुजगत की उपयोगिता दिखाई गई है दावानल से पर्यावरण प्रदूषण, चारित्रिक पतन से सामाजिक प्रदूषण समुद्र प्रदूषण (नवम् अध्याय) और मल्लि प्रतिमा में कचड़े के भर देने उत्पन्न दुर्गन्धजन्य प्रदूषण की ओर संकेत मिलते हैं (आठवां अध्याय) मण्डप को लीप–पोत कर साफ रखना तथा नगर की गलियों को तरह–तरह के पुष्पों से सजाकर उन्हें सुगन्धित द्रव्यों से पर्यावरण प्रदूषण बचाना भी यहाँ उल्लेखनीय है।

पर्यावरण प्रदूषण की इस भीषणता का अंदाज हमारे जैनाचार्यों को बहुत पहले ही हो गया था। जैनागमों में जिस भयंकर अकाल, बाढ़ आदि का वर्णन मिलता है वह स्वयं इस तथ्य का प्रतीक है कि जैनधर्म की अहिंसा की पृष्ठभूमि में पर्यावरण सुरक्षा का भाव रहा होगा और पर्यावरण के प्रदूषण की भयावहता का ध्यान रखकर वनस्पति जगत ही नहीं बल्कि समूचे पृथ्वी, अप, तेज, वायु में रहने वाले जीवों के अस्तित्व की पैरवी की और उनकी हिंसा से लोगों को विरक्त किया। आज के वैज्ञानिक अनुसंधान ने भी इस तथ्य पर अपनी सील लगा दी कि स्थावर जीवों में भी भावग्रहण की शक्ति है।

स्थावर जीवों के समान त्रसकायिक जीवों की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए उनकी भी जीवन रक्षा का उपदेश जैनागमों में मिलता है। पशु–पक्षी समुदाय की सुरक्षा में जैनधर्म की निश्चित ही अहं भूमिका रही है। इतना ही नहीं, वनस्पति जगत और पशु–पक्षी जगत से तीर्थंकरों के चिन्हों को ग्रहण किया जाना भी उनके प्रति मां की ममता को प्रस्थापित करना है और 72 कलाओं और 16 स्वप्नों में प्रकृति जगत को स्थान देना उसके महत्व को स्वीकार करना है।

2.11 पर्यावरण और हमारा शरीर–

पर्यावरण का प्रथमतः दृश्य संबंध हमारे शरीर से है। जैनाचार्यों ने अपने ग्रंथों में ऐसे अनेकों रोगों की चर्चा है जो पर्यावरण के असंतुलित हो जाने से हमारे शरीर को घेर लेते हैं और मृत्यु की ओर हमें धकेल देते हैं। संधिता, साइटिका, लकवा, मिर्गी, सुजाक, पायरिया, क्षय, केंसर, ब्लडप्रेशर आदि जैसे रोगों का मुख्य कारण कब्ज है और गलत आहार–विहार तथा श्रम का अभाव है। शुद्ध शाकाहार प्राकृतिक आहार है और संयमित–नियमित भोजन रोगों के निदान, उत्तम स्वास्थ्य और मन की खुशहाली का मूल कारण है। मांसाहार एक ओर जहाँ मानसिक क्रियाओं को असंतुलित करता है वहीं वह शरीर को भी बुरी तरह प्रभावित करता है इसीलिए धर्माचार्यों ने अहिंसा की परिधि में शाकाहार पर बहुत जोर

दिया है और उन पदार्थों के सेवन का निषेध किया है जो किसी भी दृष्टि से हिंसाजन्य हैं, इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा अहिंसात्मक साधना के लिए सर्वाधिक अनुकूल चिकित्सा है। बारह व्रतों का परिपालन त्रिगुप्तिओं से विषय–वासनाओं का संयमन और पंच समितियों से व्यवहारिक हिंसा से बचने के उपायों का निदर्शन पर्यावरण की सुरक्षा तथा व्यक्ति के आध्यात्मिक संकल्प की पूर्ति का सक्षम उदाहरण है।

इसी कारण समग्ररूप में पर्यावरण पर यदि चिंतन किया जाये तो समूचा जैनधर्म हमारे सभी प्रकार के पर्यावरणों को अहिंसात्मक ढंग से संतुलित करने का विधान प्रस्तुत करता है और वैयक्तिक तथा सामाजिक शांति के निर्माण में स्थायित्व की दृष्टि से नये आयामों पर विचार करने को विवश करता है।

2.12 अभ्यास प्रश्न–

प्रश्न 1—पर्यावरण असन्तुलन के प्रमुख कारण क्या हैं ?

प्रश्न 2—पर्यावरण संरक्षण में वनस्पति की किस प्रकार भूमिका है ?

प्रश्न 3—वनसम्पदा के विनाश के क्या परिणाम होते हैं ?

प्रश्न 4—किन्हीं पाँच प्रकार के प्रदूषणों का उल्लेख कीजिए।

पाठ-3 – जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण

3.1 पर्यावरण संरक्षण–

आज जहाँ देखो वहाँ पर्यावरण संरक्षण की चर्चा चल रही हैं। पर्यावरण की सुरक्षा, संवर्द्धन ही मानव को सभ्य जीवन जीने की प्रेरणा देता है। आज हमारा देश ही क्या, समूचा विश्व पर्यावरणीय असंतुलन की स्थिति से आहत व चिंतित है। पर्यावरण अपने भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक पहलुओं द्वारा मानव की नियति का निर्धारण करता है। जल, वायु, जमीन और आकृति के समावेश से भौतिक वातावरण जीवन के अस्तित्व को विभिन्न प्रकार से बनाये रखता है। जैविक वातावरण में वनस्पति एवं जीव–जन्तु शामिल हैं, जो जीवित प्राणियों के लिये भोजन एवं आहार के अन्य साधन उपलब्ध कराते हैं। मानव ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रकृति का इतना दोहन कर लिया है कि उसे संवारने हेतु एक बहुत लम्बा समय लग जायेगा। जलवायु, शोर एवं जनसंख्या इन सबकी विशुद्धता एवं संतुलन ही पर्यावरण की सुरक्षा करता है। जल, वायु और जनसंख्या को यदि हम स्थूल दृष्टि से देखें तो इन सबका सीधा सम्बन्ध मनुष्य से हुआ करता है। मनुष्य का प्रवृत्ति के साथ उदार सम्बन्ध रहा है परन्तु आज वह दूर–दूर तक नजर नहीं आता, मनुष्य का प्रकृति से उदार सम्बन्ध ही प्रदूषण को नियंत्रित कर सकता है। प्रकृति के निर्मम शोषण एवं दोहन के लिये मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। कहना चाहिये ऐसा कर वह स्वयं अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी मार रहा है।

पर्यावरण सुरक्षा का अभियान हम पूरे विश्व में अनेक प्रकार से मनाते हैं। 'पर्यावरण' यह शब्द आज अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ जाना पहचाना जाता है। हमारे देश में समय–समय पर 'पर्यावरण सुरक्षा दिवस', 'वृक्ष लगाओ अभियान' तथा अनेक राष्ट्रीय संगोष्ठियों चलती रहती हैं फिर भी इन सबका परिणाम शून्य रहा है, क्योंकि पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर केवल चर्चा ही होती नजर आती हैं। आज के समय यदि कोई चर्चित शब्द है तो वह है 'पर्यावरण'। देश की संसद से लेकर उच्चतम न्यायालय तक में इस शब्द की गूँज हो रही है। आज समय चीख–चीख कर कह रहा है कि अपने भूत और भविष्य की समीक्षा करो, पर सुनता कौन किसकी है ? पर्यावरण विनाश को यदि रोकना है तो जैन सिद्धान्तों का विश्व को अनुकरण करना ही होगा। केवल एकमात्र जैन धर्म ही संसार का वह पहला और अब तक का आखिरी धर्म है जिसने धर्म का मूलाधार पर्यावरण सुरक्षा को मान्य किया है। काश! जैन पर्यावरणीय सुरक्षा को अपनाया होता तो 'सुनामी लहरों' में लाखों प्राणियों को अपनी जान–माल से हाथ न धोना पड़ता। 26 दिसम्बर 2004 की वह काली रात लाखों लोगों को बर्बाद कर गयी। चारों ओर से सुनामी त्रासदी से पीड़ित लोगों तक राहत सामग्री पहुँचाई जा रही थी, यह मानवता का प्रतीक है। पर अब भी क्या लोग सचेत और जाग्रत होंगे, ऐसी ही किसी भयानक त्रासदी के झेलने के प्रति ? सुनामी लहरों ने जो कहर ढ़ाया है उसे प्राकृतिक आपदा की संज्ञा दी गई है। यदि आज भी जागरूक न हुए तो सुनामी जैसी अनेक घटनाएँ हमें देखना पड़ेंगी और हो सकता है कल हम भी इसके शिकार बन जायें। ऐसी प्राकृतिक विपदाओं का कारण स्पष्ट है प्रकृति का मनुष्य द्वारा दोहन। जैन दर्शन ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख किया है यदि उसका परिपालन विश्व करे तो निश्चित ही सुनामी लहरों जैसे वीभत्स दिल दहलाने वाली घटनाओं पर लगाम लग सकती है। जैनधर्म और पर्यावरण सुरक्षा पर निम्न बिन्दु दृष्टव्य है–

3.2 जनंसख्या वृद्धि और पर्यावरण–

हमारा देश आज दिन–प्रतिदिन हो रही जनसंख्या वृद्धि से चिंतित है तथा उसे रोकने हेतु अनेक प्रयास जारी हैं परन्तु कुछ भी सार्थक परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। जैन धर्म में वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व हुए हैं, वे तभी इसकी रोकथाम के लिये संविधान निर्धारित कर गये थे। उन्होंने असि, मसि, कृषि आदि का

उपदेश पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से ही दिया। भगवान आदिनाथ ने नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने का कार्य किया। समस्त स्त्री जाति को भोग्या समझने वाले समाज को विवाह का ज्ञान (विवेक) देकर सद्गृहस्थ बनने का सूत्रपात किया। विवाह जैसे पवित्र बंधन को न समझने वाले देश आज एड्स जैसी भयावह, भयानक बीमारी से ग्रस्त हैं। एड्स पूरे विश्व की समस्या बन गया है, परन्तु जब तक आदिनाथ द्वारा प्रवर्तित मार्ग का अनुकरण नहीं होगा तब तक इससे निजात पाना संभव नहीं है। यदि आज का समाज संयम, ब्रह्मचर्य सिद्धान्त का पालन करता है, संयम से रहता है तो जनसंख्या वृद्धि की इस महामारी से सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है एवं पर्यावरण को विनाश से बचाया जा सकता है।

3.3 स्थावर जीव और पर्यावरण–

'पृथिव्यप्तेजोवायु वनस्पतयः स्थावराः' पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावर (एक इन्द्रिय) जीव हैं। ज्ञातव्य है कि जैनधर्म ने ही सबसे पहले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतियों को जीव कहा है। विज्ञान इसे मानने को तैयार नहीं परन्तु इनमें से वनस्पतियों को उसने जीव मानना प्रारम्भ कर दिया है क्योंकि डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने यह सिद्ध कर दुनिया को बता दिया था कि वृक्षों, फूलों, पत्तियों में भी जान है। उन्होंने कहा है कि एक बूंद अनछने जल में 36450 जीव होते हैं परन्तु जैन धर्म इसमें अनंत जीवराशि मानता है। जिसे हमारे जैनाचार्य हजारों वर्ष पहले अपनी गहन साधना के बल पर जीव बता गये हैं, उन्हें देर–सबेर वैज्ञानिकों को भी जीव स्वीकारना ही होगा। आज वृक्षों की निरन्तर हो रही कटाई से हमारा पर्यावरण असुरक्षित है, जंगल वीरान हो गये हैं, जैनाचार्यों ने वृक्षों को काटना हिंसा बताया है, पाप बताया है, क्योंकि वृक्ष में भी जीव होता है। श्रावक और मुनि में दो भेद जैन दर्शन ने जीवन जीने के लिये किये हैं। उनमें जो श्रावक होता है वह त्रसकाय जीवों की हिंसा का त्यागी होता है तथा स्थावरकाय जीवों का नहीं, परन्तु आवश्यकता के विपरीत यदि एक पत्ता या एक पंखुडी भी श्रावक तोड़ता है तो वह पाप का भागीदार होगा। फिर जो जंगल साफ करने में लगे हैं वे महापापी नहीं तो और क्या हैं ? **'मिट्टी, पानी और बयार, जिन्दा रहने के ये आधार'**। पानी की बात आती है तो जैनाचार्यों ने कहा है कि जिस प्रकार हम तेल को शरीर में लगाते हैं उसी प्रकार पानी का भी हमें उपयोग करना चाहिये। व्यर्थ में पानी का ढोलना पाप है, हिंसा है। आज जल प्रदूषण से सारा संसार आक्रान्त है। पीने का पानी भी आज शुद्ध नहीं है, क्योंकि आज के स्वार्थी मानवों ने उसे गंदा कर दिया है परन्तु उसे पता नहीं इसके भयानक परिणाम मानव को ही झेलना पड़ेंगे। भयानक बीमारियाँ इसी की वजह से हैं। आज देश की गंगा, यमुना जैसी बड़ी–बड़ी नदियाँ जल प्रदूषण से ग्रसित हैं, उन्हें गंदा और किसी ने नहीं उन्हीं के भक्तों ने किया है। जितने भी अभियान चलाये जा रहे हैं वह समय का तकाजा देखते हुए खास पहल करने वाले या सार्थक परिणाम देने वाले नहीं हैं, ऐसे में जैन धर्म में वर्णित जल सुरक्षा, उसकी उपयोगी विधि जल प्रदूषण मुक्ति के लिये रामबाण सिद्ध होगी। अग्नि, वायु और पृथ्वी की सुरक्षा व उसका सही उपयोग आज नहीं हो पा रहा है। भूकम्प जैसी भयानक विपदा से आखिर हमें क्यों जूझना पड़ता है ? मात्र पृथ्वी पर हो रहे अत्याचार के कारण। जिस प्रकार से द्रुत गति से पृथ्वी का क्षरण चालू है उसे देखकर लगता है कि मानव विनाश का समय आने वाला है। जैन दर्शन की दृष्टि में यदि पृथ्वी की थोड़ी सी भी मिट्टी बिना प्रयोजन खोदी गई तो वह पाप की श्रेणी में आयेगा। यदि विश्व को भूमि के कोपभाजन के भयावह ज्वालामुखी से बचाना है तो जैनाचार्यों के कथन को आचरण में लाना होगा। वायु प्रदूषण, अग्नि प्रदूषण घातकरूप लेता जा रहा है इसका मुकाबला जैन सिद्धान्त करने में पूर्ण समर्थ हैं।

3.4 दिगम्बर मुनि और पर्यावरण–

'मूर्च्छा परिग्रहः' पदार्थों में ममत्व का नाम परिग्रह है। अपरिग्रही वृत्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जैन साधुओं की दिगम्बर मुद्रा है। दिशायें ही जिसकी अम्बर हो, धरती ही जिसका बिछौना हो, आकाश ही जिसका ओढ़ना हो, पिच्छी

(मूयर पिच्छी) से स्थल को परिमार्जित करके जो उठते, बैठते हों, ईर्यापथ से विहार करते हों, भाषा समिति और वचन गुप्ति का पालन करते हुए जो हित–मित प्रिय वचन बोलते हों, दिन में एक बार शुद्ध सात्विक करपात्र में भोजन ग्रहण करते हों, ऐसे निश्छल, निसर्ग दिगम्बर मुनि का कोई भी आचरण कैसे पर्यावरण प्रदूषित करेगा ? पर्यावरण सुरक्षा कैसे की जाये इसके लिये दिगम्बर जैन साधु जीते जागते, चलते–फिरते उदाहरण हैं। आज परिवारों में वैचारिक प्रदूषण से अनेक परिवार बिखर रहे हैं, परन्तु जैन दर्शन कहता है कि हित–मित प्रिय वचन बोलो तो यह स्थिति ही नहीं आयेगी।

3.5 जिओ और जीने दो, अहिंसा परमो धर्म–

भगवान महावीर स्वामी का प्रमुख सिद्धान्त 'जिओ और जीने दो' जो कि जैन धर्म का प्रमुख सूत्र भी है। इस 'जिओ और जीने दो' के सूत्र में पर्यावरण के जीव तत्व के प्रति आदर का भाव निहित है और पर्यावरण की जैन अवधारणा शामिल है। एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी प्राणी जीना चाहते हैं, किसी को भी मरना पसन्द नहीं, चाहे वह नाली का कीड़ा ही क्यों न हो ? '**स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि**' ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। जैन दृष्टि में केवल मनुष्य का प्राणघात करना ही हिंसा नहीं बल्कि राग–द्वेष को भी हिंसा माना गया है। पुरुषार्थसिद्धयुपाय में कहा है–

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिः हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।

अर्थात् राग–द्वेषादि का उत्पन्न नहीं होना अहिंसा है और उन्हीं राग–द्वेषादि की उत्पत्ति हिंसा है, यह जिनागम का सार है। जैन धर्म में 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा ही परम धर्म है। वर्तमान दौर युद्ध, आतंकवाद का है। विभिन्न राष्ट्रों के पास अस्त्र–शस्त्र, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम आदि नहीं होते तो विश्व समाज को पर्यावरण का इतना खौफनाक मञ्जर नहीं देखना पड़ता।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्–

''**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**'' परस्पर एक दूसरे जीव का उपकार करना जीव का कर्त्तव्य है। यह उपकार दया का प्रतीक है। उपरोक्त सूत्र पर यदि दुनिया चलने लगे तो फिर पारिवारिक या अन्य पर्यावरणीय प्रदूषण जैसा असंतुलन ही नहीं होगा। सुनामी लहरों के कहर के बीच उपरोक्त सूत्र के अनुरूप आचरण का अच्छा उदाहरण देखने को मिला। 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' सूत्र भाई चारे का सूत्रपात कर विश्व में पारिवारिक प्रदूषण से मुक्ति दिलाता है।

पाँच व्रत–

जैन धर्म में जो पाँच व्रत प्रतिपादित किये गये हैं वे पर्यावरण सुरक्षा में महत्त्वूपर्ण स्थान रखते हैं। '**हिंसानृतस्तेया–ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्**' अर्थात् हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है। अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रह प्रमाण अणुव्रत, ये पाँच अणुव्रत हैं। अहिंसा का प्रतिपादन जितनी सूक्ष्म दृष्टि से जैनधर्म, दर्शन में मिलता है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। यदि अहिंसा का पालन विश्व करे तो देश में जो कत्लखानों, मांस उत्पादनों से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है वह समाप्त हो जायेगा। कत्लखानों के खून से आज वातावरण दिन प्रतिदिन गंदा होता जा रहा है, विशेष तौर पर जल। जैन धर्म की 'अहिंसा' के इस रामबाण सूत्र से देश को वधगृहों से मुक्त किया जा सकता है, जो पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख स्तम्भ कारण है।

3.6 जैन श्रावक की दिनचर्या व पर्यावरण–

जैन श्रावक को पालनीय 12 व्रत बतलाये गये हैं–पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। जैनाचार्यों ने श्रावक की दिनचर्या का जो संविधान बनाया है वह निश्चितरूप से पर्यावरण की सुरक्षा की दृष्टि से बनाया गया लगता

है। रात्रिभोजन त्याग, जलगालन विधि, सामायिक पाठ, सप्त व्यसनों का त्याग, अष्ट मूलगुणों का पालन आदि ये सभी आचरण पर्यावरण रक्षा की दिशा में जैन धर्म का महत्त्वपूर्ण कदम है। जैन श्रावक की दैनिक चर्या पर्यावरण को साथ लेकर हुआ करती हैं। उसकी चर्या ही 'पर्यावरण सुरक्षा का अमर संदेश देती है। जैन श्रावक पूजन के समय नित्यप्रति शान्तिपाठ में निम्न पंक्तियों में सुखमय एवं संतुलित पर्यावरण की कामना करता है–

होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै तिल भर न रहे व्याधियों का अंदेशा।।
होवे चोरी न मारी, सुखमय वरतै हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर वृष को, जो सदा सौख्यकारी।।

नित्य स्तुति, मेरी भावना, पूजनपाठ, आलोचना पाठ, शान्तिपाठ, प्रतिक्रमण, सामायिक पाठ आदि की प्रत्येक पंक्ति पर्यावरण रक्षा का अमर संदेश देती है। "मेरी भावना" नामक काव्य कृति में पं. जुगलकिशोर मुख्तार की निम्न पंक्तियाँ मानवीय पर्यावरण को साफ, स्वच्छ रखने में अहम् भूमिका निभाती हैं–

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्त्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्य भाव रखूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जाये।।

तथा

ईति भीति व्यापै नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।

श्रावक की दिनचर्या प्रमाद रहित होनी चाहिये। यदि प्रमाद होता है तो भले ही किसी जीव की हानि न हो फिर भी पाप लगता है। '**प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा**' सूत्र में पूज्य उमास्वामी आचार्य ने यही कहा है। प्रमाद रहित होने पर हुई हिंसा का पाप नहीं लगता है फिर भी ऐसी अवस्था में जैन श्रावक अपने प्रमाद के प्रति दुखी होता है। अपराधी श्रावक खुले हृदय से प्रकृति के विभिन्न अवयवों–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के प्रति किये गये अपने अपराधों की क्षमा मांगता है। पर्यावरण रक्षा का ऐसा पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त स्तुत्य है, अनुकरणीय है। आलोचना पाठ में जैन श्रावक बोलता है–

पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखाते पवन बिलोल्यो।
हा हा परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जीव जे आये, ते हूँ परलोक सिधाये।
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।

अंत में मंगलकामना इसी पाठ में करते हैं कि–

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ें, आनन्द मंगल होय।।

राष्ट्र की मंगलकामना और भाईचारे की प्रतीक सामायिक पाठ की निम्न पंक्तियाँ भी अत्यन्त प्रेरणास्पद हैं–

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति मैत्रीभाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोदभाव, दुखी और क्लेष युक्त जीवों के प्रति करुणा (कृपा) भाव तथा प्रतिकूल विचार वालों के प्रति मध्यस्थ भाव रखें। हे देव! मेरी आत्मा सदा ऐसे भाव धारण करे। उपरोक्त सभी उदाहरण तो एक बानगी है, जैन दर्शन इससे भरा पड़ा है।

3.7 अनेकान्तवाद और पर्यावरण–

जैन दर्शन का अनेकान्तवाद वास्तव में वैचारिक हिंसा को रोकने के लिये सफल औषधि है। एक ही व्यक्ति में अनेक गुण विद्यमान होते हैं परन्तु यदि हम उसमें एक ही एकांत दृष्टि को लेकर बैठ जायें तो निश्चित ही झगड़ा होगा। जैन दर्शन 'ही' को छोड़ने तथा 'भी' को अपनाने की प्रेरणा देता है। जहाँ 'ही' है वहाँ विवाद है और जहाँ 'भी' है वहाँ शान्ति है। आज जो घर–घर में वैचारिक पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है उसके निवारण का उपाय जैन दर्शन का स्याद्वाद, अनेकान्त है।

'स्याद्वाद से तो सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है।' स्याद्वाद की परिभाषा आचार्य समन्तभद्र ने इस प्रकार की है–

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेय विशेषकः।।

अर्थात् सर्वथा एकान्त का त्याग करके कथंचित् विधान करने का नाम स्याद्वाद है। वह सात अंगों और नयों की अपेक्षा रखता है तथा हेय और उपादेय भी बतलाता है। स्याद् यानि कथंचित् वाद यानि कथन। कथंचित् कथन पद्धति का नाम स्याद्वाद है। यदि जैन धर्म की इस विचार दृष्टि को विश्व अपना ले तो वैचारिक मतभेद कोसों दूर भाग जायेंगे और वैचारिक पर्यावरण शुद्ध हो जायेगा। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से जैनधर्म पर्यावरण की रक्षा के प्रति अत्यधिक सजग है। जैन धर्म केवल भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए ही जागरूक व प्रयत्नशील नहीं है बल्कि अन्तः पर्यावरण की विशुद्धि को भी एक अभिन्न अंग मानता है। जब तक आत्मा शुद्ध नहीं होगी, अन्तरंग परिणाम शुद्ध नहीं होंगे, तब तक पर्यावरण सुरक्षा संभव नहीं है। पर्यावरण की सच्ची सुरक्षा तभी मानी जावेगी जब भौतिक व आध्यात्मिक पर्यावरण का ध्यान रखा जावे।

हमारी गुमराह और मिथ्यादृष्टि विचारधारा ने सभ्यता के विकास के नाम पर सारे पर्यावरण को तहस–नहस कर दिया है। संपूर्ण विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है। हम पर्यावरण का स्वयं एक हिस्सा है, यह जानते हुए भी हम पर्यावरण सुरक्षा के प्रति संवेदनशील नहीं हैं। आज हमें समय की भयावह स्थिति देखते हुए संभलना होगा, वरना प्रकृति भी शान्त रहने वाली नहीं है। भूकम्प, तूफान, बाढ़, बिजली गिरना, सुनामी लहरें आदि आखिर क्या दर्शा रही हैं ? फिर भी पर्यावरण के प्रति लापरवाही बरती जा रही है।

26 दिसम्बर 2004 को आयी 'सुनामी लहरों' से हमें सबक लेने की जरूरत है जिसमें भारत, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, मलेशिया, म्यांमार, मालदीव और बंगलादेश के लाखों लोगों को जान गंवानी पड़ी। अकेले श्रीलंका और इण्डोनेशिया में ढाई लाख से अधिक लोग मर चुके। भारत में तमिलनाडु, केरल, अण्डमान निकोबार द्वीप, पांडिचेरी, आंध्रप्रदेश सबसे अधिक इस त्रासदी से प्रभावित हुए। हजारों जानें गयीं, हजारों बिछुड़ गये, जो जीवित बचे वे मौत और जीवन के बीच संघर्ष कर रहे थे। चारों ओर से उदारता से इस त्रासदी को झेल रहे लोगों के लिए सहायता पहुँची, जैन समाज भी इसमें आगे रहा। 'सुनामी लहरों' के बाद तरह–तरह से लोगों के, वैज्ञानिकों के विचार आने लगे, परन्तु जहाँ

दृष्टि होना चाहिए वहाँ कोई दृष्टिपात नहीं कर पाया कि आखिर यह 'सुनामी लहरें' क्यों आयी ? शायद जैन दर्शन से सीख लें।

विश्व यदि पर्यावरण विनाश के इस भयानक जंजाल से सस्ते में निपटना चाहता है तो उसे जैनधर्म–दर्शन में वर्णित पर्यावरण सुरक्षा की बातों पर गहनता से विचार करना चाहिए। जैन दर्शन में वर्णित प्रत्येक बात पर्यावरण सुरक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। पर्यावरण है तो हम हैं अन्यथा कुछ भी नहीं है। पर्यावरण संरक्षण संवर्द्धन के प्रति हम सजग और जागरूक रहें। जैन धर्म की पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि विश्व के लिए अमूल्य धरोहर है।

3.8 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1 — भगवान आदिनाथ ने जनसंख्या नियन्त्रण के क्या उपाय बताये ?

प्रश्न 2 — जल प्रदूषण को रोकने में जैन सिद्धान्तों का क्या योगदान है ?

प्रश्न 3 – 'जिओ और जीने दो' का सूत्र पर्यावरण संरक्षण में किस तरह योगदान कर सकता है ?

प्रश्न 4 — जैन श्रावक की दिनचर्या का पर्यावरण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है ?

पाठ-4–जैन संस्कृति और पर्यावरण-एक वैज्ञानिक दृष्टि

4.1 पर्यावरण संरक्षण की समस्या–

इक्कीसवीं सदी के मानव के समक्ष अपनी दैनिक मूलभूत समस्याओं के अलावा जो सबसे भयंकर और अनिवार्य समस्या उठ खड़ी हुई है, वह है पर्यावरण संरक्षण की समस्या। प्रकृति की वस्तुओं के प्रति मानव समुदाय की उपेक्षा सैकड़ों वर्षों से अनवरतरूप से चलती आ रही थी और वर्तमान काल में अब इसकी विकरालता स्पष्टरूप से दिखलाई पड़ने लगी है। विश्व के लोगों ने अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रकृति का भरपूर दोहन किया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज सम्पूर्ण विश्व को प्रदूषण की विकराल समस्या से जूझना पड़ रहा है। पिछली शताब्दियों में हुए वैज्ञानिक प्रयोग, औद्योगिक क्रान्ति की होड़, भौतिक आनन्द, जंगलों की लगातार कटाई, खेतों में जरूरत से अधिक पैदावार बढ़ाने के हिंसक प्रयत्न और निरीह प्राणियों की निर्मम हत्या ने प्राकृतिक वातावरण को छिन्न–भिन्न कर इसे दूषित बना दिया है जिससे प्राकृतिक संतुलन डगमगाने लगा है। आज विकास के नाम पर भूमि, जल और वायु प्रदूषित किये जा रहे हैं तथा अन्तरिक्ष तक में प्रदूषण फैलाया जा रहा है। इस परिस्थिति में आज प्राणी जगत के संपूर्ण अस्तित्व पर सीधा संकट उपस्थित हो गया है।

4.2 कत्लखाने पर्यावरण के दुश्मन–

जीवन–दायिनी अहिंसा के अभाव में आज क्रूरता की शक्ति बढ़ने लगी और व्यक्ति मांसाहारी हो गया। इस मांसाहार के कारण हमारे देश में कत्लखाने का खुलने लगे। कत्लखानों का दिनों–दिन बढ़ना पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। मांसाहार हिंसा और क्रूरता की जमीन से पैदा होने वाला आहार है जो प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल है और जिसके कारण पर्यावरण सर्वाधिक प्रदूषित व असंतुलित हो रहा है।

मांस–निर्यात और विदेशी मुद्रा कमाने के लिए कत्ल का रास्ता अपनाना भारतीय संस्कृति और प्रकृति, दोनों के खिलाफ है। हमारा दुर्भाग्य है कि पर्यावरण–संतुलन का हिसाब नहीं रखा जाता। जो भयंकर नुकसान इससे पहुंचेगा उसके बारे में कोई जान नहीं सकेगा। इससे पशुधन अनुपात भी गड़बड़ाया है। घास खाकर दूध देने व श्रम करने वाले पशु–धन का कत्ल कर देना क्या सभ्य मानव समाज का न्याय है ?

4.3 भारतीय संस्कृति में पर्यावरण–

यद्यपि बीसवीं सदी में पश्चिम के वैज्ञानिकों और विचारकों ने प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण पर ध्यान दिया तथा इसके लिए कुछ उपाय भी बतलायें, पर पिछले कई दशकों में उपभोक्ता संस्कृति और भौतिकवादी विचारधारा का जिस तेजी से विकास हुआ है, उससे विश्व के प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास होता गया और आज मानव उसके भयावह परिणामों के भुक्तभोगी हो रहे हैं। अब इससे बचने के उपाय विश्व के दूसरे देशों के पास नहीं हैं, पर यदि हम भारतीय संस्कृति का अध्ययन करें तो जैन और अन्य धर्म साहित्य भी इस तरह की प्रेरणा देते हैं जिससे हम विश्व के समक्ष उत्पन्न इस त्रासदी का सामना करते हुए उससे बच सकें। अब सभी इस बात की गंभीरता को समझने लगे हैं कि पर्यावरण और प्रकृति की सुरक्षा के लिए धार्मिक एवं नैतिक विश्वासों तथा आस्थाओं पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। जहां वैदिक धर्म में प्रकृति के अंगों, क्रमशः क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर की बात कहकर इसके प्रति आस्था उत्पन्न की गई है, वहीं अन्य धर्मों में भी लोगों को प्रकृति के प्रति उदार रहने का संदेश दिया गया है। पर जैन धर्म एवं इसमें वर्णित जीवन शैली पर विचार करने से यह स्पष्ट पता चलता है कि इसने प्राकृतिक वस्तुओं के संरक्षण पर सबसे अधिक ध्यान दिया है तथा इसके लिए तथ्यपरक मार्गों के अनुसरण करने की बात भी विस्तार से बतलाई है।

मनुष्य पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक–

मनुष्य पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है, यदि उसके शरीर में विकार उत्पन्न होते हैं तो संपूर्ण पर्यावरण कलुषित हो उठता है। अतः स्वच्छ पर्यावरण के लिए मनुष्य का स्वस्थ होना आवश्यक है। हम वही होते है जो पेट में डालते हैं। 'We are, what we eat" अर्थात् पर्यावरण का संबंध हमारे आचार–विचार, खान–पान, आहार–विहार से घनिष्ठरूप से जुडा हुआ है।

पर्यावरण केवल बाह्य जगत से ही नहीं वरन् अन्तर्जगत और जीवन के प्रति दृष्टिकोण से सह संबंधित आन्तरिक पर्यावरण से भी होता है। अर्थात् पर्यावरण के निर्माण में जड़ (पुद्गल) और चेतन (मन–मस्तिष्क, आत्मा) दोनों की अपनी–अपनी निश्चित भूमिका होती है।

आन्तरिक पर्यावरण–

आन्तरिक पर्यावरण– मानसिक धरातल से जुड़ा होता है। इसका प्रदूषण व्यक्ति की काषायिक भावों से हुआ करता है, जो क्रोध, मान, माया और लोभरूप एवं हिंसा, अतिभोगवाद एवं संग्रह की दुष्प्रवृत्ति के कारण बढ़ता है। जब तक मन इन कषायों से निर्मुक्त होकर स्वच्छ नहीं होगा, भीतरी पर्यावरण विशुद्धि नहीं बन सकती अस्तु आन्तरिक पर्यावरण की विशुद्धि अहिंसा, करुणा, दया और मैत्री जैसे उदात्त जीवन–मूल्यों से ही संभव हो सकती है।

हमारे देश के 41 वें संविधान संशोधन द्वारा प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्त्तव्य हो गया है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अंतर्गत वन, झील, वन्य–प्राणी आदि आते हैं, की रक्षा करे, उसका सम्वर्द्धन करे, प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे तथा अवैध शिकार से बचे। संविधान की उक्त धारा में पर्यावरण के दोनों घटकों के संरक्षण की बात आ जाती है।

पर्यावरणविदों की मान्यतानुसार, इस विराट सौरमण्डल में केवल पृथ्वी पर अद्भुत जीवन–संरचना है। यहां अगाध सागर, उत्तुंग पर्वत, जीवन रस बहाती नदियाँ और वायुमण्डल की छत्रछाया है। नदियों के जल का सिंचन पाकर इस उर्वरा भूमि पर हरे भरे पेड़–पौधे उत्पन्न हुए हैं। पेड़–पौधों ने अपनी प्राण–वायु से अन्य जीवधारियों को सांसे दी, भोजन एवं जीवन की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति की है। प्रकृति की संपूर्ण व्यवस्था प्राणियों की जीवनधारा को सुरक्षित बनाए रखने की हुआ करती है।

परन्तु मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए अतुल प्राकृतिक–सम्पदा को नष्ट करने में लगा हुआ है। एक संवेदनशील चिंतक ने एक जगह लिखा है– **''आसमा भरा परिंदों से, पेड़ कोई हरा गिरा होगा''।** इसके कारण पर्यावरण विक्षुब्ध हो रहा है। वह अपने सुख के लिए अन्य प्राणियों की हत्या करने से बाज नहीं आ रहा है। जिस कारण पर्यावरण का संतुलन लड़खड़ा गया है।

आज संपूर्ण विश्व में एक चेतावनी, चिंतन और चेतना का दौर सा चल रहा है। चेतावनी का विषय है– **पर्यावरण,** चिंतन का विषय है– **पर्यावरण का असन्तुलन/प्रदूषण** और चेतना का विषय है– **पर्यावरण को सन्तुलित/संरक्षित करने का उपाय।**

आज की नई सभ्यता, जो आधुनिक टैक्नोलॉजी पर आधारित भोगवादी संस्कृति की प्रणेता है, ने पर्यावरण एवं परिस्थिति को असन्तुलित कर दिया है। पर्यावरण ऐसी प्राकृतिक–सुधा है, जिसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह करोड़ों वर्षों से मानव का संरक्षण एवं सम्पोषण करती आ रही है। लेकिन विकास की अंधी–दौड़ में मानव प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर रहा है।

4.4 जैनधर्म के पाँच मूल सिद्धान्त एवं पर्यावरण संरक्षण–

जैनधर्म मूलरूप से पांच सिद्धातों पर आधारित है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य। इन्हीं मार्गों

पर चलकर भौतिक तथा आध्यात्मिकरूप से प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा की जा सकती है। इसके अलावा जैन तीर्थंकरों एवं श्रमणों ने स्वयं एक ऐसा आदर्श जीवन प्रस्तुत किया है, जो उनके दया भाव एवं प्रकृति प्रेम को दर्शाता है। जैनधर्म में अहिंसा को सबसे अधिक महत्व देते हुए प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की रक्षा करने का संदेश दिया गया है। इस मत में जीव के पांच प्रकार निर्धारित किये गये हैं–पृथ्वीकाय, अपकाय (जलकाय), तेउकाय (अग्नि या तेज), वायुकाय तथा वनस्पतिकाय। ये स्थावर जीव हैं, जबकि त्रस जीव के चार प्रकार बतलाये गए हैं–द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रिय), त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय। उसी प्रकार जैनधर्म में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति में जीवत्व की अवधारणा कही गयी है। उपर्युक्त जीव स्थिर है और जीवत्व से संपूर्ण ब्रह्माण्ड ओतप्रोत है। जैनधर्म के अनुसार पृथ्वी सजीव है और इसकी हिंसा नहीं होनी चाहिए। इसके छत्तीस तत्व बतलाये गये हैं जैसे मिट्टी, बालू, लोहा, तांबा, सोना और कोयला वगैरह। इन सभी प्राकृतिक सम्पत्तियों का अत्यधिक दोहन–शोषण नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार जलकायिक जीवों की भी हिंसा नहीं होनी चाहिए। साहित्य में जल को दूषित नहीं करने तथा अनावश्यकरूप से उसकी बरबादी न करने की सलाह दी गई है। प्रदूषित जल से मानव और जल में रहने वाले जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

4.5 जैन दर्शन में 'परस्परोपग्रहो जीवनाम्' का अमर सूत्र एवं पर्यावरण–

श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ में एक महान् सूत्र दिया है–'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' (5/21) परस्पर एक जीव का दूसरे जीवों के लिए उपकार है। जगत् में निरपेक्ष जीवन नहीं रह सकता। एक बालक की योग्यता के निर्माण में उसके माता–पिता, गुरु, समाज, शासन, संगति एवं पर्यावरण आदि सभी का उपकार जुड़ा होता है। हर व्यक्ति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से जुडा है और अन्यान्य ग्रहों की अदृश्य शक्तियों से प्रभावित होता रहता है। उसके अस्तित्व की डोर धर्म और अधर्म द्रव्य, आकाश, काल और पुद्गल द्रव्य के उपकार से सम्बद्ध है। प्राणी एवं मनुष्य, वनस्पति जगत् के उपकार से निरपेक्ष नहीं। मनुष्य की त्याज्य अशुद्ध हवा जहाँ वृक्ष–पादपों के लिए ग्राह्य होती है, वहीं वनस्पतियों द्वारा उत्सर्जित वायु मानव व अन्य प्राणियों के लिए प्राणवायु है। इस अन्योन्याश्रय सिद्धान्त पर प्रकृति और सम्पूर्ण पर्यावरण टिका हुआ है।

4.6 जैन संस्कृति का बहुमान–तीर्थक्षेत्र / मंदिर तथा पर्यावरण–

समस्त जैन तीर्थ/सिद्धक्षेत्र/ अतिशय क्षेत्र, हरे–भरे वृक्षों से युक्त पर्वत शिखरों, नदियों के कूलों, झीलों, उद्यानों आदि पर अवस्थित हैं। चाहे वह निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर (मधुवन) हो या गिरनार–पर्वत, चाहे श्रवणबेलगोल की विन्ध्यागिरि व चन्द्रगिरि की मनोरम उपत्यकाएँ हों या राजस्थान के आबू पर्वत पर दिलवाड़ा के विश्व–प्रसिद्ध मंदिर या बुन्देलखण्ड के अतिशय क्षेत्र–देवगढ़, कुण्डलपुर, सोनागिरि, गुजरात का शत्रुञ्जय क्षेत्र, पालीताणा या उत्तर प्रदेश का हस्तिनापुर सभी शुद्ध पर्यावरण के पवित्र स्थान हैं।

पुराणों से सिद्ध है कि प्राचीन जैनमंदिर उद्यानों, सरोवरों से घिरे बगीचों में हुआ करते थे। इसीलिए आज भी मंदिरों के सेवकों को माली या बागवान कहते हैं। ध्यान व उपासना के केन्द्र समस्त जिनालय उद्यानों के बीच होते थे। इसका संबंध निश्चित ही पर्यावरण से है जो प्रदूषण से रहित सुरक्षित स्थानों में निर्मित होते थे।

श्रमणों की तपस्थली निर्जन घने वन या पर्वतमालाएँ/गुफाएं हुआ करती थी। 20 तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि सम्मेदाचल उनकी तपस्या के कारण अत्यन्त पवित्र पर्यावरण प्रदान कर रहा है। जहाँ घने जंगलों से शुद्ध प्राणवायु (ऑक्सीजन) का अपार भण्डार अनायास ही साधक की साधना को निर्विघ्न बनाये रखता है। प्राकृतिक सुषमा से युक्त, शान्त, एकान्त वातावरण अध्यात्म की साधना में सहायक हुआ करता है। ग्रीष्मकाल में भी वृक्षों के कारण शीतल

आर्द्र वायु का संचार सूर्य की तपन को कम कर देता है।

4.7 अहिंसा और पर्यावरण संरक्षण–

अहिंसा, पर्यावरण के संरक्षण का मूल आधार है। अहिंसा की आचार संहिता जीवों की रक्षा करके पर्यावरण को पूर्ण सन्तुलित रखती है। अहिंसा जैन संस्कृति का प्राण है।

श्रावक की भूमिका में आरंभी, उद्योगी और विरोधी हिंसा त्याज्य नहीं है, परन्तु संकल्पी–हिंसा का वह त्यागी होता है। त्रस जीवों की हिंसा का त्यागी होता है तथा एकेन्द्रिय स्थावर जीवों जैसे–पृवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति की भी अकारण विराधना नहीं करता है।

शाकाहार और पर्यावरण सन्तुलन–

इन दोनों का चोली–दामन का संबंध है। प्रकृति ने मानव आहार के लिए वनस्पति व स्वादिष्ट फल–मेवा दिये हैं। जो पशु–पक्षी मानव के प्यार से इतने वफादार बन जाते हैं कि अपना सब कुछ निछावर कर सकते हैं, उन्हें अपना आहार बनाना कितना घृणित है ?

मांसाहार क्रूरता की जमीन से पैदा होने वाला आहार है जो सर्वथा प्रकृति के प्रतिकूल होता है। मांसाहार पृथ्वी पर जलाभाव के लिए उत्तरदायी है। प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि जहाँ प्रति टन मांस उत्पादन के लिए लगभग 5 करोड़ लीटर जल की आवश्यकता होती है, वहाँ प्रति टन चावल/गेहूँ के लिए क्रमशः 45 लाख व 5 लाख लीटर जल की ही आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका में कत्लखानों के कारण पर्यावरण–विनाश की जो स्थिति पैदा हो रही है, वही भारत में होनी सुनिश्चित है।

भारत में पशुधन का जिस गति से विनाश कर मांस उत्पादन किया जा रहा है, वह मांस निर्यात भारत के गणतंत्र शासन की अनीति के कारण हो रहा है जो विदेशी मुद्रा के अर्जन के अलावा और कुछ नहीं देखती। देश के कत्लखाने पर्यावरण के शत्रु हैं। यह अत्यनत विचारणीय है।

4.8 श्रमणाचार एवं पर्यावरण–

जैन मुनि–अट्ठाइस मूल गुणों का पालन करते हैं जो विशुद्ध वैज्ञानिक एवं पर्यावरण संरक्षण के अनुकूल है। मुनि का अपरिग्रह महाव्रत प्रकृति से अतिदोहन पर अंकुश रखने का प्रतीक है। उनका अस्नान मूलगुण, जहाँ जल अपव्यय रोकता है वहीं अयाचित आहार बहुगुणित अभिलाषाओं को विराम देने और सात्त्विक भोजन को आसक्ति रहित होकर करने का विधान है। पेट की भूख से संग्रह प्रवृत्ति नहीं है अपितु अनंत इच्छाओं /लालसा की भूख से संग्रह प्रवृत्ति को बल मिलता है। इसी प्रकार पंच समितियों का पालन भी पर्यावरण संरक्षण में अपनी तरह से योग देता है एवं निर्जन्तु/एकान्त स्थान में मलमूत्र क्षेपण वायु प्रदूषिण के बचाव के लिए है।

4.9 श्रावकाचार एवं पर्यावरण–

'श्रावक बारह प्रकार के आचार का पालन करता है।

(1) पंच अणुव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण व्रत) जो मनुष्य के आन्तरिक पर्यावरण की शुद्धि करके मन/भावना को पवित्र बनाते हैं। भावना के परिष्कार से अन्तर्जगत के प्रदूषण का विनाश होता है।

(2) तीन गुणव्रत (दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदण्ड विरति)।

अनर्थदण्ड विरति के अन्तर्गत–अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादाचरित, हिंसादान और अशुभश्रुति का त्याग करता है। इनके अनुशीलन से बाह्य पर्यावरण शुद्ध रहने के साथ वह अनर्थदण्ड विरति के अन्तर्गत ऐसे व्यापारादि नहीं कर सकता

जो प्राणियों को कष्ट पहुँचाये, अनावश्यक जंगल कटवाये, जमीन खुदवाये, जल प्रदूषित करे, विषैली गैस का प्रसार या हिंसा के उपकरणादि देना यह सब हिंसा दान के अंतर्गत आता है। श्रावक इन सब का त्यागी होता है। साम्प्रदायिक तनाव, जातीय दंगे जैसी अशुभ बातों का करना–कराना, सुनना–सुनाना अशुभश्रुति है, जिसका वह त्यागी होता है।

(3) चार शिक्षा व्रत–सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिमाण और अतिथि संविभाग ये चारों जीवन को संयमित व मर्यादित बनाकर पर्यावरण सन्तुलन में अहम भूमिका का निर्वाहन करते हैं। इसके अलावा श्रावक रात्रिभोजन त्यागी व जल छान कर पीता है जो पर्यावरण प्रदूषण से बचे रहने की अचूक दृष्टि प्रदान करते हैं।

4.10 जैन दर्शन में वनस्पति में जीवत्व–

जैन सिद्धान्तों में वनस्पति को जीवत्व माना गया है तथा उसमें चेतना की बात स्वीकार की गई है। यहाँ वनस्पति, प्राणी, भू–तत्व और वायु के आपस में गहरे संबंध हैं, यह स्पष्ट किया गया है। वैज्ञानिक शोध भी इसे स्वीकारते हुए यह बतलाती हैं कि पारिस्थितिक रूप से पौधे, जीव और जानवर तक एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। किसी भी समूह में हस्तक्षेप से दूसरे वर्ग पर उसका कुप्रभाव पड़ सकता है। वनस्पति से जहाँ हम शुद्ध प्राणवायु–ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं, वहीं वे हमें फूल–फल प्रदान करते हैं। तथा वर्षा को लाने में सहायक बनते हैं। वृक्ष से भूमि और वायु का अवशोषण होता है। वनस्पति की उपेक्षा हम नहीं कर सकते। हमारे चारों ओर की हरी–भरी भूमि, हवा तथा पानी हमारा पर्यावरण है। अपने स्वार्थ में हम जहाँ उन्हें नष्ट कर रहे हैं, वहीं प्रकृति के अविभाज्य अंग पशु, पक्षियों की भी निर्मम हत्या की जा रही है। जैन साहित्य में पशु–पक्षियों तथा पेड़–पौधों के साथ दुर्व्यवहार की निंदा एवं उनके प्रति हिंसा की भावना का विरोध किया गया है। जिन कीड़े–मकोड़ों को हम बेकार समझते हैं, जैसे केंचुए, मेंढ़क और सांप वगैरह, वे भी हमारी फसल के लिए उपयोगी हैं। उधर जंगलों की बेतहाशा कटाई से दिन प्रतिदिन वर्षा की कमी महसूस की जा रही है। इससे एक तरफ तो हवा में धूल और जहर का प्रवेश हो रहा है, तो दूसरी तरफ वायुमंडल का तापमान बढ़ता जा रहा है। पौधों को काटकर जहाँ हम अनावश्यक हिंसा बढ़ा रहे हैं, वहीं इससे प्रदूषण की वृद्धि भी होती जा रही है। जैन धर्म में हजारों वर्ष पहले ही पेड़ पौधों के साथ तृण तक में जीव के अस्तित्व की बात स्वीकार कर ली गई थी। आज हमारे लोभ के कारण वन सम्पदा तेजी से घट रही है, जिससे प्राकृतिक संतुलन और पर्यावरण बिगड़ रहा है।

जैन दर्शन में कहा गया है कि यदि किसी जीव के प्राण को मन, वचन या कर्म से कष्ट पहुंचाया जाता है, तो यह हिंसा है। अहिंसा के अन्तर्गत मात्र जीव हिंसा का त्याग ही नहीं आता, बल्कि उनके प्रति प्रेम का भाव भी व्यक्त करना धार्मिक कृत्य माना गया है। यहां अहिंसा से तात्पर्य मानव संयम और विवेक से है। प्राणियों के कल्याण के लिए व्यक्ति को राग–द्वेष और कटुवचन का त्याग करना चाहिए। विवेक अहिंसा को जन्म देती है, जबकि हिंसा से प्रतिहिंसा होती है। मानव की हिंसक भावना से प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है।

4.11 तीर्थंकरों के जीवन की घटनाएँ–

जैनधर्म के सिद्धांतों एवं उनके आचार–विचार के अलावा हमें तीर्थंकरों तथा जैन मुनियों के जीवन की घटनाओं से भी उनके प्रकृति के प्रति लगाव व प्रेम की झलक दिखलाई पड़ती है। उन लोगों ने हजारों वर्ष पहले से ही स्वयं अपने को प्रकृति के अधिक से अधिक करीब रखा तथा जनमानस को उसी के अनुरूप जीवन जीने की ऐसी पद्धति बतलाई, जिसमें व्यक्ति स्वस्थ व प्रसन्न रह सके। तीर्थंकरों के जन्म के पूर्व उनकी माताओं द्वारा देखे गये स्वप्नों में प्राकृतिक वस्तुओं या घटनाओं का होना प्राकृतिक जगत से सम्बद्ध मंगल या क्षेम के प्रतीक हैं। वनस्पति जगत को कल्पवृक्ष कहकर प्रकृति का सम्मान किया जाता रहा है। महावीर तथा अन्य तीर्थंकरों ने किसी न किसी वृक्ष के नीचे ध्यान करके ही केवलज्ञान की प्राप्ति की है। पीपल, वट तथा अशोक के वृक्ष हमारे धार्मिक जीवन से लगातार जुड़े हैं। प्राचीन काल

में ऋषि–मुनि स्वयं जंगलों में रहकर प्रकृति की सुरक्षा करते थे। जैन विचारकों ने स्वयं सदैव जीव जन्तु तथा वनस्पति के प्रति संवेदना का भाव रखने का संदेश दिया।

4.12 विश्व में प्रकृति के असंतुलन का संकट–

आज संपूर्ण विश्व में प्रकृति के असंतुलन का संकट पैदा हो गया है। लोगों ने भौतिकवाद और उपभोक्ता संस्कृति की चकाचौंध में प्रकृति के महत्व को भुला दिया है। अब तो विश्व के वैज्ञानिक यहां तक आशंका प्रगट कर रहे हैं कि आने वाले कुछ दशाब्दियों में पृथ्वी का एक बहुत बड़ा हरा–भरा भाग रेगिस्तान में परिवर्तित हो जायेगा तथा कई क्षेत्र में इतनी तेज गर्मी पड़ने लगेगी कि संभवतः वहां जीवन समाप्त होने का खतरा पैदा हो जाये। इस गंभीर संकट से त्राण पाने के लिए हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं धर्म में प्रयुक्त उन संदेशों का प्रचार–प्रसार करना पड़ेगा, जिससे लोग प्रकृति के महत्व को अच्छी तरह समझें तथा उनके प्रति अपनी निष्ठुर भावना का परित्याग कर सकें। संपूर्ण जैन धार्मिक साहित्य में अहिंसा पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है और इसके सूक्ष्मतम स्वरूप की विशद् व्याख्या की गई है, ताकि लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राकृतिक जीवों के प्रति भी अहिंसक बन सकें। यदि हम विश्व में बढ़ रहे प्रदूषण, अपराध, हिंसा एवं प्राणघातक रोगों पर नियंत्रण करना चाहते हैं, तो हमें स्वयं को प्रकृति के अधिक से अधिक करीब ले जाना पड़ेगा। आज प्रकृति संरक्षण सबसे बड़ी मानवीय आवश्यकता है, जिसमें हर स्तर पर हर व्यक्ति को सहभागी होना पड़ेगा। इस तेजी से बढ़ते वैज्ञानिक युग में आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने अतीत से प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने के उपायों को खोजें तथा उनके महत्व को समझें, ताकि मानवता पर आये प्राकृतिक असंतुलन के गहरे खतरे को टाला जा सके।

4.13 पर्यावरण के संबंध में वैज्ञानिक दृष्टि–

विज्ञान में पर्यावरण विज्ञान अत्याधुनिक शाखा है। इसमें विज्ञान की विभिन्न शाखाओं एवं इंजीनियरिंग का समावेश है। इसका विकास विज्ञान व कला की विभिन्न शाखाओं एवं इंजीनियरिंग के अध्ययनों के आधार पर होता गया है। अतः इस विज्ञान में सभी शाखाओं का समावेश है।

पर्यावरण को विज्ञान में इस प्रकार परिभाषित किया गया–हम जहाँ रहते हैं और जो प्राकृतिक वस्तुएँ हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, पर्यावरण कहलाता है। आगे कहा गया कि पर्यावरण दो घटकों–जैविक व अजैविक से मिलकर बना है। इन घटकों में आपसी एवं आंतरिक संबंध होते हैं जो कि भोज्य श्रृंखला का निर्माण करते हैं व जाल के रूप में एक दूसरे से गुंथे हुए रहते हैं। इस प्रकार यह पर्यावरण एक तंत्र के रूप में कार्य करता है, जिसे हम पर्यावरण तंत्र कहते हैं। श्रृंखला का आरम्भ पौधों से होता है, जिनके द्वारा जमीन से जल व तत्वों का अवशोषण कर सूर्यप्रकाश की उपस्थिति में वातावरण से कार्बन डाई ऑक्साइड के साथ फोटोसिन्थेसिस (प्रकाश संश्लेषण) की क्रिया कर भोजन का निर्माण करते हैं। इसका उपयोग पौधों द्वारा स्वयं भी किया जाता है एवं शाकाहारी जीवों द्वारा किया जाता है जो इस पर आश्रित हैं। शाकाहारी जीवों का भक्षण माँसाहारी जीवों द्वारा किया जाता है। जीवन चक्र समाप्त होने पर मृत शरीर का सूक्ष्म जीवों द्वारा विघटन किया जाता है जिससे तत्व जमीन में वापिस मिल जाते हैं एवं गैसेस वायुमंडल में पहुँच जाती है। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। इसमें ऊर्जा का संचार एक दिशा में होता है जबकि तत्वों का चक्रीकरण होता रहता है। इस भोज्य श्रृंखला में निचले–निचले स्तर पर ऊर्जा के दसवें हिस्से की ही प्राप्ति होती है। इस प्रकार ऊर्जा के संचरण में इसका स्वरूप बदलता है, ना इसका ह्रास होता है और ना ही इसे बनाया जा सकता है।

पर्यावरण विज्ञान को इकोलोजी (पारिस्थितिकी विज्ञान) के अंतर्गत सविस्तार समझाया गया है। इकोलॉजी दो ग्रीक शब्दों–ओइकोस–(घर) एवं लोगोस (अध्ययन), से मिलकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ हुआ–घर में

अध्ययन यानी जीवों का उनके रहने के स्थान में ही अध्ययन। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवों के आपसी सम्बन्ध एवं उनका वातावरण से सम्बन्ध का विस्तार से अध्ययन ही पर्यावरण या पारिस्थितिकी विज्ञान है। ई. सन् 1866 में जर्मन वैज्ञानिक अर्नस्ट हिकेल द्वारा पारिस्थितिकी विज्ञान का नाम दिया गया। बाद में विज्ञान की अन्य शाखाओं के वैज्ञानिकों, जैसे–वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, मानवविज्ञान, भूगोल, भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, न्यूक्लियर विज्ञान, माइक्रोबायोलोजी, सामाजिक विज्ञान आदि तथा इंजीनियरिंग क्षेत्र के जुड़ने से इसका विस्तार पर्यावरण विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के रूप में हुआ। इस विज्ञान का महत्व दुनिया को यू. एन. की 1972 में स्टाकेहो में हुई ग्लोबल समिट से समझ में आया।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जैनधर्म/दर्शन/ संस्कृति की बातें पर्यावरण के सरंक्षण/संवर्द्धन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।

पर्यावरण का संबंध वैज्ञानिक पहलू से जुड़ा हुआ है। जैन संस्कृति में परोक्ष या प्रत्यक्ष–पर्यावरण से संबंधित समस्त संभावनाएँ समाहित हैं। जैनधर्म का अनुशीलक पर्यावरण सन्तुलन का सम्पोषक व समर्थक होता है।

विश्व को प्राकृतिक आपदाओं / प्रकोपों से निजात दिलाने की दृष्टि से जैनधर्म के सर्वमान्य सिद्धान्त–अहिंसा एवं शाकाहार बड़े सशक्त वैज्ञानिक सिद्धान्त माने जा सकते हैं।

4.14 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—पर्यावरण संरक्षण की समस्या किन कारणों से उत्पन्न हुई ?

प्रश्न 2—आन्तरिक पर्यावरण की विशुद्धि कैसे संभव है ?

प्रश्न 3—कत्लखाने पर्यावरण के दुश्मन किस प्रकार हैं ?

प्रश्न 4—पर्यावरण संरक्षण में 'परस्परोपग्रहो–जीवानाम्' सूत्र की भूमिका स्पष्ट कीजिये ?

इकाई–3 स्वस्थ जीवन पद्धति

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व

(2) मानसिक तनाव से मुक्ति के उपाय

(3) मानसिक स्वास्थ्य एवं यौगिक जीवन पद्धति

(4) प्राणायाम

(5) सूक्ष्म योगासन की १६ विधियाँ

पाठ-1–जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व

1.1 स्वस्थ रहना मनुष्य के लिये अत्यावश्यक है, क्योंकि स्वस्थ मनुष्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ की सिद्धि कर सकता है। **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** जैसी कतिपय प्रसिद्ध लोकोक्तियाँ भी स्वास्थ्य के महत्त्व को प्रदर्शित करती हैं।

आध्यात्मिक शास्त्रों के अनुसार **स्वस्मिन् तिष्ठतीति स्वस्थः।** जो स्व में (अपने में) स्थित है, वह स्वस्थ है अर्थात् जो विभावों की परतन्त्रता से मुक्त हो चुका है वह स्वस्थ है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक व्याधियों से रहित पुरुष स्वस्थ है। स्वस्थ के भाव या कर्म को स्वास्थ्य कहते हैं।

योगशास्त्र के अनुसार जो मन, बुद्धि और अहंकार पर नियन्त्रण कर लेता है वह स्वस्थ है।

आयुर्वेद के ज्ञाता मानते हैं–

समदोषः समाग्निश्च, समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः, स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात्–जिस व्यक्ति के त्रिदोष सम हैं, जिसकी अग्नि और धातुयें सम हैं, जिसकी मल और क्रियायें व्यवस्थित हैं तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ व मन प्रसन्न है वह स्वस्थ है–ऐसा कहा जाता है।

दिगम्बर जैनाचार्य श्री उग्रादित्य जी महाराज ने स्वस्थ का उपर्युक्त लक्षण स्वीकार किया है। साथ ही निषेधात्मकरूप से स्वस्थ पुरुष का लक्षण बताते हुए उन्होंने लिखा है–

यदा गदैर्मुक्ततनुर्भवेत्पुमान्। तदैव स स्वस्थ इति प्रकीर्तितः।।

अर्थात् जब मनुष्य रोगों से रहित शरीर को धारण करता है तब उसे स्वस्थ कहते हैं।

1.2 मनुष्य और उसका स्वास्थ्य—

यदि मनुष्य का शरीर स्वस्थ है तो इससे बढ़कर संसार में कोई सुख नहीं है। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता है। पहला सुख निरोगी काया। सांसारिक सुखों की गणना में मनुष्य का उत्तम स्वास्थ्य ही पहले नम्बर पर आता है। बिना अच्छे स्वास्थ्य के जीने में कोई आनन्द नहीं रह जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अच्छा स्वास्थ्य किसे कहते हैं ? इसका उत्तर यह है कि अच्छे स्वास्थ्य वाले व्यक्ति का शरीर हल्का और मन प्रसन्न रहता है। अच्छे स्वास्थ्य की दशा में आदमी उछलता है, कूदता है, गाने गाता है। वह मुस्कराता है और खूब हंसता है, उत्साह से और चाव से खूब इधर–उधर घूमता है। वह खूब अच्छी तरह से सोच विचार कर सकता है। वह हर काम फुर्ती से करता है। खूब गहरी नींद सोता है। उसमें जिन्दादिली और हौंसला होता है।

मनुष्य का शरीर अनेक धातुओं से बना हुआ है; जैसे रस, रक्त, हड्डियाँ, मांस, पेशियाँ, स्नायु, मेदा, चर्बी आदि। इनमें सन्तुलन कायम रहना चाहिए। इनका सन्तुलन ही स्वास्थ्य है। कहा जाता है कि जिसके दोष (वात , पित्त, कफ), अग्नि (जठराग्नि), धातुएं सन्तुलित हैं और मल–विसर्जन–क्रिया ठीक होती है, जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न रहते हैं, वही स्वस्थ हैं

स्वास्थ्य के लिये दो बातें आवश्यक हैं : एक व्यक्ति की पाचन–शक्ति ठीक हो और दूसरी यह कि उसका मल–मूत्र पूरे और नियमित तौर पर शरीर से बाहर निकलता रहे। पाचन ठीक होने से आशय यह है कि व्यक्ति जो कुछ खाए, वह पूरे तौर पर पच जाए और शरीर में घुल–मिल जाए, अर्थात् खाया–पिया अंग को लगे, ताकि शरीर को आवश्यकतानुसार पोषण और शक्ति मिलती रहे। मल–मूत्र विसर्जन ठीक–ठाक होना इसलिए जरूरी है कि मल–मूत्र शरीर का कूड़ा होता है जिसमें गन्दा माद्दा भरा होता है। इस माद्दे और गन्दगी के निकलते रहने पर ही शरीर शुद्ध, स्वस्थ और स्वच्छ रह सकता है।

रोगों के बारे में यह सत्य है कि 90% रोग पेट की खराबी से पैदा होते हैं फिर वह चाहे पाचन खराब होने से हो या कब्ज से। वास्तव में स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी उपाय और नियम जानने से पहले यह जरूरी है कि व्यक्ति अपने शरीर के बारे में कुछ जाने। अपने पेशे का ज्ञान हासिल करने के लिए लोग विदेशों तक अध्ययन के लिये जाते हैं और हजारों–लाखों रुपये भी खर्च करते हैं। लेकिन क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि व्यक्ति अपने निज के शरीर के बारे में कुछ भी नहीं जानते ? उस शरीर के सम्बन्ध में व्यक्ति बिल्कुल अंधकार में रहते हैं जिसे लेकर व्यक्ति के समस्त जीवन का व्यापार चलता है। अपने शरीर के बारे में व्यक्ति का यह अज्ञान बहुत बार बुरे स्वास्थ्य और रोगी होने का कारण होता है। अतः व्यक्ति को अपने शरीर के बारे में मुख्य और मोटी बातों का जानना जरूरी है।

पहला सुख निरोगी काया यह उक्ति संसार भर में सुप्रसिद्ध है। शरीर वह रथ है, जिस पर बैठ कर मनुष्य अपने जीवन की यात्रा करता है। शरीर एक चलता फिरता देवालय है। आत्मारूपी भगवान इसी देवालय में रहता है। आचार्य श्री योगीन्द्रदेव जी महाराज ने लिखा है–

देहं चैत्यालयं प्राहुर्देही चैत्यं तथोच्यते।

अर्थात् देह चैत्यालय (मन्दिर) है और आत्मा चैत्य (भगवान की प्रतिमा) है।

स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। अतः शरीर को मन की निर्मलता और बुद्धि की शुद्धता का कारण भी माना गया है। शरीर एक साधन है, जिसकी सहायता से मोक्षरूपी साध्य को प्राप्त करने के लिये जप, तप और ध्यान किया जा सकता है। यदि साधन अशुद्ध होगा तो साध्य की सिद्धि कैसे होगी ?

रोग बाहरी चीज है, जिसका शरीर पर आक्रमण हुआ है। रोग का कारण असाता कर्म का उदय है। ऋतुपरिवर्तन रोगों का प्रमुख बाह्य कारण है। कीटाणुओं के आक्रमण से रोगों की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार की कतिपय भ्रान्त धारणाओं में जी रहा मनुष्य अपने अमूल्य स्वास्थ्यरत्न को खो रहा है।

जिस प्रकार कर्म के चार आस्रवद्वार हैं, उसी प्रकार रोग के भी चार आस्रवद्वार हैं। यदि आस्रवद्वारों का संवर कर दिया जाये तो मनुष्य निरोगी अर्थात् स्वस्थ रह सकता है।

1.3 रोगी होने के चार कारण—

1. अनियमित भोजन–आवश्यकता से अधिक भोजन करना, एक ही पदार्थ का सेवन अतिमात्रा में करना, तले हुए भोजन का अधिक सेवन करना, भोजन को चबाकर नहीं खाना और भोजन में मिर्च–मसालों का अधिक प्रयोग करना–इत्यादि अनेक प्रकार के अयोग्य आहार से रोगों का उद्भव होता है।

2. अप्राकृतिक जीवनशैली–ऋतुचर्या व दिनचर्या का पालन नहीं करना।

3. मानसिक कुविचार–मनोभावनाओं की विकृति रोगों की जननी है।

4. प्रारब्ध–प्राकृतिक आपदायें, अज्ञात रोग, वंशानुगत रोग और दुर्घटनायें इन सभी पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं होता। ये सभी पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से होते हैं।

जिस प्रकार भारतीय संविधान द्वारा निर्धारित आचार संहिता का उल्लंघन करने से व्यक्ति को जेल जाना पड़ता है, उसी प्रकार स्वास्थ्य विषयक आचार संहिता का उल्लंघन करने पर मनुष्य रोगी होता है। औषधियाँ रोगों का दमन करती हैं, शमन नहीं। रोगों का समूल नाश करना हो तो इन्द्रियसंयम और मनशुद्धि को अंगीकार करना चाहिये। जो रोग दवाओं से ठीक नहीं होते, वे दुआओं से ठीक होते हैं।

शरीर निरोग हो तो चित्त प्रसन्न रहता है। जिसका मन प्रसन्न है, वह ऊर्जावान रहता है। ऐसा जीव जिस कार्य को करेगा, उसमें केवल सफलता को ही प्राप्त करेगा। अर्थात् जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये स्वस्थ होना आवश्यक है। शरीर निरोग हो तो चिन्तनशक्ति और धारणाशक्ति बढ़ती है। शरीर के निरोगी होने पर मन–बुद्धि और प्राणों में सात्विकता का संचार होता है।

पाश्चात्य देशों में स्वास्थ्य को धन (Health is Wealth) माना गया है, किन्तु भारतीय संस्कृति में स्वास्थ्य को जीवन (Health is Life) माना गया है। धन की अपेक्षा जीवन अधिक मूल्यवान है। अतः धन से अधिक जीवन की सुरक्षा आवश्यक है। पाश्चात्य चिकित्सक भौतिक देह की चिकित्सा पर बल देते हैं। उनकी दृष्टि में मन और तन, ये दोनों स्वस्थ रहने पर जीवन आनन्दित हो सकता है। अतः उन्होंने केवल कायिक और मानसिक चिकित्सा की चर्चा की है। हमारी संस्कृति तन और मन से अधिक आत्म सापेक्ष संस्कृति है। यहाँ तन और मन का उपयोग केवल उपभोग तक सीमित नहीं है, अपितु तन और मन इन दो साधनों के द्वारा आत्मोद्धार की सिद्धि को जीवन का परम लक्ष्य माना है। कायिक और मानसिक चिकित्सा भौतिक चिकित्सा है। एक जीवन में इन चिकित्साओं का पुनरावर्तन अनेक बार होता है, किन्तु एक बार आत्मिक चिकित्सा सम्पन्न हो जाये तो फिर किसी चिकित्सा की आवश्यकता ही नहीं रहती। आत्मा की चिकित्सा करने पर उपलब्ध होने वाले स्वास्थ्य को ही भारतीय दर्शन में परमार्थ स्वास्थ्य माना है। इस स्वास्थ्य की उपलब्धि का प्रयत्न करने वाले मनुष्य के जीवन में अन्य चिकित्साओं का मूल्य नहीं रह पाता।

दिगम्बर जैनाचार्य श्री उग्रादित्य जी महाराज ने लिखा है–

अशेषकर्मक्षयजं महाद्भुतं, यदेतदात्यन्तिकमद्वितीयम्।
अतीन्द्रियं प्रार्थितमर्थवेदिभिः, तदेतदुक्तं परमार्थनामकम्।।

अर्थात् आत्मा के सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से उत्पन्न, अद्भुत, आत्यन्तिक और अद्वितीय, विद्वानों के द्वारा अपेक्षित, जो अतीन्द्रिय मोक्षसुख है उसे पारमार्थिक स्वास्थ्य कहते हैं।

पारमार्थिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिये कायिक और मानसिक चिकित्सा भी सहयोग करती हैं। इसीलिये ये चिकित्सायें भी उपादेय है। नियमित जीवनशैली को अपनाने से, अपने शरीर की ऊर्जा को बढ़ाने से और उस ऊर्जा का सकारात्मक उपयोग करने से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का मंगल हो सकता है।

1.4 हंसो और स्वस्थ रहो–

हरड़ लगे ना फिटकरी रंग चोखो आ जाय–यह कहावत तो आपने सुनी ही है। हास्यचिकित्सा के विषय में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। इस चिकित्सापद्धति को अपनाने में किसी प्रकार खर्च भी नहीं होता और शरीर का अंग–प्रत्यंग लाभान्वित भी होता है।

हँसी या मुस्कराहट पर हमें कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, परन्तु यह बहुत कुछ पैदा कर सकती है। पाने वाला मालामाल हो जाता है और देने वाला कभी गरीब नहीं होता।

मुस्कान की कोई कीमत नहीं है, फिर भी यह बेशकीमती है। यह मोल में नहीं मिलती है, फिर भी अनमोल है। इसे देने वाले या लुटाने वाले का कुछ घटता नहीं है, पाने वाला खुशहाल एवं निहाल हो जाता है। पाने तथा लेने वाले के

लिये मुस्कान यादगार सौगात बन कर रह जाती है। दोनों को मुस्कान मालामाल कर देती है। कोई इतना अमीर नहीं कि इसके बिना काम चला सके और कोई इतना गरीब नहीं कि इसके फायदे को न पा सके। मुस्कान दोस्तों का अरमान है, अपरिचितों की पहचान है, भव्य व्यक्तित्व का सम्मान है, थके हुए के लिये आराम है। हर मुश्किल के लिये कुदरत की सबसे अच्छी दवा है।

वैसे तो हँसने पर समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं है फिर भी विशेषज्ञों ने प्रातः आसन, प्राणायाम, ध्यान और टहलने के उपरान्त हँसने को उपयुक्त माना है। पेट खाली होने पर अथवा भोजन के तीन/चार घण्टों के बाद हास्य का प्रयोग करना उचित है। बीस से तीस मिनट तक यह उपचार किया जा सकता है।

किसी मनोनुकूल परिस्थिति पर जो हँसने की क्रिया होती है, वह इस कृत्रिम हँसी से भिन्न है। उसका समय तो परिस्थिति और मनःस्थिति पर आधारित है।

सामूहिक हास्यचिकित्सा के लिये किसी प्राकृतिक स्थल का चयन करना चाहिये। प्रदूषणमुक्त, शुद्ध एवं सात्विक पर्यावरण इस चिकित्सा का प्राण है। सामूहिक हास्यचिकित्सा के लिये वृत्ताकार घेरा डालकर बैठना चाहिये। घेरे में केवल निर्देशक होगा।

यदि हास्य चिकित्सा का प्रयोग वैयक्तिकरूप से करना हो तो कमरे की खिड़कियों को खोल कर काँच के सामने यह उपचार करना चाहिये।

हास्य का सर्वाधिक प्रभाव फेफड़े पर होता है। इससे फेफड़े की जीवनीय वायटल क्षमता बढ़ जाती है। अस्थमा और ब्रोंकाइट्स के रोगियों के लिये हास्यचिकित्सा एक अनुपम व्यायाम है।

हँसने के कारण फेफड़ों में हेमोग्लोबिन तथा ऑक्सीजन का जिस तेजी से मिश्रण होता है, उतनी ही तेजी से ऑक्सीजेनेटेड (हेमोग्लोबिन तथा ऑक्सीजन का मिश्रण) विशुद्ध रक्त फेफड़े से हृदय में पहुँच कर महाधमनियों में धकेल दिया जाता है। डीऑक्सीजेनेटेड रक्त की कार्बोक्सिल एसिड कार्बनडाय ऑक्साईड के रूप में प्रश्वास के द्वारा बाहर निकल जाती है। इससे हृदयरोग दूर होता है।

हँसने से रक्त–शुद्धीकरण की प्रक्रिया में अप्रत्याशित सुधार होता है। हँसने से रक्तसंचरण–क्रिया सुव्यवस्थित होती है। रक्तसंचरण के द्वारा एक–एक कोश की भलीभाँति सफाई होती है तथा उन्हें भरपूर पोषण मिलता है।

हँसने से समस्त तन्त्रिकायें झंकृत होती हैं। इससे चेतना का प्रवाह समुचितरूप से प्रवाहित होता है और रोगप्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास होता है। निराशा और उदासी के बादलों को छाँटना हो अथवा प्रसन्नता से तन और मन को आप्लावित करना हो तो खुलकर हँसना आवश्यक है। हँसने से कल्पनाशक्ति, मेधाशक्ति, धृति और धारणाशक्ति का विकास होता है।

हँसते हुए जब पेट में बल पड़ता है तब आँतों में चिपका हुआ पुराना मल मुख्य स्रोत में आ जाता है। इससे बद्धकोष्ठता की समस्या दूर होती है। हँसने से गुर्दे, यकृत, प्लीहा, आमाशय, आँतें और अग्न्याशय में आकुंचन–प्रसारण की क्रिया होती है। इस क्रिया से रक्तसंचार की क्रिया समुचितरूप से होती है और उन अंगों को बल मिलता है।

खुलकर हँसने से ऑक्सीजन की आपूर्ति बढ़ जाती है, जिससे हृदय की मांसपेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं तथा हृदय की धड़कन और श्वसन की रफ्तार भी बढ़ जाती है।

हँसने के कारण अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ भी नियोजित ढंग से हार्मोन्स का स्रवण करने लगती हैं। हँसने से रक्त की बढ़ोत्तरी करने वाले अंग सक्रिय हो जाते हैं। श्वेतप्रदर आदि मासिक समस्याओं से युक्त महिलाओं को इस औषधि का सेवन करना ही चाहिये।

हास्य एक ऐसी संजीवनी है जो वयोवृद्धों में भी यौवनावस्था का उत्साह भर देती है। क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, शत्रुता और भय के भाव हँसने के साथ ही नष्ट होने लगते हैं, जिससे मन की शुद्धि होती है। हँसने से मन में मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थता जैसे भाव प्रगाढ़ होने लगते हैं। इन भावों से आध्यात्मिक उन्नति होती है। अचेतन मन में दमित

वासनाओं के कारण से जो मनोरोग होते हैं, उनका उच्चाटन करने के लिये हास्य ही सर्वाधिक सुगम और सहज पद्धति है।

स्नायविक रोगों के विनाश के लिये भी हँसना लाभप्रद है।

हँसी निराश मनुष्य के जीवन में आशा का प्रकाश फैलाती है। जिस प्रकार क्लान्त और अशान्त पथिक को वृक्ष की घनी और शीतल छाया आनन्दित करती है, उसी प्रकार जीवन संग्राम में हार के अभिमुख हुए मनुष्य को हँसी बल और आनन्द प्रदान करती है।

गुस्से के गुब्बारे में हँसी सुई चुभाने का काम करती है। हँसने के कारण मनोमालिन्य दूर होता है। हँसने से दिव्य सम्भावनाओं के द्वार उद्घाटित होते हैं।

प्रसन्नचित्त मनुष्य अधिक जीता है। दुःखी, चिन्तातुर और उदास मुख वाले मनुष्य को देखकर सभी को ऐसा महसूस होता है, जैसे कोई मौत की खबर लेकर आया हो।

हँसने से मन निष्पाप हो जाता है। निष्पाप मन शारीरिक सौन्दर्य का विकासक है। हँसने से हार्मोन, रक्तसंचार और भावनाओं पर विधेयात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे सारा शरीर दिव्य आभामय हो जाता है।

हास्य चाहे कृत्रिम हो या स्वाभाविक, वह हमारे शरीर पर पूर्ण असर करता है तथा हमारी जीवनीशक्ति, सहनशक्ति और रोगप्रतिरोधकशक्ति की अभिवृद्धि करने में निर्णायक भूमिका प्रस्तुत करता है।

हँसना और हँसाना ही परमात्मा की सच्ची पूजा है। हँसना प्रेम की सम्यक् भाषा है। हँसने से मन इतना संवेदनशील हो जाता है कि उससे पाप नहीं हो सकते। जो मनुष्य जितना हँसता है, उससे रोग और शत्रु उतने ही दूर भागते हैं। इस सत्य को आप जानते हैं न ! इसीलिये रोगों का भय और दुःखों को भूल कर हँसो, खूब हँसो और स्वस्थ रहो।

1.5 नींद भगाये रोग–

वैदिक महर्षि चरक के अनुसार स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भ हैं। यथा–

त्रय उपस्तम्भा इति–आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।

अर्थात्–आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य ये तीन स्वास्थ्य के उपस्तम्भ हैं।

जब तीनों ही उपस्तम्भों का युक्तिपूर्वक सेवन किया जाता है, तब स्वास्थ्य लाभ होता है।

तीनों उपस्तम्भों पर गहन विचार किया जाये तो एक बात स्पष्ट होती है कि आहार प्रत्यक्षरूप से शरीर का पोषण करता है और ब्रह्मचर्य प्रत्यक्षरूप से मन को संस्कारित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आहार और ब्रह्मचर्य का एक–एक क्षेत्र है। निद्रा जहाँ शरीर को विश्राम देती है, वहाँ मन को भी प्रफुल्लित करती है। इस प्रकार आहार और ब्रह्मचर्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण निद्रा है। मन जब कार्य करते–करते थक जाता है और इन्द्रियाँ भी अपना कार्य करते हुए थक कर विषयों से निवृत्त हो जाती हैं तब निद्रा का आगमन होता है।

निद्रा जीवनशक्ति का सबसे बड़ा स्रोत है। यह केवल शारीरिक विश्राम का साधन ही नहीं है, अपितु इससे शक्तिसंचयन और शक्तिरक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य भी होते हैं। निद्रा स्वयं सबसे बड़ी औषधि है।

एक मीठी नींद लोगों को आनन्द, खुशी और ताजगी प्रदान करती है। निद्रा के कारण जीवनी शक्ति का विकास होता है। अनिद्रा का कारण मानसिक अथवा शारीरिक कार्यों की अधिकता हुआ करती है। मानसिक कार्य से मनुष्य का मस्तिष्क ही नहीं थकता, शरीर भी बुरी तरह थक जाता है। यही कारण है कि अनिद्रा रोग के सर्वाधिक रोगी मानसिक कार्य करने वाले मनुष्य पाये जाते हैं।

यदि शारीरिक कार्य भी बहुत कठिन प्रकार का अथवा शक्ति से अधिक किया जाता है तो छीजन और थकान नाड़ी मण्डल को हिला देती है। इससे शरीर के समन्वयीकरण की विधि बिगड़ जाती है और निद्रा में बाधा उपस्थित होती है।

चिन्ता, व्यसनों का सेवन, रात्रिभोजन, उत्तेजनापूर्ण साहित्य का पठन अथवा उत्तेजक दृश्यों का अवलोकन इत्यादि कारणों से निद्रा दूर होती है। हृदय की धड़कन, अपच, गठिया अथवा किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा भी निद्रा में बाधा उत्पन्न करती है।

सोना भी एक कला है। ध्यान रहे–

खुली हवादार शान्त जगह में साफ–सुथरे बिछावन पर सोने से निद्रा अच्छी तरह आती है।

सोते समय ढीले कपड़े पहनने चाहिये।

सारे संशयों को दूर कर और सभी झंझटों को मस्तिष्क से निकाल कर शरीर को ढीला करके सोना चाहिये।

सोने से लगभग आधा घण्टा पूर्व ही मस्तिष्क पर जोर डालने वाले कामों से मुक्ति पा लेनी चाहिये।

उचित समय पर भोजन करना और उचित समय पर सोना–ये निद्रादेवी की दो सहेलियाँ हैं।

कुछ लोग निद्रा लाने के लिये विविध प्रकार की बाजारू दवाओं का उपयोग करते हैं। वह दवा भले ही तत्काल लाभ पहुँचा दे, किन्तु कुछ दिनों बाद वह निष्प्रभावी हो जाती है। फिर उसकी मात्रा बढ़ाने पर भी वह लाभदायक नहीं होती। ये दवायें इतनी विषैली होती हैं कि इनके प्रयोग से कुछ ही दिनों में शरीर टूटने लगता है। इनसे बचने में ही भलाई है। अनिद्रा को दूर करने के लिये युक्त आहार–विहार, नित्य व्यायाम और निश्चिन्त जीवनशैली को अपनाना चाहिये।

गहरी निद्रा तन तथा मन को अपूर्व शान्ति एवं स्वास्थ्य प्रदान करती हैं। निद्रा में गुर्दो द्वारा विषैले विजातीय पदार्थों को बाहर निकाल कर फेंकने की प्रक्रिया तीव्ररूप से होती है। निद्रा के समय शरीर की अनावश्यक गर्मी को बाहर कर तापमान तथा रक्तचाप को नियन्त्रित किया जाता है। निद्रा के कारण खर्च हुई ऊर्जा तथा जीवनीशक्ति पुनः प्राप्त होती है।

व्यवस्थित निद्रा नहीं लेने से अनिद्रा, अनिर्णय, दुष्चिन्ता, क्रोध, मधुमेह तथा हृदयरोग होते हैं।

रात्रि को मात्र एक घण्टा नींद कम लेने से व्यक्ति की कार्यक्षमता में एक चौथाई कमी आती है, जिसकी पूर्ति झपकी लेकर करनी चाहिये। हम सब पौष्टिक भोजन और व्यायाम के विषय में तो जान गये हैं, किन्तु नींद के प्रति अज्ञानी हैं जबकि यह हमारी कार्यक्षमता एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली प्रथम कारक है।

प्रोफेसर विलियम एन्थनी ने अपनी पुस्तक द आर्ट ऑफ नैपिंग में लिखा है–

दिन में जब भी मौका मिले, झपकी लें, इससे शरीर के एक–एक अवयव को भरपूर विश्राम मिलता है। वे तरोताजा हो जाते हैं। भोजन के बाद एक झपकी ले ली जाये तो वह बड़ों तथा बच्चों दोनों के स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। इससे शरीर में काम करने की नयी शक्ति एवं जोश भर जाता है।

गहन निद्रा न केवल शारीरिक स्वास्थ्य की संरक्षिका है, अपितु वह समस्त सृजनात्मक कार्यों की निर्देशिका भी है। जिसकी निद्रा पूर्ण हो चुकी है, ऐसे मनुष्य से प्रमाद कोसों दूर रहता है, जिससे वह साध्य की सिद्धि के लिये प्रयत्न कर सकता है। निद्रा पूर्ण होने पर मस्तिष्क तरोताजा होता है। इससे स्मरणशक्ति तीव्रता से बढ़ती है। जिस प्रकार रात्रिकालीन तमस का विनाशकारी सूर्योदय होने लगता है तो सम्पूर्ण सृष्टि प्रफुल्लित हो जाती है, उसी प्रकार निद्रा पूर्ण होने पर मनुष्य का अंग–प्रत्यंग प्रफुल्लित हो जाता है। अतः रात्रि में समय पर समयबद्ध निद्रा अवश्य लें तथा सोने से पूर्व णमोकार मंत्र का जाप करें ताकि स्वप्न भी शुभ ही दिखें।

1.6 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—आध्यात्मिक शास्त्रों के अनुसार स्वस्थ किसे कहते हैं ?

प्रश्न 2—जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व क्यों है ?

प्रश्न 3—स्वास्थ्य के लिये दो प्रमुख आवश्यक बातें क्या हैं ?

प्रश्न 4—रोगी होने के चार कारण कौन से हैं ?

प्रश्न 5—जीवन में मुस्कान का क्या महत्त्व है ?

प्रश्न 6—व्यवस्थित गहरी निद्रा क्यों आवश्यक है ?

पाठ-2—मानसिक तनाव से मुक्ति के उपाय

2.1 आजकल मनुष्य तनावयुक्त जिन्दगी जी रहा है। अक्सर उसको आभास भी नहीं होता कि वह मानसिक तनाव में है। वह अपने चिकित्सक के पास कुछ और शिकायत लेकर जाता है परन्तु वास्तविकरूप में ये परेशानियाँ मानसिक तनाव के ही लक्षण होते हैं। चिकित्सक भी उसकी शिकायतों के अनुरूप विविध प्रकार की जांच करवा देते हैं। अगर चिकित्सक ऐसे मरीजों के लिए कुछ समय निकालें और उनकी शिकायतों का अधिक विस्तार से तथा गहराई में मनन करें तो पायेंगे कि अधिकतर शिकायतों के मूल में मानसिक तनाव ही मुख्य कारण है। मेट्रो शहरों में 20– 30 प्रतिशत व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रसित हैं।

एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि से जब कभी हमारा मन भारी, तनावग्रस्त, बेचैन, कष्टपूर्ण, अनमना, उत्तेजित या अशांत होता है तब यह कहा जाता है कि हम मानसिक तनाव से पीड़ित हैं। इसके विपरीत जब हमारा मन हल्का, प्रसन्न, शांत, सरल और चंचलता रहित होता है तब यह कहा जाता है कि हम आराम की स्थिति में हैं। मानसिक तनाव का हमारे मन से सीधा सम्बन्ध है। इसलिए हमें पहले मन को समझना चाहिए।

2.2 मन क्या है ?

मन हमारे भीतर की वह शक्ति है जिसके कारण हम अपने प्रति सचेत एवं जागरूक होते हैं। आपका मन या आत्मा ही वास्तविकरूप में आप हैं। शरीर तो केवल एक माध्यम है जिसके जरिए मन इस दुनिया में क्रियाशील होता है, दुखी या प्रसन्न होता है। मन के तीन स्तर हैं जो आपस में मिलकर उसे एकरूपता देते हैं।

(1) चेतन मन : यह हमारे मन का वह भाग है जो विचार, तर्क, वस्तुओं में भेद और चिन्तन करता है। भविष्य में होने वाली हर प्रकार की घटनाओं की कल्पना और बीते समय के लिए चिन्ताएँ आदि इसी मन द्वारा की जाती है।

(2) उपचेतन मन : यह हमारी स्मृतियों का भंडार है। इस जन्म में या पूर्व जन्म में जो कुछ भी देखा, सुना, विचारा या बोला और किया होता है वह इसमें एक स्थायी लेखे जोखे की तरह संग्रहित रहता है। विचारों के साथ जुड़ी भावनाएँ भी हमारे उपचेतन मन में जमा रहती है। यह विचार तथा भावनाएँ ही हैं जो लगातार हमारे चेतन मन को व्याकुल करती रहती है। जब यह अधिक समय तक रहती हैं तो चेतन मन उत्तेजित हो जाता है तथा एक सीमा के बाद व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रसित हो जाता है। तनावमुक्त जिन्दगी के लिए हमें अपने विचार व भावनाओं पर नियंत्रण रखना होगा।

(3) महाचेतन मन : हमारा अपना वास्तविकरूप महाचेतन मन है जो शांति एवं आनन्द से पूर्ण है। यदि हमें एक क्षण के लिए भी इसकी झलक मिल जाए तो हमारा मन एक अविस्मरणीय शांति से भर जाएगा।

कहा भी है–

''मन संसार की सबसे शक्तिशाली वस्तु है। जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह किसी भी चीज को नियंत्रित कर सकता है''

2.3 मन पर नियंत्रण करने की विधियाँ—

यह कहा जाता है कि आप हवा का चलना रोक सकते हैं, नदी का बहना रोक सकते हैं, परन्तु मन का चलना नहीं।

मन अथवा विचारों का नियंत्रण सीखने से पहले हमें ऐसी शारीरिक विधियाँ सीखनी होंगी जिसमें केवल साधारण एकाग्रता लानी होती हैं। एक बार हम शरीर को नियंत्रण में ले आयेंगे तो उसके पश्चात् मन नियंत्रण की विधियाँ सीखनी आसान हो जायेगी। यह विधियाँ इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि तन और मन दोनों परस्पर घनिष्टरूप से जुड़े हुए हैं। अगर शरीर नियंत्रण में आ जाता है तो फिर मन भी नियंत्रण में किया जा सकता है। योग की भाषा में मन और शरीर के

सम्बन्ध एक मध्यस्थ शक्ति "प्राण" द्वारा संचालित होते हैं। "प्राण" को जीवन ऊर्जा भी कहा जाता है। शरीर अस्वस्थ होने पर प्राण के प्रवाह में असंतुलन या रुकावट आती है एवम् उसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है तथा व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। मन पर नियंत्रण के लिये निम्न शारीरिक और आध्यात्मिक विधियों का अभ्यास किया जाना चाहिए।

2.3.1 शारीरिक विधियाँ-

(1) योगासन और व्यायाम : शरीर की मांसपेशियों का तनाव दूर होने से 'प्राण' का प्रवाह ठीक से होने लगता है जिससे मन पर नियंत्रण आता है तथा शांति मिलती है।

(2) शिथिलीकरण अथवा कायोत्सर्ग : शारीरिक व मानसिक तनाव के लिए अति उत्तम है।

(3) प्राणायाम : इसके द्वारा प्राणशक्ति बहुत बढ़ जाती है तथा मन की शक्ति और संयम में महान वृद्धि होती है। मानसिक तनाव में नाड़ी शोधन (अनुलोम–विलोम) प्राणायाम विशेषरूप से सहायक होता है।

(4) शुद्धि क्रियाएँ : इसके अन्तर्गत नेति (जल नेति, सूत नेति) कुंजल आदि क्रियाओं द्वारा शरीर की शुद्धि करके प्राण शक्ति बढ़ाकर मन को संतुलित किया जाता है।

(5) आसन : (सुखासन, पद्मासन, वज्रासन आदि) आसन में एक बार कुछ समय तक स्थिर बैठने से मन एकाग्र और नियंत्रित हो जाता है। संयम तथा सहनशीलता का भी विकास होता है।

(6) ओम् और गुंजन ध्वनि : इनके द्वारा निकली अत्यन्त शक्तिशाली ध्वनि कंपन मन व मस्तिष्क को शांत करती हैं।

(7) मौन : मानसिक शक्ति बढ़ाने का एक प्रभावशाली उपाय है।

(8) हंसी : एक अच्छी हंसी मस्तिष्क को हल्का कर देती है और चेहरे की मांसपेशियों को पूरी तरह तनाव रहित कर आराम देती है।

(9) नृत्य तथा संगीत : एक थके–हारे और तनावग्रस्त मन को राहत देने की महान् शक्ति नृत्य व संगीत में निहित है।

(10) प्रकृति का राहत भरा स्पर्श : मन को शान्त करता है।

(11) ब्रह्मचर्य : कामवासना नियंत्रण करने का अर्थ उसे दबाना नहीं हैं, इसका नियंत्रण प्राकृतिकरूप से और स्वतः होना चाहिए।

(12) आहार : सात्विक शाकाहारी भोजन करने से शरीर स्वस्थ रहता है तथा प्राण का प्रवाह भी ठीक प्रकार से होता है। इससे मन शांत, सकारात्मक और नियंत्रण में रहता है।

2.3.2 आध्यात्मिक विधियाँ-

(1) एकाग्रता : जिस प्रकार शारीरिक व्यायाम से शरीर की शक्ति में वृद्धि होती है उसी प्रकार एकाग्रता का अभ्यास करने से मन की शक्ति में वृद्धि होती है। एकाग्रता का अर्थ वर्तमान में जीना है। आप जो कुछ भी करें आपका पूर्ण ध्यान और सजगता उसमें केन्द्रित होनी चाहिए।

(2) ध्यान : ध्यान में हम अपने मन को बाहरी जगत से बंदकर अपने अंदर केन्द्रित करते हैं। जब हमारा उपचेतन मन शांत हो जाता है तो हम महाचेतन के स्तर पर पहुँच कर असीमित शांति व आनंद प्राप्त करते हैं।

(3) परमात्मा को सदा स्मरण रखना (भक्तियोग)

(4) निस्वार्थ कर्म (कर्मयोग) : कार्य को अपने कर्त्तव्य का एक भाग समझकर तथा इसे परमात्मा तथा संसार के सभी प्राणियों की सेवा समझ कर करें। कार्य को यथाशक्ति सर्वोत्तमरूप से करें तथा व्यक्तिगत लाभ की इच्छा न करें।

(5) आत्मा–परमात्मा और संसार का ज्ञान (ज्ञान योग) : एक बार जब आप जीवन का सत्य तथा रहस्य जान जाते हैं; आपके समस्त संदेह, भय, परेशानियाँ, मनोग्रंथियाँ आदि खत्म हो जाते हैं, इससे आपका मन पूर्ण शुद्धता को प्राप्त कर लेता है।

2.4 शुभभाव और स्वास्थ्य-

इस सृष्टि में मनुष्य की संरचना अत्यन्त विस्मयकारी है। मनुष्य का शरीर हाड़–माँस का पुतला ही नहीं, अपितु मनुष्य का यह छोटा–सा शरीर संवेदनाओं और भावनाओं का प्रतिनिधि भी है। हृदयकमल में विराजित अष्टदलकमल के आकार वाले द्रव्यमन को सम्पूर्ण शरीर का संचालक कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मन अत्यन्त चंचल है। मन की गति के आगे संसार के समस्त गतिमान पदार्थों की गति क्षीण है। क्षणमात्र में ही मन में असंख्य भावनायें अपनी यात्रा पूर्ण कर लेती हैं। इसलिये भावों की गणना करना असम्भव सा कार्य है। फिर भी सामान्यरूप से भावों को शुभ और अशुभ इन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

मन चंगा तो कठौती में गंगा इस कहावत को कौन भुला सकता है ? यही मन मनुष्य के व्यक्तित्व का परिमापक है। यदि मन में मंगलमय, आदर्श, सर्वहितकारी, शुभभाव हैं तो मनुष्य का व्यक्तित्व सहज ही प्रभावशाली बन जाता है।

इसके विपरीत मनुष्य का मन यदि अशुभ कचरागृह बना हुआ है, तो मनुष्य निष्प्रभावी एवं निस्तेज बन जाता है।

समस्त धर्मग्रन्थों में शुभ और अशुभ भावों की बहुत विस्तृत चर्चा की गई है। उनका सारांश यह है कि जो भाव आत्मा के विवेक को जागृत रखते हों, आत्महित का पोषण करते हों, सभ्यता और संस्कृति के प्रति मनुष्य में निष्ठा उत्पन्न करते हों, व्यवहार को मधुर बनाते हों, कार्यशीलता की वृद्धि करते हों वे समस्त स्व और पर का कल्याण करने वाले भाव शुभभाव कहलाते हैं। जैस–प्रेम, सन्तोष, विनय, ऋजुता, निर्भयता, सहजता, दया आदि। ये भाव चमत्कारिकरूप से व्यक्तित्व का परिमार्जन करके उसे उज्ज्वल बनाते हैं। इससे विपरीत ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, मायाचार, लोभ, नैराश्य आदि अशुभ भावों का कलंक मनुष्य के व्यक्तित्व को इतना पंकिल बना देता है, कि वह श्रेष्ठ कृतियों का सृजक नहीं बन सकता।

विगत कुछ वर्षों में भावों को नियन्त्रित करने के उपाय, अब तक निर्माण हो चुके चारित्र में सुधार करने के लिये भावों की समर्थता, भावों के द्वारा परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के उपाय, भावों का व्यक्ति की गतिविधियों पर और शक्ति पर पड़ने वाला प्रभाव, जीवन में सफलता और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये मनोनियन्त्रण करने की आवश्यकता आदि अनेक विषयों पर बहुत अधिक अध्ययन किया गया है। मन के रहस्यों को जानने का अथक प्रयत्न विगत सदी में हुआ है।

इस अध्ययन से प्राप्त हुए तथ्यों को ही आज मनोविज्ञान कहते हैं। मनोविज्ञान स्पष्ट उद्घोषणा करता है कि भावों को अतर्क्य सीमा तक प्रशिक्षित किया जा सकता है। भावों को प्रशिक्षित एवं नियन्त्रित करने के अनेक सत्परिणाम मनुष्य के जीवन को परिवर्तित कर सकते हैं तथा भावों को शुभ बना कर मनुष्य अपना और अपने समीपवर्तिनी सृष्टि का कल्याण कर सकता है।

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। वही अपने सौभाग्य की रचना करता है और वही अपने दुर्भाग्य को बुलाता है। अच्छे विचारों से शुभ भविष्य की और बुरे विचारों से जीवन के पतन की संरचना होती है। भाग्य का ही दूसरा नाम विचार है। विचार के अनुसार हम अपने लिये संसार का निर्माण करते हैं। मनुष्य के मन में यदि सौभाग्यशाली बनने की इच्छा है तो उसे शुभभावों को अपनाना चाहिये।

आधुनिक विज्ञान मानव को नित्य नवीन सुविधाओं को प्रदान करने में कटिबद्ध है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में

प्रवेश करके विज्ञान ने उसे उन्नत बनाने में सफलता अर्जित की है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी मानवीय स्वास्थ्य में नित्य नये आयाम जोड़ रहा है। रोज अन्वेषित नवीन चिकित्सा–पद्धतियों के कारण असाध्य समझी जाने वाली अनेक व्याधियों पर विजय प्राप्त करना भी सम्भव हो सका है। परन्तु चिकित्सा शास्त्रियों के लिये आज यह एक चुनौती बन चुकी है कि जितनी प्रगति चिकित्साविज्ञान कर रहा है, उतनी ही व्याधियों की संख्या भी बढ़ रही है। उन्हें इसका कारण खोजने के लिये विवश होना पड़ा। व्याधियों के निर्माण का गहन सर्वेक्षण करने पर वैज्ञानिकों ने अन्तिम निष्कर्ष यह निकाला कि केवल रोगाणु ही बीमारियों की जड़ नहीं हैं, अपितु रोगों का मूल कारण दूषित विचारों का शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव भी है। आज के समस्त चिकित्सक यह स्वीकार करते हैं कि यदि मन का उपचार हो जाये तो लगभग समस्त व्याधियों को भगाया जा सकता है।

2.4.1 डॉ ए. जे. सैण्डरसन का कथन–

स्वास्थ्य को कायम रखने तथा रोग को दूर करने में शुभभावों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शुभ भावों का प्रभाव शरीर पर औषधि के समान ही होता है, किन्तु शुभभाव औषधि के प्रभाव की भाँति कृत्रिमरूप से तन्त्रिका के कोषों को उत्तेजित नहीं करते। औषधियों से प्राप्त होने वाली उत्तेजना की प्रतिक्रिया अत्यन्त हानि करने वाली होती है, जबकि शुभभाव जीवनशक्ति के विकासक होते हैं।

शुभभावों की विशेषता है कि वे प्राकृतिक माध्यम से शक्ति को शरीर में प्रवाहित करते हैं। इनका प्रभाव शरीर के प्रत्येक अवयव पर अनुभूत किया जा सकता है।

शुभभावों के प्रभाव से नयन पानीदार हो उठते हैं, कपोल रक्ताभ हो जाते हैं, कदमों में लचक आ जाती है, मुख दमकने लगता है और मनुष्य की वे समस्त आन्तरिक शक्तियाँ विकास को प्राप्त होती हैं, जिनके आधार पर जीवन टिका हुआ है। शुभ भावों के कारण रक्तसंचार अत्यन्त उन्मुक्तरूप से होता है, ऑक्सीजन–तन्त्रिका के कोषों में भी रक्त प्रवाहित होता है। इस क्रिया से स्वास्थ्य कुशल होता है और रोगों का सर्वथा निरोध हो जाता है। शुभभाव प्रसन्नता के आधार हैं।

शुभभावों को हम प्रतिविषाणु कह सकते हैं, क्योंकि वे शरीर में प्रवेश पाने का प्रयत्न करने वाली व्याधियों को रोकने का कार्य करते हैं। इससे शरीर के लिये अद्‌भुत सुरक्षाचक्र प्राप्त होता है। इनके द्वारा शरीर में उत्पन्न होने वाले अन्य हॉर्मोनों के प्रतिकूल प्रभाव से शरीर को बचाया जा सकता है।

2.4.2 वर्तमान के चिकित्साविदों का मत–

1. शुभभावों के कारण दबाव को उत्पन्न करने वाली दूषित भावनायें मानस–पटल से हटने लगती हैं। इसके फल से अनिष्टोत्पादक हॉर्मोन स्वयमेव प्रतिबन्धित हो जाते हैं।

2. शुभभाव श्रेष्ठ पीयूष हॉर्मोन के स्रवन को उन्नत बनाते हैं। इनके प्रभाव से ही शरीर की एण्डोक्राइन ग्रन्थियों की कार्य कुशलता में साम्य अवस्था बनी रहती है। इससे आनन्द की वृद्धि होती है। शरीर की कान्ति और ओज का भी विकास होता है। शरीर मजबूत बनता है। रोग विनष्ट हो जाते हैं।

इसका आशय यह कतई नहीं है कि शुभभावों के धारक मनुष्यों को रोग नहीं होते हों। असाता वेदनीय कर्म का उदय जिस जीव के साथ लगा हुआ है, उस जीव को जीवन में रोग और शोक का सामना तो करना ही पड़ता है। शुभ परिणाम के धारक मनुष्यों को रोग तो होते हैं, परन्तु वे रोग उनको दीर्घकाल पर्यन्त त्रस्त नहीं कर पाते। कुभावों से युक्त जीवों को जितना कष्ट होता है, उसका शतांश भी शुभभाव धारण करने वाला रोगी नहीं पाता। यही शुभभावों का महत्त्व है।

वर्तमान में स्वास्थ्य के विशेषज्ञ अब इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि–

जब कोई मनुष्य लम्बी अवधि पर्यन्त निरन्तर रोगों से ग्रस्त रहता है और अनवरतरूप से चिकित्सा करते हुए भी

उसका सफल उपचार सम्भव नहीं हो पाता है तो यह जान लेना चाहिये कि वह तनरोगी नहीं, अपितु मनोरोगी है। उसकी जीवनचर्या का अवलोकन करने पर ज्ञात होगा कि अतृप्तमूल आवश्यकता से उत्पन्न व्यग्रता से वह मनुष्य ग्रस्त है।

2.4.3 स्वस्थ तन, मन के लिए शुभ भावों का महत्त्व-

आज यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो गयी है कि शुभभाव जितने प्रभावकारी हैं, उतनी औषधियाँ प्रभावकारी नहीं है। दवायें रोगों को दबाने का कार्य करती हैं, नष्ट करने का नहीं। दवाओं से अधिक दुआयें ही रोगमुक्ति का कारण होती हैं।

हमारी श्रेष्ठ भावनायें अमृतकलश के समान हैं। उसकी एक–एक बूंद व्यक्तित्व को संजीवन प्रदान करती है। श्रेष्ठ भावनायें हमारे अस्तित्व को परमता प्रदान करती है। वह हमारे श्रेष्ठ व्यक्तित्व का निर्माण करने में समर्थ होती है। वह जीवन को लवणिमा प्रदान करने के लिये उचित मार्गदर्शन करती है। उनके द्वारा मनुष्य किसी भी प्रकार की परिस्थिति में अपने–आप को ढालने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

शुभभाव मानसिक बल को उत्पन्न करने का रामबाण उपाय है। जब मनुष्य अपनी शक्ति को विस्मृत कर देता है, तभी उसके मन में झुंझलाहट घर करने लगती है। फिर मनुष्य को छोटे से छोटा काम भी पहाड़ जैसा लगने लगता है और आसान से आसान काम में भी असफलता मिलने लगती है। इससे विपरीत शुभभाव शक्ति के केन्द्र को जागृत करते हैं। शुभभावों के कारण कठिनतम कार्यों को करते हुए भी मनुष्य सहजता का अनुभव करने लगता है। शुभभावों के कारण ही मनुष्य असम्भव से लगने वाले कार्यों को भी सहज सम्भव कर दिखाता है।

बहुविध अशुभभावों से ग्रसित होकर व्यक्ति अपने मन और मस्तिष्क में सृजनात्मक अथवा विधेयात्मक भावों का निर्माण करने में असमर्थ हो जाता है। उनके मस्तिष्क में नकारात्मक भावों के कीड़े बिलबिलाने लगते हैं। नकारात्मक भावों का यह सड़ा–गला कचरा मस्तिष्क को इतना प्रदूषित कर देता है कि व्यक्ति की संवेदना नष्ट होने लगती है। इसीलिये मनुष्य को अपने मन पर शुभभाव के संस्कार डालने चाहिये।

अशुभभाव ऋणात्मक विचारों का परिपाक है। ऋणात्मक विचारों के कारण मनुष्य की महत्त्वाकांक्षायें अपंग हो जाती है। ऋणात्मक विचार जीवन में जहर भर देते हैं। उनके कारण कार्य सामर्थ्य नष्ट हो जाती है। वे विचार मनुष्य के आत्मविश्वास को इतना दुर्बल बना देते हैं कि मनुष्य अपने सम्मुख उपस्थित परिस्थिति का स्वामी बनने की बजाय उसका सेवक बन जाता है।

किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिये आत्मनिष्ठा सर्वप्रथम आवश्यक होती है। विधि का यह सर्वमान्य नियम है कि पहले मन के द्वारा किसी भी काम में सफलता प्राप्त की जाती है, उसके बाद ही शरीर के द्वारा उसे साकाररूप दिया जाता है। सफलता की प्राप्ति के लिये कार्य करने से पहले सफलता के प्रति आशान्वित होना निहायत जरूरी है।

ऋणात्मक विचारों के कारण मनुष्य सफलता के मार्ग में अनेक किन्तु–परन्तु उपस्थित कर लेता है। यही संशयापन्न अशुभ भावात्मक परिणति मनुष्य के जीवन में असफलता का प्रधान कारण है। कार्बन डाय ऑक्साइड जहरीली वायु है। किसी भी स्थान पर इसका अस्तित्व बढ़ने लगना मनुष्य के जीवन के लिये घातक है। अशुभ विचार उससे अधिक घातक होते हैं।

भावनाओं के विषय पर केवल मनोविज्ञानी ही नहीं, अपितु आहारविज्ञानी भी विशेष मंथन करने में लगे हुए हैं। उनके अनुसार भोजन के समय जो भाव होते हैं, उनका पाचनशक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

भोजन करते समय मन में प्रसन्नता होनी चाहिये। प्रसन्नता के सद्भाव में साधारण भोजन भी शरीर के आवश्यक घटकों को पूर्ण करने में समर्थ होते हैं। यदि भोजन करते समय क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और निराशा आदि भाव हो तो श्रेष्ठतम भोजन भी पच नहीं पाता और पाचन के अभाव में रोगों का कारण बन जाता है।

आधुनिक आहारशास्त्री अब इस बात को एकमत से स्वीकार करने लगे हैं कि भोजन में नमक, शक्कर, लोहा,

विटामिन आदि की अपेक्षा शुभभावों का होना अधिक आवश्यक है।

इस सत्य को तो सभी जानते हैं कि स्वाद की दृष्टि से घर बने हुए भोजन की अपेक्षा होटल पर बना हुआ भोजन अधिक स्वादिष्ट होता है। रंग की दृष्टि से भी होटल का भोजन घर की अपेक्षा इक्कीस ही होता है। घर से अधिक साफ–सुथरा और चित्ताकर्षक माहौल होटलों में पाया जाता है। फिर भी माता के हाथों से बने हुए भोजन का जो आनन्द मनुष्य को मिलता है, वह आनन्द उसे होटल के भोजन में नहीं आ पाता। आखिर ऐसा क्यों ? इसका एकमात्र कारण है– माँ निश्छल प्रेमभाव से भोजन बनाती है। वह प्रेमरूप शुभभाव पुष्टि का कारण बनता है। होटल पर भोजन की सारी सुविधायें होते हुए भी व्यापार की भावना है, प्यार की नहीं। व्यापार की भावना में समर्पण नहीं होता। अर्थोपार्जन की भावना उस भोजन को पुष्टिकर नहीं रहने देती।

इन पहलुओं पर विचार करके विचारशील व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के लिये निम्नलिखित प्रयत्न करने चाहिये–

1. अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति में सन्तोषभाव धारण करें।
2. मन को रचनात्मक कार्य करने के लिये प्रेरित करें।
3. विधेयात्मक विचार करने की आदत डालें।
4. अपने मस्तिष्क में बार–बार अपने दुर्भाग्य का राग आलापना बन्द करें।
5. विवेकपूर्वक निर्णय लेने की आदत डालें।
6. मन के प्रवेशद्वार से दुर्भावों को अन्दर प्रवेश मत करने दीजिये।

जीवन में कार्यक्षमता विकास करने के लिये शुभभाव अत्यन्त प्रभावकारी होते हैं। उनके कारण जीवनशक्ति विकसित होती है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह अपने श्रेष्ठ भावों को उदात्तता प्रदान करें ताकि वे भाव मनुष्य को श्रेष्ठ–अलौकिक तथा भावनात्मक स्वास्थ्य प्रदान करने में सहयोग कर सकें।

2.5 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—मन से क्या आशय है ? इसके तीन स्तर कौन–कौन से हैं ?

प्रश्न 2—मन पर नियन्त्रण करने की शारीरिक विधियों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3—मन पर नियन्त्रण की प्रमुख पाँच आध्यात्मिक विधियों के बारे में बताइये ?

प्रश्न 4—स्वस्थ तन मन के लिए शुभ भावों का क्या महत्त्व है ?

प्रश्न 5—व्यक्तित्व के विकास के लिये क्या प्रयत्न आवश्यक हैं ?

पाठ-3—मानसिक स्वास्थ्य एवं यौगिक जीवन पद्धति

3.1 आज मनुष्य तनावयुक्त जिन्दगी जी रहा है। इस तनाव से विविध प्रकार की शारीरिक व मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इस तनाव के कारणों से आधुनिकीकरण, ईर्ष्या, अधीरता, असंयत, असहिष्णुता, चरित्र हनन, अधिक संपत्ति व धन इकट्ठा करने की होड़, दिखावा इत्यादि शामिल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के अनुसार मानसिक बीमारियों में कई गुणा बढ़ोत्तरी हुई है। आज 20 प्रतिशत आदमी मानसिक रोग से ग्रसित हैं अधिकतर व्यक्तियों को आभास भी नहीं होता कि वह मानसिक रोग से ग्रसित हैं। इतने मनोचिकित्सक भी नहीं है कि उनका उपचार हो सके। छोटे शहरों व ग्रामीण इलाकों में तो मनोचिकित्सकों का अत्यन्त अभाव है। इस परिप्रेक्ष्य में तो ऐसा लगता है कि सभी मानसिक रोगियों का उपचार हो पाना कठिन है। परन्तु हमें यह परिस्थिति बदलनी है। हमें बीमारियों के उपचार की बजाय इनसे बचाव के बारे में सोचना होगा। अगर हम मानसिक स्तर पर स्वस्थ हैं तो हमें न तो विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी और न ही महँगी–महँगी दवाईयों की जिनका दुष्प्रभाव भी शरीर पर होता है। यह सब कुछ दिवास्वप्न नहीं है वरन् सत्य है। इसके लिए हमें अपनी जीवन पद्धति बदलनी होगी।

यौगिक जीवन पद्धति के अनुसार बीमारियाँ तीन प्रकार की होती है–शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में शारीरिक व मानसिक रोगों का निदान व चिकित्सा अति उत्तम है परन्तु मानसिक रोग से बचाव के बारे में कोई उल्लेख नहीं है। मानसिक रोगों से बचाव के लिए हमें यौगिक जीवन पद्धति, जो कि भारतीय दर्शन, अध्यात्म व संस्कृति पर आधारित है अपनानी होगी। योग के बारे में अज्ञानवश अनेक भ्रांतियां व्याप्त हैं, जबकि योग एक विज्ञान है, कला है और एक स्वस्थ जीवन पद्धति है। सच्चाई यह है कि मानसिक रोगों का जन्म ही गलत भावनाओं से होता है अगर हम भावनात्मकरूप से स्वस्थ रहेंगे तो हम मानसिक रोगों से बचे रहेंगे।

3.2 भावनाएँ अच्छी कैसे रखें—

हमारे धर्म ग्रंथों में अपने व्यवहार व भावना में सुधार लाने के लिए दस धर्मों (नियमों) का उल्लेख है। वह इस प्रकार हैं :

1. क्षमा : अपनी गलती की क्षमा मांगनी चाहिए तथा दूसरों की गलती को क्षमा कर देना चाहिए। '**क्षमा वीरस्य भूषणं।**' क्षमा भाव रखने से क्रोध नहीं आता है।

2. मार्दव : नम्र (मृदु)। अहंकार नहीं करना। बड़ों की इज्जत व छोटों पर दया व प्यार।

3. आर्जव : सरल भाव। व्यवहार में छल–कपट, दिखावा व बनावट इत्यादि न लाना।

4. सत्य : सदा सत्य बोलना चाहिए परन्तु सत्य अहितकर व अप्रिय नहीं होना चाहिए।

5. शौच : लोभ व तृष्णा रहित व्यवहार रखना।

6. संयम : इन्द्रिय को विषयों से रोकना संयम है। शराब, सिगरेट, तम्बाकू इत्यादि का सेवन नहीं करना संयम है।

7. तप : इच्छाओं को रोकना या मन को वश में करना। सुख–दुख, निंदा–प्रशंसा आदि में समभाव रखना चाहिए।

8. त्याग : त्याजना या दान करना। दान में मान, छल, कपट या ख्याति प्राप्त करने की इच्छा नहीं होनी चाहिए।

9. आकिञ्चन्य : अपरिग्रह। अधिक वस्तुओं की इच्छा नहीं करना तथा अपनी जरूरतों का सीमाकरण (सीमित) करना।

10. ब्रह्मचर्य : अपने जीवन साथी से ही सम्बन्ध रखना आज के युग में शीलव्रत–ब्रह्मचर्य है।

3.3 दैनिक चर्या में योग—

1. उषापान : प्रातः उठ कर ताँबे के बर्तन में रखा पानी पीयें।

2. ओम् का उच्चारण : सुखासन या पद्मासन में बैठकर 'ओम्' का उच्चारण करें। 'ओम्' शब्द की तीनों ध्वनियों अ, उ, म् का उच्चारण समान मात्रा में किया जाना चाहिए। 'ओ' नाभि से शुरु हो तथा 'म' का कम्पन मस्तिष्क में होना चाहिए।

जिस प्रकार लेज़र किरणों से कम्पन्न उत्पन्न कर शरीर के विभिन्न अंगों की ग्रंथियों का सफल आपरेशन किया जाता है। वैसे ही 'ओम्' ध्वनि के कम्पन से चेतना का विकास होता है तथा मानसिक स्वास्थ्य लाभ मिलता है।

3. णमोकार मंत्र या अन्य मंत्र का जाप–जाप से विचार शक्ति प्रबुद्ध होती है। अमरीका के एक वैज्ञानिक डा. हावर्ड स्टेंगल ने विश्व के सभी धर्मों के मंत्रों का विश्लेषण किया एवं पाया कि इन मंत्रों के उच्चारण से सर्वाधिक कम्पन उत्पन्न होती है।

4. ध्यान (मेडिटेशन) या एकाग्रता

ध्यान का लक्षण बताते हुए श्री उमास्वामी आचार्य ने कहा है–

"उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्" अर्थात् उत्तम संहनन–शारीरिक शक्तिवाले महामुनियों के एकाग्र चिन्ता निरोधरूप ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक होता है।

किन्तु आज पंचमकाल में उत्तम संहनन नहीं होने से ऐसा उत्तम ध्यान संभव नहीं है। फिर भी ज्ञानार्णव आदि ग्रंथ हमें ध्यान की साधना करने के सरल तरीके बताते हैं।

श्रीमद्भगवत गीता में भी कहा है–

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रिय क्रियाः।
उपविश्यासने युज्ज्याद्योगमात्माविशुद्धये।।

अर्थात् मन को एकाग्र कर, चित्त तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को रोक कर आसन पर बैठकर अपने मन को शुद्ध करने के लिए हमको योग में प्रवृत्त होना ही चाहिए।

ध्यान से मानसिक तनाव, चिंता एवं हिंसक वृत्ति में कमी आती है तथा आत्मज्ञान एवं आत्मविकास होता है। चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार ध्यान से मस्तिष्कीय, हृदय गति, रक्त चाप, त्वचा की प्रतिरोधी क्षमता तथा अन्य शारीरिक क्रियाएं नियमित एवं नियंत्रित होती हैं।

5. व्यायाम व आसन–प्रतिदिन तीस मिनट पैदल चलना, व्यायाम अथवा आसन करना चाहिए। हमें कुछ प्रकार के आसन चुनकर उनका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए जैसे ताड़ासन, कोणासन, उत्कटासन, वक्रासन, भुजंगासन व वज्रासन इत्यादि। व्यायाम करने से शरीर में लचीलापन आता है, ब्लड प्रेशर व ब्लड शुगर नियंत्रित होते हैं तथा एन्डार्फिन्स निकलते हैं। जिससे मानसिक तनाव कम होता है।

6. कायोत्सर्ग/शिथिलता का सुझाव–पैर से सिर तक शरीर को छोटे–छोटे हिस्सों में बांट कर प्रत्येक भाग पर चित्त को केन्द्रित कर, हर हिस्से को शिथिलता का सुझाव देकर पूरे शरीर को शिथिल करना। कायोत्सर्ग, शारीरिक व मानसिक तनाव के लिए अति उत्तम है।

7. प्राणायाम–बाएं नथुने से श्वास लें (मंद–मंद गहरा लंबा श्वास), दाएं नथुने से निकालें, फिर दाएं से ले और बाएं से निकालें। श्वास के साथ चित्त को जोड़े रखे, चित्त और श्वास को लेने में लगे उतना ही समय श्वास को छोड़ने में लगे। निरन्तर श्वास का अनुभव करते रहें। प्राणायाम से क्रोध, आवेग व उत्तेजना में कमी आती है।

8. हंसना–पहले मंद–मंद मुस्कराए, फिर मानसिक तौर पर मुस्कराएं तथा अंत में जोर से खिल–खिलाकर हँसे।

9. भगवान का स्मरण, मंदिर दर्शन–प्रतिदिन करें।

3.4 शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म—

शरीर को स्वच्छ, सुन्दर व स्वस्थ रखने के लिए षट्कर्म से उत्तम कोई क्रियाएँ नहीं है। शरीर में यदि वातपित्त और कफ समान रूप में रहे तो शरीर शुद्ध व निरोगी रहेगा यदि यह बिगड़ जाये तो अनेक रोग हो जाते हैं। शरीर के विषाक्त द्रव्यों को बाहर निकालकर उनकी अंदरूनी सफाई के लिए षट्कर्मों का प्रयोग किया जाता है। आसन प्राणायाम के अभ्यास से पहले इन्हें करना चाहिए।

1. नेति–(क) सूत्र नेति तथा (ख) जल नेति

इस क्रिया में जल अथवा सूत की सहायता से नाक की सफाई की जाती है। इसमें सूत अथवा जल को एक नासिका से अन्दर लिया जाता है तथा मुख द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। फिर दूसरी नासिका से क्रिया की जाती है। इस क्रिया द्वारा नाक की सफाई हो जाती है। जुकाम, नजला, खांसी, छींक तथा नाक व कान के रोगों में लाभ होता है।

2. धौति–इस क्रिया में 4–5 गिलास गुनगुना हल्का नमकीन पानी पीकर फिर उल्टी की जाती है। इस क्रिया से पेट तथा आँतों की भली भाँति सफाई हो जाती है।

3. बस्ति–इस क्रिया में गुदा संकुचन द्वारा पानी को ऊपर चढ़ाया जाता है। बाद में इसे गुदा मार्ग से ही बाहर निकाल दिया जाता है। यह क्रिया योगियों के लिए 'एनीमा' जैसी है। इससे बड़ी आँत व गुदा की सफाई होकर पेट स्वच्छ तथा मुलायम हो जाता है।

4. नौलि–इस क्रिया से पेट की मांसपेशियों की मालिश व व्यायाम हो जाता है। आँतें सशक्त होती हैं तथा पेट के अन्दर की सभी ग्रंन्थियाँ पुष्ट तथा निरोग होती हैं।

5. कपाल भाति–इस क्रिया में जल्दी–जल्दी श्वास लेना और छोड़ना होता है। बाद में रेचक (श्वास निकालने को) शीघ्रता से किया जाता है। इस क्रिया से नासिका से श्वसन संस्थान के सभी भागों की सफाई हो जाती है।

6. त्राटक–इस क्रिया में टक टकी बांध बिना पलक झपकाए एक ही चीज को देखने का अभ्यास किया जाता है। इस से दृष्टि–शक्ति तीव्र होती है। मन शान्त होता है, इच्छा शक्ति का विकास होता है।

3.5 चक्र और ग्रंथियाँ—

योग की भाषा में शरीर की क्षमताओं का केन्द्रीयकरण जिन बिन्दुओं पर हो सकता है उन्हें चक्र कहकर पुकारा गया है। ये चक्र मेरुदण्ड के अन्दर सुषुम्ना में स्थित हैं। यह सुप्त अवस्था में रहते हैं तथा योग द्वारा इनको जाग्रत किया जा सकता है। योग के ये चक्र ही आधुनिक विज्ञान की भाषा में ग्रंथियाँ कहे जाते हैं।

योग शास्त्र में षटचक्रों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त दो चक्र और भी बतलाए गये हैं। कुछ शास्त्रों में चक्र के स्थान पर आठ केन्द्र बताये गये हैं। यह केन्द्र हमारी अन्तश्रावी ग्रंथियों को नियोजित व प्रभावित करते हैं। यह केन्द्र हमारे नाड़ी पुज्ज से भी सम्बन्धित हैं। यह केन्द्र पंचतत्व के भी प्रतीक हैं। यह चक्र इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र–यह चक्र रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले भाग (मलद्वार और मूत्रद्वार के मध्यभाग के ठीक सामने) में स्थित हैं। इसको शक्ति केन्द्र भी कहते हैं तथा यह पृथ्वीतत्व का प्रतिनिधि प्रतीक है। यहाँ पर सुषुम्ना के निचले छोर से निकले ज्ञान तंतुओं का एक सघन जाल सा फैला है जिसकी आकृति 'कुंडली' मारे हुए साँप की तरह प्रतीत होती है। अतः इसे योग में 'कुंडलिनी शक्ति' भी कहा गया है। यह सुप्त पड़ी रहती है। प्राणायाम आदि योग साधनों से यह जागृत होकर मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में प्रविष्ट होकर ऊपर की ओर चलती है तथा मस्तिष्क में स्थित सहस्त्रार चक्र तक पहुँचती है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र–यह मूलाधार चक्र से दो उंगली ऊपर है। मूत्रद्वार के ठीक सामने, इसको स्वास्थ्य केन्द्र भी

कहते हैं। योग की दृष्टि से यह शरीर में जल तत्व के नियमन संतुलन का प्रतिनिधि केन्द्र होने से वीर्य–रज, मूत्र, चरबी के उत्पादन को संयोजन करता है। यह सन्तान उत्पत्ति ग्रंथियों को प्रभावित करता है।

3. मणिपूरक चक्र–यह चक्र नाभि प्रदेश के सामने मेरुदण्ड में स्थित है। इसको **तेजस केन्द्र** भी कहते हैं। यह अग्नि तत्व का प्रतिनिधि प्रतीक है। यह चक्र प्रमुखतः शरीर के पाचन–संस्थान तथा चयापचय की क्रियाओं को नियंत्रित करता है।

4. अनाहत चक्र–यह हृदय प्रदेश के सम्मुख स्थित है। इसको **आनन्द केन्द्र** भी कहते हैं यह वायु तत्व का प्रतीक है यह श्वास संस्थान तथा रक्त संचालक तंत्र की क्रियाओं को संतुलित करता है।

5. विशुद्धि चक्र–इसकी स्थिति कण्ठ प्रदेश में है। यह आकाश तत्व का प्रतीक है इसका सम्बन्ध आत्म शरीर से है। आत्म शरीर तक विकास कर लेने वाले व्यक्ति का राग–द्वेष शान्त हो जाता है। आत्मा की विशुद्धि होने से इसको **विशुद्धि केन्द्र** भी कहते हैं।

6. आज्ञा चक्र–इसकी स्थिति दोनों भौहों के बीच के सामने मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्म नाड़ी में हैं। यह महत्व को दर्शाता है। इसको **दर्शन केन्द्र** भी कहते हैं। इसी चक्र के अन्तर्गत कुछ शास्त्रों ने **ज्योति केन्द्र** का भी उल्लेख किया है। यह जहाँ पर तिलक लगाया जाता है वहाँ स्थित है।

7. बिन्द चक्र–सिर के ऊपरी भाग में जहाँ चोटी रखी जाती है। इसको **ज्ञान केन्द्र** भी कहते हैं।

8. सहस्त्रार चक्र–इसकी स्थिति सिर के मध्य भाग में तालू के ऊपर मस्तिष्क में है। इसको शांति केन्द्र भी कहते हैं सहस्त्रार चक्र के जागरण से आत्म विकास, आत्म ज्ञान व आत्म दर्शन होता है।

3.6 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—अपनी भावना में सुधार लाने के लिये धार्मिक ग्रंथों में किन दस धर्मों का उल्लेख है ?

प्रश्न 2—दैनिक चर्या में प्रयोग की जाने वाली योग की प्रमुख पाँच विधियों के बारे में बताइये ?

प्रश्न 3—आसन प्राणायाम से पूर्व शरीर शुद्धि के लिए कौन से षट्कर्म उपयुक्त हैं ?

प्रश्न 4—योग की भाषा में चक्र से क्या आशय है ? ये कौन–कौन से हैं ?

पाठ-4—प्राणायाम

4.1 'प्राणायाम' संस्कृत के दो शब्द 'प्राण' और 'आयाम' से मिलकर बना है। प्राण का अर्थ–जीवनी शक्ति (वायु) तथा आयाम का अर्थ है–विकास अथवा नियन्त्रण।

प्राणायाम शब्द का अर्थ हुआ–जीवनी शक्ति को विकसित अथवा नियंत्रित करने की क्रिया।

प्राणायाम की कुछ आवश्यक बाते हमें समझ लेनी चाहिए। हम नाक के बायें और दायें छिद्रों श्वासोच्छ्वास की क्रिया करते हैं। दाहिने नथुने का प्राण प्रवाह सूर्य नाड़ी और बायें नथुने का प्राण प्रवाह चन्द्र नाड़ी के द्वारा होता है। ये दोनों प्राण प्रवाह अन्दर आते ही मिलकर तीसरा प्राण प्रवाह बनाते हैं और जो दोनों नथुनों से प्रभावित होता है उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। इन तीनों नाड़ियों का कार्य इस प्रकार है।

1. इडा या चन्द्र नाड़ी–यह ठण्डी नाड़ी है और शरीर के बायें भाग का नियन्त्रण करती है तथा विचारों को संतुलित रखती है। जब शरीर को ठण्डक की आवश्यकता होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है। इसको गंगा भी कहते हैं।

2. पिंगला या सूर्य नाड़ी–यह शरीर के दायें भाग का नियन्त्रण करती है तथा शरीर को गर्मी देती है। यह प्राण शक्ति को नियंत्रित करती है। इसको यमुना भी कहते हैं।

3. सुषुम्ना नाड़ी –यह मध्य नाड़ी है न गरम न ठण्डी; परन्तु दोनों के सन्तुलन में सहायक है, प्रकाश तथा ज्ञान देती है। इसको सरस्वती भी कहते हैं।

प्राणायाम का उद्देश्य इडा तथा पिंगला में ठीक सन्तुलन स्थापित करके सुषुम्ना के द्वारा प्रकाश तथा ज्ञान प्राप्त कराकर आध्यात्मिक उन्नति करना है।

इसके साथ तीन बन्ध भी होते हैं।

जालन्धर बन्ध–ठोड़ी को हृदय से चार अंगुल ऊपर कण्ठकूप में लगाने से होता है।

उड्डियान बन्ध– श्वास को बाहर निकालकर पेट को अन्दर खींचना।

मूल बन्ध–गुदा के आकुंचन से होता है।

प्राणायाम में श्वास की तीन क्रियाएँ होती हैं।

1. पूरक–श्वास को अन्दर लेना।

2. रेचक–श्वास को बाहर निकालना।

3. कुम्भक–श्वास को अन्दर या बाहर रोकना। श्वास को अन्दर रोकने को आन्तरिक कुम्भक व श्वास को बाहर रोकने को बर्हिकुम्भक कहते हैं।

4.2 प्राणायाम के प्रकार—

नाड़ी शोधन, भ्रामरी, भस्त्रिका, कपालभाती, सूर्य भेदी, शीतली व शीतकारी आदि। भस्त्रिका व सूर्य भेदी, सर्दियों में लाभदायक होते हैं तथा शीतली व शीतकारी ग्रीष्म ऋतु में लाभ देते हैं।

नाड़ी–शोधन प्राणायाम (अनुलोम–विलोम प्राणायाम) विधि : सुखासन में बैठकर दायें हाथ के अंगूठे से दायीं नासिका बंद करें तथा अनामिका को बायीं नासिका पर रखें तथा तर्जनी व मध्यमा दोनों भौहों के बीच वाले स्थान पर रखें। अब दायीं नासिका बन्द कर बायीं नासिका से धीरे–धीरे जितना श्वास अन्दर की ओर खींच सकते हों खींचें। अब बायीं नासिका भी बन्द करें तथा कुछ क्षण आन्तरिक कुम्भक करें। अब दायीं नासिका से अंगूठे को हटा लें तथा उसी गति से श्वास बाहर निकालें। कुछ क्षण बहिर्कुम्भक करें। फिर दायीं नासिका से ही श्वास को लें, आन्तरिक कुम्भक करें तथा बायीं नासिका से श्वास बाहर निकाल दें। यह नाड़ी शोधन प्राणायाम एक बार हुआ। श्वास लेने और

छोड़ने की लय एक जैसी हो।

जब श्वास छोड़ें तो आपका श्वास एकदम से न निकलकर नियंत्रित होकर धीमी गति से बाहर निकले। इसे तीन चार बार प्रतिदिन करते हुए अभ्यास करें कि आप आन्तरिक कुम्भक अधिक देर तक कर सकें। उतनी देर ही श्वास रोकना है जितनी देर रोकने से जब श्वास छोड़ा जाये तो छोड़ने की गति श्वास लेने की गति से धीमी हो। श्वास लेने, रोकने और छोड़ने के समय का अनुपात एक दो और दो का हो। धीरे–धीरे अभ्यास करके इसको एक, चार और दो का अनुपात कर सकते हैं।

प्राणायाम में श्वास लेते समय मन की गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए तथा बाहर निकालते समय निर्विचार रहना चाहिए। कुम्भक के समय प्राणों को 'आज्ञा चक्र' अर्थात् दोनों भौहों के बीच वाली जगह में एकाग्र करना चाहिए। इससे मानसिक शक्तियों का विकास तथा आत्मा में शांति और आनन्द की अनुभूति होती है।

4.3 सूक्ष्म प्राणायाम-8 एवम् सूक्ष्म योगासन-16 (अभ्यास करने के 24 सूक्ष्म नियम)–

1. **प्रकृति ने इस जीव जगत में मनुष्य को सबसे श्रेष्ठ जीव बनाया है तथा धर्ममय एवं सुखमय जीवन जीने के लिये बहुत कुछ दिया है।**

अतः मनुष्य को चाहिये इस शरीर के द्वारा दूसरे प्राणियों की रक्षा करते हुए हर तरह से सेवा करे एवं समस्त प्राणियों को तकलीफों से बचाने की कोशिश करते रहें।

इसलिए मनुष्य को 24 घंटे में 24 मिनट समय निकाल कर (सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन के माध्यम से) स्वस्थ शरीर द्वारा सत्कर्म एवं सेवा करते हुये जीवन में अपने आपको श्रेष्ठ जीव प्रमाणित करना चाहिये।

2. सूक्ष्म प्राणायाम एवम् सूक्ष्म योगासन करने के लिए सुखासन (सिद्धासन), पद्मासन एवम् वज्रासन में बैठकर ही करें तथा दोनों अंगुठे और तर्जनी अंगुलियों से रिंग बनाकर दोनों हाथों को सीधा करके घुटनों के ऊपर रखकर करना चाहिए। उपरोक्त तीनों आसन में बैठकर करने में असमर्थ होने पर कुर्सी पर बैठकर भी कर सकते है।सूक्ष्म प्राणायाम एवम् सूक्ष्म योगासन शान्त और खुले वातावरण (घर पर या मैदान) में पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके आसन (वुॅलन या कॉटन)पर बैठकर ही करना चाहिए।

3. सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन का अभ्यास करते समय पीठ,मेरूदण्ड, वक्ष तथा गर्दन को हमेशा सीधा रखना चाहिए। इसीलिए यह दोनों प्रक्रिया करने के लिये पद्मासन या सुखासन का प्रयोग करना चाहिए। जब आप जमीन पर बैठतें हो तब सुखासन में ही बैठने की आदत डालें, क्योंकि इस आसन में बैठने से आपका सिर, पीठ, वक्ष व मेरूदंड सीधा रहेगा, जो कि बहुत लाभकारी है।

4. सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन की विभिन्न विधियों के अलग अलग गुण हैं। **आपको सब विधियां करने का समय नहीं मिलता है तब जिस विधि से आपको फायदा लगे, उसका प्रतिदिन नियम से नियत संख्या में करने की कोशिश करें एवं धीरे धीरे विधियों की संख्या बढ़ाते रहें। अगर किसी कारणवश कभी कभी या कुछ दिन नही कर सकें तो लाभ में कमी नहीं आयेगी और न ही कोई नुकसान होगा। धीरे धीरे समय और संख्या बढ़ाकर करने से ज्यादा फायदा होता है।**

5. प्राणायाम एवं योगासन करते समय नासिका द्वारा ही श्वास लें एवं छोड़ें।श्वास लेने एवं छोड़ने के अन्तर में कमी होने से आयु बढ़ती है। **जैसे कछुवा 1 मिनट में 5/6 बार श्वास लेने पर प्रायः 200 साल, मनुष्य 1 मिनट में 15/16 बार श्वास लेने पर प्रायः 100 साल, एवं पशु–पक्षी 1 मिनिट में 20 से 30 बार श्वास लेने से प्रायः 15 से 30 साल की आयु प्राप्त करते हैं।** श्वास के इस अन्तर को कम करने की प्रक्रिया प्राणायाम द्वारा ही सम्भव है।

अन्तर कम करने के लिए श्वास को हठपूर्वक रोक कर नहीं करना चाहिए।

6. प्रातःकाल निद्रा से (जब भी जागते हैं) उठने के बाद पूर्ण शौच (पेट साफ) से निवृत्त होकर तुरन्त सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करना चाहिये। पूर्ण शौच (पेट साफ) के बाद आत्मा एवं शरीर को अति आनन्द की अनुभूति होने से ज्यादा से ज्यादा प्राणायाम एवं योगासन करने की भावना होती है।

पूर्ण शौच (पेट साफ) के लिए रोजाना (रात्रिकाल में ताम्बे के बर्तन में छान कर रखा हुआ) शुद्ध पानी (छान कर) कम से कम 2 गिलास पीना चाहिए।

यदि सम्भव हो तो रात्रिकाल में पानी को खूब गर्म करके ताम्बे के बर्तन में (ठण्डा कर) रख लें। सुबह इस पानी को पीने से पेट साफ रहता है। यह पानी शरीर के लिए महौषधी है एवं पीने में सर्वोत्तम है। भोजन करते समय पानी नहीं पीना चाहिए। इससे पाचन क्रिया में बाधा उत्पन्न होने के कारण भोजन ठीक से हजम नहीं होता है। इसलिए भोजन करने के पहले पानी पी लेना चाहिए या भोजन करने के आधा घंटे बाद पानी पीना चाहिए।

भोजन करने के पहले या भोजन करने के पांच घंटे पश्चात् ही प्राणायाम एवं योगासन करना चाहिए। भोजन के पहले ही करना सर्वोत्तम है।

नोट–दिन में मात्र एक बार भोजन करने वाले दिगम्बर जैन साधु–साध्वियों के लिए यह नियम लागू नहीं होता है, उन्हें तो भोजन के साथ ही अधिकतम पानी लेना चाहिए, ताकि बदहजमी न होने पाए।

7. शरीर को स्वस्थ और सुडौल रखने के लिए अन्न से बना हुआ भोजन सूर्यास्त के बाद रात्रि काल में आहार नहीं करना चाहिए। इससे मोटापा, शुगर, ब्लड प्रैशर आदि बीमारियां होने की सम्भावना रहती है। रात्रिकाल में जब सो जाते हैं तब शरीर को भोजन पचाने में सहजता होती है (ज्यादातर पशु, पक्षी, जानवर आदि रात्रिकाल में आहार नहीं लेते) प्राणायाम एवं योगासन करने से पाचन क्रिया में फायदा होता है **निरामिष (शाकाहारी) भोजन ही शरीर के लिये सर्वोत्तम है जो आसानी से पच जाता है।**

8. मानव का शरीर हल्का, चुस्त एवं सुडौल रहने से सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने से सहजता होती है। इसके लिए भोजन के बाद सीजनल फल का सेवन करना चाहिये। जिस सीजन में जो फल आता है वह फल खाने से सीजनल बीमारियों से शरीर को लड़ने की क्षमता बढ़ती है तथा पेट की बीमारियों में भी फायदा तथा मुख मण्डल कान्तिमय होता है। इसलिए भोजन के बाद सीजनल फल अवश्य खाना चाहिए।

9. अगर आप नियमितरूप से सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करते हैं तब आपका शरीर ही आपको सचेत करने लगेगा कि आप कितने स्वस्थ एवं क्रियाशील हैं। मनुष्य का शरीर ही खुद का डाक्टर या वैद्य है। कारण हर मनुष्य के शरीर का गठन अलग अलग है। सब नियम एवं सब बातें सबके लागू नहीं होते हैं। शरीर ही बीमारियों के माध्यम से आपको समझाता रहता है कि क्या खाना चाहिये और क्या नहीं खाना चाहिये। **पशु–पक्षी, जानवर भी जब बीमार पड़ते है तब खाना पीना सब बन्द कर देते हैं और ठीक भी हो जाते हैं।** यह सब उनको किनने सिखाया, प्रकृति एवं शरीर ही सिखा देता है। इसलिए मनुष्य को प्रकृति के नियम एवं माध्यम से जीने का अभ्यास करना चाहिए।

10. **प्राचीन काल से दही (छाछ या मट्ठा) को अमृत माना जाता है।** पुरुषों में बहुमूत्र रोग (प्रोस्टेट) की बीमारी एवं पेशाब में जलन होती है। इसके लिए कपालभाती–प्राणायाम प्रक्रिया और भोजन के बाद वज्रासन में 10 मिनट बैठना चाहिए एवं रोजाना छाछ या मट्ठा कम से कम 250 ग्राम, भूना हुआ जीरा मिला कर पीने से बहुत ही फायदेमंद है। 500ग्राम दही से पूरे परिवार के लिए छाछ या मट्ठा बन सकता है जो कि बहुत सस्ता होने के साथ–साथ कई कठिन बीमारियों में लाभ देता है।

11. सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने के 15/20 मिनट पश्चात् ही स्नान करें, कारण यह सब करने से

शरीर का तापमान बढ़ जाता है। तापमान सामान्य होने पर ही स्नान करना चाहिये।

आप स्नान करने के पश्चात् भी प्राणायाम एवं योगासन कर सकते हैं।

सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने के पश्चात् अपनी पसन्द के तैल से 2/5 मिनट तक मालिश करने के बाद नहा ले। तत्पश्चात् कॉटन का बिना रोएं वाले तौलिये से रगड़ कर शरीर को साफ कर लें। इससे आपको रोजाना नई ताजगी एवं स्फूर्ति मिलेगी।

12. सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन किसी भी हालत में खाली फर्श या जमीन पर बैठकर या खड़े होकर नहीं करना चाहिए। कारण यह सब आसन करते समय शरीर की गर्माहट जमीन की ठण्डक पकड़ लेने से कमर के दर्द की बीमारी हो जाने की सम्भावना है। यह दोनों प्रक्रिया करते समय जमीन पर वूॅलन या कॉटन का कारपेट प्रयोग करें। पैदल चलते समय या जोगिंग करते समय कोई भी प्राणयाम एवं योगासन नहीं करना चाहिये। बैठकर करने वाला और खड़े होकर करने वाला प्राणायाम एवं योगासन नियमानुसार शान्त तथा प्रसन्न मुद्रा में करने की आदत डालें।

13. सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन तनाव मुक्त होकर, धैर्य के साथ अपने अपने इष्टदेव भगवान का स्मरण करते हुए करना चाहिये। **शरीर का हर अंग बहुत नाजुक होता है अतः इसके किसी भी अंग को विकृत करके या जोर लगाकर जबरदस्ती कोई भी प्रक्रिया नहीं करनी चाहिये।**

शरीर में किसी जगह दर्द या तकलीफ के कारण सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने में अगर तकलीफ होती है तब नमक की पोटली (कॉटन के कपड़े से बंधा हुआ) या गर्म पानी की बोतल से दर्द की जगह सिकाई करें एवं पांच मिनट पश्चात् कोई भी दर्द नाशक तेल आदि लगाकर दोनों प्रक्रिया करने से सजहता होगी और आराम भी मिलेगा।

14. समय ही नहीं मिलता है ऐसा कहकर प्राणायाम और योगासन करने में व्यवधान न डालें, क्योंकि अच्छे स्वास्थ्य के द्वारा ही आप धर्माराधना तथा परिवार–समाज एवं देश की सेवा कर सकते हैं।

अपने व्यस्त समय में भी कुछ क्षण प्राणायाम हेतु निकालने का नुस्खा यहां प्रस्तुत है।

1. सुबह निद्रा से	5 मिनट पहले उठना
2. बैड टी पीने में	5 मिनट बचाना
3. अखबार पढ़ने में	5 मिनट बचाना
4. टी.वी. देखने में	5 मिनट बचाना
5. बातें करने में	4 मिनट बचाना
इस प्रकार कुल	24 मिनट बच गये।

15. सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने के पहले यदि सम्भव हो तो शुद्ध ऑक्सीजन लेने के लिये प्रातःकाल उठकर वृक्ष वाले मैदान या खुले मैदान में 15/20 मिनट तेज चलकर या जोगिंग करके चलने की आदत डालनी चाहिए। अगर मैदान की सुविधा न हो या मैदान में जाने का मन हो तो अपने मकान की छत पर 25/50 बार चक्कर लगाकर ऑक्सीजन ले सकते हैं। छतों पर फूल और पत्तों के पौधे रखने की प्राचीन परम्परा रही है सैर करने की आदत होने पर मोटापा, शूगर, ब्लडप्रेशर आदि बीमारियों में लाभ मिलने की पूर्ण सम्भावना है।

सुबह सैर करते समय या जोगिंग करते समय अपने मन में अपने–अपने इष्ट देवता का नाम, मंत्र या भजन बोलते रहने से मानसिक शान्ति मिलेगी, मन प्रसन्न रहेगा। इससे आपको सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने में सहजता रहेगी।

16. **इस दुनिया में सबसे सच्चा मित्र, भरोसेमन्द मित्र, जीवन भर साथ देने वाला मित्र यह अपना शरीर ही है। लेकिन ज्यादातर मनुष्य अपने शरीर के प्रति वफादार नहीं है, फालतू बातों से मन को फुसलाकर**

एवं समझाकर अपने शरीर को स्वस्थ रखने का कर्तव्य नहीं करते। फिर इस भरोसेमन्द व सच्चे मित्र को किसी के आश्रित नहीं बनने दें और ना ही किसी को अपने ऊपर आश्रित रखने की भावना रखें। अगर अपने ऊपर कोई आश्रित है तो उसे सूक्ष्म प्राणायाम एवं कर्म के माध्यम से स्वावलम्बी बनने में सहायक बनाएं।

17. वर्तमान के इस कम्प्यूटर युग में बच्चों को उच्च शिक्षा प्राप्त करना अति आवश्यक हो गया है।

इसके लिए बच्चों को स्वस्थ सुडौल, एकाग्र एवं प्रसन्नचित होना जरूरी है। जो सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन द्वारा हो सकता है।

बच्चे ही देश की धरोहर हैं। आगे चलकर देश के श्रेष्ठ नागरिक बनेंगे।

सुशिक्षाओं एवं सुसंस्कारों के माध्यम से सत्कर्मों द्वारा धनोपार्जन करते हुए कर्मशील होकर समस्त संसार में देश का नाम रोशन करने के साथ अपना जीवन तथा पारिवारिक जीवन भी सुखमय बना सकते हैं।

18. प्राणायाम एवं योगासन गर्भवती महिला और ज्वर रोगी को नहीं करना चाहिए। **रोग पीड़ित व्यक्ति अपनी शक्ति एवं समझ के अनुसार ही करें।** प्राणायाम एवं योगासन करते समय थकान अनुभव होने पर चार पांच बार लम्बी श्वास के माध्यम से विश्राम लेकर पुनः शुरू करें।

तंग कपड़े पहनकर प्राणायाम एवम् योगासन नहीं करने चाहिए।

19. **मनुष्य को अपने शरीर के पाचन तंत्र को चुस्त एवं तन्दुरुस्त रखने के लिए सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने के साथ–साथ कभी–कभी निर्जल उपवास भी करना चाहिए।**

7 दिन, 15 दिन या 30 दिन में एक बार 24 घंटे (रात–दिन) का निर्जल उपवास करने से पाचन तंत्र को पूर्ण आराम मिलता है। निर्जल उपवास में पानी, फल तथा दवाई आदि का भी सेवन नहीं करना चाहिए। इस उपवास से पाचन तंत्र पहले की अपेक्षा ज्यादा सक्रिय एवं तेज होता है। इससे शरीर स्वस्थ और सुडौल होने की प्रबल सम्भावना है।

20. **वर्तमान समय में हार्ट अटैक के दौरे से बचने के उपाय**

सीने में दर्द का होना, स्वास फूलना, पसीने का ज्यादा आना एवं अत्यधिक बैचेनी महसूस होना हार्ट अटैक का लक्षण है। युवा अवस्था से ही अपने जीवन चर्या में परिवर्तन करने से हार्ट अटैक एवं अन्य कई बिमारियों से बचा जा सकता है।

(1) सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन का करना, सुबह सैर और ज्यादा से ज्यादा पैदल चलने के माध्यम से शरीर को सुडौल (मोटापन नही होने देना) रखना।

(2) शाकाहारी भोजन करने की आदत तथा रात्रि काल का भोजन सोने के कम से कम 4–5 घंटे पहले करना चाहिए। **सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना फायदेमंद होता है.**

(3) तनावमुक्त होकर खुश रहने के साथ उम्र के हिसाब से 6 से 8 घंटे तक (बिना नींद की दवाई लिए) सोने की कोशिश करना चाहिए।

(4) भोजन में तली हुई चीजें, मिठाईयों का कम से कम सेवन एवं **धूम्रपान का त्याग करना चाहिए।** इन सब आदत से उच्च रक्तचाप, शूगर और कोलेस्ट्रोल में कन्ट्रोल होता है।

21. **मानव के सम्पूर्ण शरीर में वायु भरी हुई है तथा शरीर का सब कार्य वायु द्वारा ही संचालित होता है। पाचन तन्त्र में खराबी होने के कारण वायु गैस में परिवर्तित होकर कई बीमारियों को जन्म देता है।** इसलिए दोनों समय के भोजन के पश्चात् वज्रासन में बैठने से पाचन तन्त्र के मजबूत होने के कारण गैस की बीमारी में फायदा होता है। प्रायः सभी साधु संत भी आहार लेने के बाद वज्रासन में कम से कम 10 मिनट तक बैठते हैं। गैस की बीमारी में आंवला, लौकी (घिया) और करेला की सब्जी या फलों का रस बहुत लाभदायक है।

22. प्रकृति ने प्रत्येक मानव के शरीर के हर जोड़ो में मोबिल आयल जैसा चिकना तरल पदार्थ दिया है जो कि मानव के 40/50 वर्ष की उम्र होने के बाद से कम बनने लगता है जिससे दर्द का अनुभव होता है। इसलिए मनुष्य को 30/40 वर्ष की उम्र से ही सूक्ष्म योगासन करना चाहिए।

सूक्ष्म योगासन करते रहने से तरल पदार्थ बनता रहता है और अगर तरल पदार्थ सूखने के नजदीक हो तब भी तरल पदार्थ के फिर से बनने की सम्भावना रहती है।

कैल्शियम की कमी होने से भी जोड़ों में दर्द होने लगता है इसलिए कैल्शियम की कमी नहीं होने देना चाहिए।

23. **मनुष्य जीवन भर न तो कसरत, जिम या पहलवानी कर सकता है, ना ही फुटबाल, हॉकी, बैडमिंटन आदि खेल सकता है।** यह सब क्रिया छुटने के बाद शरीर में कोई न कोई बीमारी और जोड़ों में दर्द होने की सम्भावना रहती है। **लेकिन सूक्ष्म योगासन जीवन भर कर सकते हैं तथा इसे छोड़ने पर कोई परेशानी नहीं होती।** यह प्रक्रिया करते रहने से ज्यादा से ज्यादा निरोग, चुस्त, स्वस्थ रहने की सम्भावना है।

24. **सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन क्या हैं? इन्हें क्यों करना चाहिए?**

मानव शरीर का सिर से पैर तक के बाहरी एवं भीतर के कुछ अंगों का दैनिक कार्य करने से, चलते फिरते रहने से एवं योगासन करने से सूक्ष्म योगासन हो जाता है।

लेकिन शरीर के मुख मंडल से लेकर पेट के अन्दर में जो मशीनें (कम्प्यूटर) हैं उसका व्यायाम कैसे होगा तथा शरीर के अन्दर लाखों नसें हैं उनकी अवरुद्धता (Blockage) कैसे खुलेगी। यह सब काम सूक्ष्म प्राणायाम द्वारा भी होता है। हजारों वर्ष पहले अपने साधु सन्त, मुनिराज एवं महापुरुष पर्वत पर भयंकर ठण्ड में तथा पहाड़ों पर भयंकर गर्मीयों में कैसे तपस्या करते थे तथा कैसे जीवित रहते थे एवं उन्हें कहां से ऊर्जा मिलती थी। यह सब सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन द्वारा ही सम्भव था।

आइए हम सब जहां भी रहते है रोजाना कम से कम 24 घंटे में 24 मिनट का समय निकाल कर सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करके और वहां की जल वायु एवं माटी के साथ संबंध बनाकर स्वस्थ एवम् सुडौल, ऊर्जावान नागरिक बनें।

4.4 सूक्ष्म प्राणायाम की आठ विधियां—

1. भस्त्रिका प्राणायाम—इस प्राणायाम में नाक द्वारा लम्बी श्वांस लेकर अन्दर तक भरे एवं पूरी शक्ति के साथ श्वांस को लम्बा करके बाहर छोड़े।

लेकिन जिनके फेफड़े व हृदय कमजोर हों, उन्हें यह प्राणायाम धीमी गति से करना चाहिए।

लाभ : इस प्राणायाम को करने से श्वांस रोग, दमा, एलर्जी, सर्दी, जुखाम, टान्सिल, साइनस एवं सभी कफ रोगों में फायदा होता है।

समय : यह प्राणायाम कम से कम 2 मिनट या 30 बार करें।

''जो छोटे छोटे प्राणियों से प्यार नहीं कर सकता,
वह ईश्वर से प्यार क्या करेगा।''

2. कपालभाती प्राणायाम—इस प्राणायाम में श्वांस को दोनों नासिका द्वारा पूरी शक्ति के साथ निकालते रहें। इसकी विधि भस्त्रिका प्राणायाम से थोड़ी अलग है। भस्त्रिका में समानरूप से श्वांस लेना और छोड़ना पड़ता है जबकि कपालभाती में केवल श्वांस छोड़ना पड़ता है श्वांस को भरने की कोशिश नहीं करते हैं, बल्कि पूरी एकाग्रता के साथ

श्वांस को छोड़ते रहना चाहिए।

लाभ : इस प्राणायाम से चेहरा कान्तिमय एवं तेजमय होता है तथा दमा, ब्लडप्रेशर, शुगर, मोटापा, कब्ज, गैस, डिप्रेशन, प्रोस्टेट एवं किडनी सम्बन्धित सभी रोगों में बहुत ही लाभ होता है।

समय : इस प्राणायाम को कम से कम 3 तीन मिनट या 100 बार करना चाहिए।

मोटापा सब बीमारियों की जड़ है

3. अनुलोम-विलोम प्राणायाम—इस प्राणायाम में दाएं हाथ के अंगूठे से दायी नासिका को दबाएं और बायीं नासिका से श्वांस लें, फिर बायीं नासिका को मध्यमा अंगुलि से दबाएं एवं दांयी नासिका से श्वांस को पूरी ताकत से छोड़कर फिर उसी नासिका से श्वांस ले, फिर बांयी नासिका से श्वांस लें और दूसरी नासिका से श्वांस को छोड़ें, इस क्रम को बार बार दोहराएं।

लाभ : इस प्राणायाम को करने से विचार एवं संस्कारों में शुद्धि आती है। शरीर के रोग जैसे अस्थमा, सर्दी , वातरोग, साइनस, खांसी, डिप्रेशन एवं स्नायु दुर्बलता आदि में बहुत लाभ होता है तथा नियमित अभ्यास से शिराओं में आए हुए ब्लाकेज भी खुलने की सम्भावना है।

समय : इस प्राणायाम को कम से कम 50 बार करें।

''बुद्धिमान व्यक्ति दूसरों की भूल से अपनी भूल सुधारता है''

4. भ्रामरी प्राणायाम—इस प्राणायाम में श्वांस को पूरा अंदर भरकर दोनों हाथों के अंगूठे से दोनों कानों को कानों के बाहरी पर्दा द्वारा बन्द करें और नीचे की तीनों अँगुली से आंखों को बंद करें एवं दोनों तर्जनी अंगुली को दोनों आँखों के भौंहो पर रखें तत्पश्चात् मुँह को बंद करके नाक से भंवरे की आवाज की तरह ज्यादा समय तक आवाज निकालते रहें।

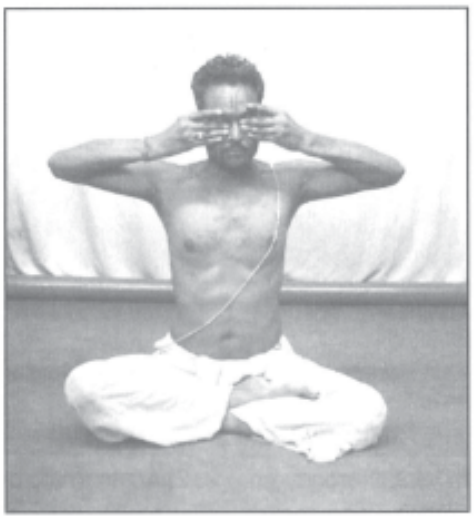

लाभ : इस प्राणायाम से भगवान के प्रति ध्यान करने में एकाग्रता आती है तथा मन की अस्थिरता, डिप्रेशन, ब्लड प्रैशर एवं मानसिक तनाव आदि में काफी लाभप्रद है।

समय : इस प्रक्रिया को कम से कम 5 बार करें।

''किसी भी शुभ कार्यों के लिए प्रेरणा,
प्रोत्साहन एवं योगदान देते रहें''

5. उदर (पेट) प्राणायाम—(क) इस प्राणायाम में नासिका के द्वारा पेट के अन्दर की श्वांस को पूरी ताकत के साथ बाहर निकाल दें। श्वांस निकालने के बाद श्वांस को न लेने व छोड़ने की स्थिति में 2 सेकेन्ड के लिए स्थिर हो जाएं।

(ख) अब दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर पेट को कम से कम 15 सेकेण्ड तक पूरी शक्ति के साथ अन्दर दबाएं,

फिर धीरे धीरे श्वांस लेना शुरू करें।

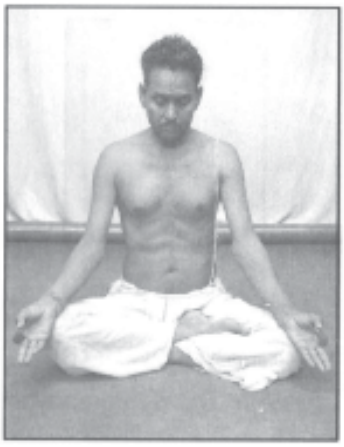

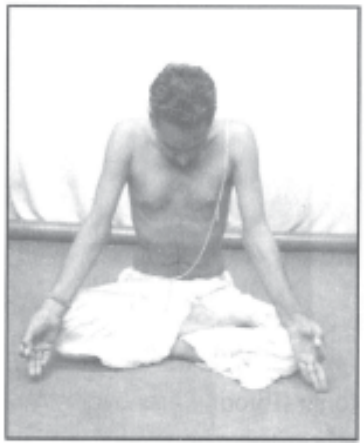

लाभ : इस प्राणायाम को करने से मन को शान्ति मिलती है, बुद्धि में तीव्र विकास होता है। पेट के अन्दर की नाड़ियों का व्यायाम होता है एवं उदर रोगों में बहु लाभदायक है।

समय : इस प्राणायाम को कम से कम तीन बार करना चाहिए।

(हृदय के रोगी को यह प्राणायाम नहीं करना चाहिए)

''सबसे मूल्यवान वस्तु है- समय और मन''

6. कंठ प्राणायाम— (क) इस प्राणायाम को करते समय गले को सिकोड़ लें फिर श्वाँस को अन्दर भरते समय गले में खर्राटे जैसी आवाज करते हुए श्वाँस ले।

खर्राटे की आवाज गले से ही करने की कोशिश करें, नाक से नहीं करना चाहिए।

श्वाँस छोड़ते समय दायें हाथ के अंगूठे से दांयी नाक को बन्द करके बांयी नाक से श्वाँस छोड़ना चाहिए तथा 10–15 दिन अभ्यास करने के बाद श्वांस को 15 सैकेण्ड रोककर श्वाँस छोड़ें।

(ख) जमीन पर बैठकर दोनों पैर पीछे की तरफ करके दोनों हाथ सामने जमीन पर टिका कर सामने की तरफ झुक जाएं। जीभ पूरी तरह से बाहर निकाल कर गले से सिंह गर्जन की तरह आवाज कम से कम 10/15 सेकेन्ड तक निकालते रहे। यह क्रिया 2/3 बार करें।

लाभ : इस प्राणायाम को करने से थाइराइड, पीलिया, अनिन्द्रा, मानसिक तनाव आदि में लाभ होता है। इसमें बच्चों के हकलाने की बीमारी में फायदा होता है तथा आवाज में मधुरता आती है।

समय : इस प्राणायाम को कम से कम तीन बार करना चाहिए।

''व्यंग और कटाक्ष वचन कभी नहीं बोलने चाहिए''

7.कर्ण प्राणायाम— इस प्राणायाम में दोनों नाक द्वारा श्वाँस भरें और मुँह बन्द करके दोनों नाक को दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी अँगुली से बन्द करने के बाद मुंह फुलाकर श्वाँस को कान की तरफ कम से कम 10 सैकण्ड तक ढकेलने की कोशिश करें, फिर नाक से अँगुली हटाकर श्वाँस को जोर से बाहर निकालें।

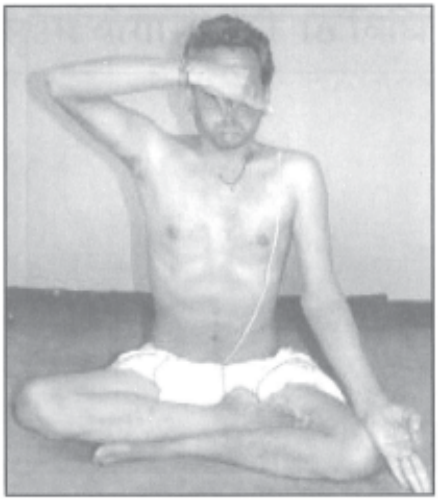

लाभ : यह प्राणायाम करने से कान की नसों में रक्त संचार एवं श्रवण इन्द्रिया ज्यादा सक्रिय तथा कर्ण सम्बन्धी रोगों में फायदा होता है।

समय : इस व्यायाम को कम से कम 3 बार करें।

''अच्छी शिक्षा जहां से भी मिले तुरन्त लें''

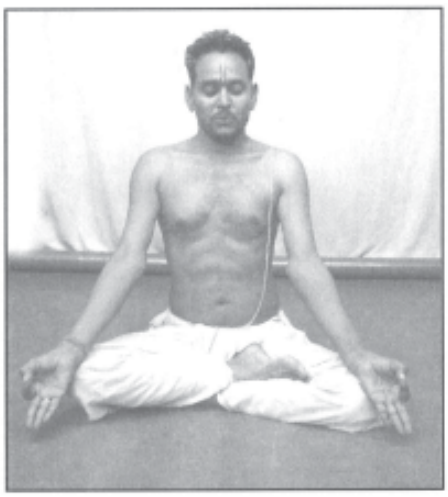

8. ओंकार प्राणायाम—सभी प्राणायाम को करने के बाद ॐ का ध्यान करें।

ॐ का ध्यान करते समय आधी आंख को खोलकर नासिका के अग्र भाग को देखते हुए "ॐ" का उच्चारण करते रहें तथा धीरे धीरे इस अभ्यास को बढ़ाकर कम से कम 1 मिनट "ॐ" का जाप करने की कोशिश करें।

लाभ : ॐ का ध्यान और जाप करने से मन में एकाग्रता आती है मानसिक शान्ति मिलती है तथा लगातार अभ्यास करने से हम अपनी आत्मा के स्वरूप को पहचान कर खुद को अपने इष्ट देव के समीप महसूस कर सकते हैं।

समय : इस प्राणायाम को कम से कम एक मिनट या तीन बार करें।

"फूल और संगीत से जो प्रेम नहीं करता उस मनुष्य का मन कभी निर्मल एवं दयावान नहीं हो सकता"

4.5 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—प्राणायाम से क्या आशय है ? इसमें निहित तीन नाड़ियों का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न 2—प्राणायाम एवं योगासन के अभ्यास करने के किन्हीं प्रमुख पाँच नियमों के बार में बताइये ?

प्रश्न 3—सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन क्या हैं ? इन्हें क्यों करना चाहिए ?

प्रश्न 4—अनुलोम विलोम प्राणायाम की विधि बताते हुए इसके लाभों का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न 5—ओंकार प्राणायाम की विधि एवं लाभों का उल्लेख कीजिये ?

पाठ-5 – सूक्ष्मयोगासन की 16 विधियाँ

5.1 सूक्ष्म योगासनों में अधिक शक्ति लगाकर व्यायाम नहीं करना पड़ता, इसलिए इन्हें हर आयु वर्ग के व्यक्ति सरलता से कर सकते हैं। इनकी प्रमुख सोलह विधियों का विवेचन निम्नानुसार है।

1. बटर फ्लाई योगासन—इस सूक्ष्म योगासन को करने के लिए आसन पर बैठकर दोनों पैरों के तलवों को आपस में जोड़े. फिर दोनों हाथों से पैरों के पंजों को पकड़ कर दोनों घुटनों को उड़न्त पक्षी के पंखों जैसे हिलाते रहें।

लाभ : इससे पेट की चर्बी कम होती है तथा कमर व घुटनों के रोगों में लाभ होने के साथ मोटापा कम करने में सहायक है।

समय : इस योगासन को कम से कम 40–50 बार अवश्य करें।

"ढलती उम्र में टानिक है, ज्यादा एक्सरसाईज (योगासन)"

2. नाखूनासन—इस योगासन के लिए सुखासन में बैठकर दोनों हाथों के पांचों नाखूनों को आपस में रगड़ते रहें।

लाभ :- अंगुलियों में रक्त संचार होता है।

- बाल लम्बे होने की सम्भावना होती है तथा बालों का सफेद होना कम होता है।
- बालों के न गिरने तथा घने होने में सहायक हैं।

समय : नाखूनासन को कम से कम 50 बार अवश्य करना चाहिए। सोचिये क्या ये दिन सदा ऐसे ही रहेंगे।

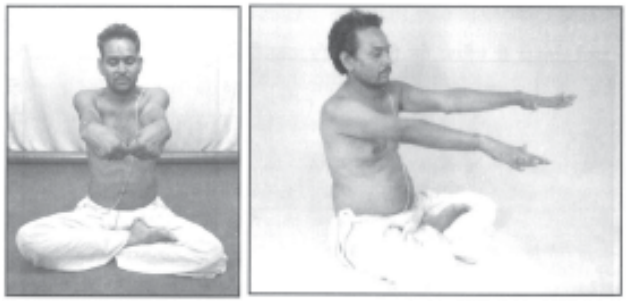

3. मुट्ठी आसन—क. इस योगासन को करने के लिए सुखासन में बैठें तथा दोनों हाथों की मुट्ठी को बन्द करके नाक के सीध में पंजों को मोड़कर आपस में सटाते हुए उल्टा एवं सीधा कम से कम 10–10 बार घुमाते रहें।

ख. यह योगासन करने के लिए दोनों हाथों को नाक की सीध में रखकर दोनों हाथों के पंजों को 10/10 बार खोलिये और बन्द करिये।

लाभ : इस योगासन को करने से हाथों की मांसपेशियों में मजबूती तथा अँगुलियों में रक्त संचार व लचीलापन आता है।

समय : मुट्ठी आसन कम से कम बारी–बारी से 1 बार करना चाहिए।

सोचिए! क्या ये दिन सदा ऐसे ही रहेंगे।

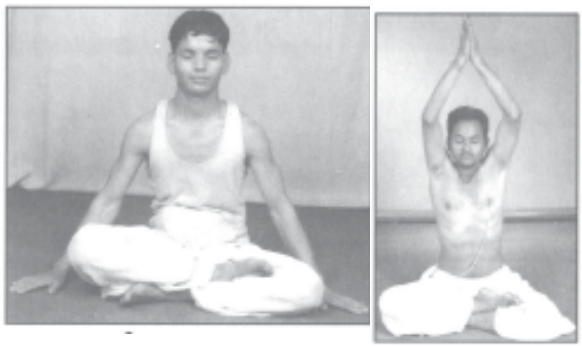

4. उर्द्धहस्तासन व ताली आसन—ऊर्द्धहस्तासन–इस आसन को करने के लिए सुखासन में बैठकर दोनों हाथों को सीधा ऊपर की तरफ उठाकर हथेलियों को आपस में जोर–जोर से 20 बार रगड़ें फिर दोनों हथेलियों से आँख व चेहरे पर मालिश करें।

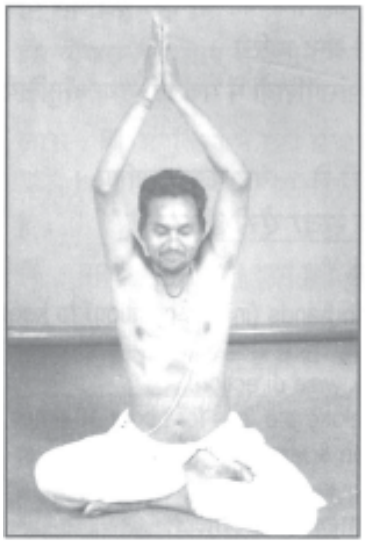
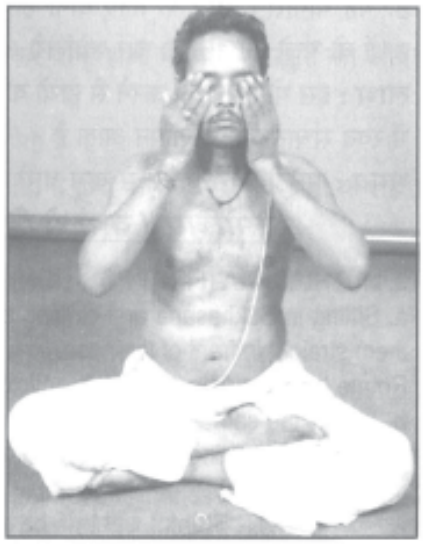

ताली आसन–सुखासन में बैठकर दोनों हथेली को जमीन में सटाएं, फिर दोनों हाथ माथे के ऊपर ले जाकर 20 बार ताली बजाने के बाद हथेलियों से आँखो में भाप दें तथा चेहरे पर मालिश करें।

लाभ : इस योगासन को करने से चेहरे की आभा एवम् आंखों की ज्योति बढ़ती है। हाथों की मांसपेशिया मजबूत होती हैं तथा हथेलियों और अंगुलियों में रक्त संचार एवं लचीलापन होता है।

समय : यह दोनों क्रियाएं कम से कम बारी–बारी 1 बार अवश्य करें।

'' जब आप इस दुनिया में आए थे तब रोते रोते आए और लोगों ने आपका हंसते हंसते स्वागत किया, अब आप ऐसे कार्य करें कि जब आप इस दुनिया से जाएं तब हंसते–हंसते जाएं और लोग आपके लिए रोएं। ''

5. कोहनी आसन—(क) इस आसन के लिए सुखासन में बैठकर दोनों हाथों को मोड़ें दोनों अँगूठे को कंधे पर रखें एवं दोनों कोहनी को आपस में मिलाकर 10–10 बार उल्टा एवं सीधा घुमाएं।

(ख) दोनो हाथों को मस्तक के ऊपर ले जाएं फिर दोनों कोहनियों को आपस में हाथ में पकड़े एवं केवल मस्तक और दोनों हाथों को दाएं बाएं 10–10 बार ज्यादा से ज्यादा झुकाते रहें।

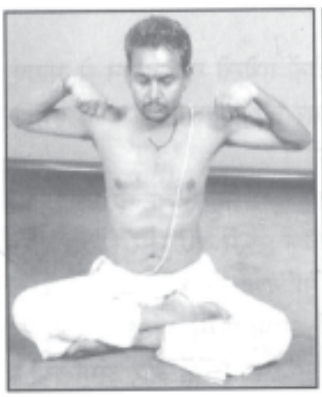
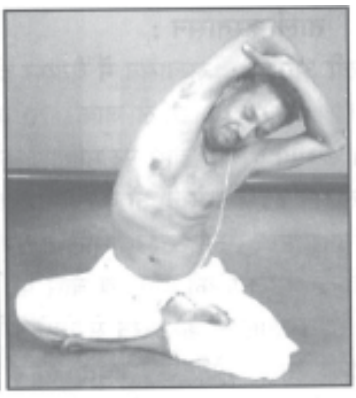

लाभ : इस आसन से कंधे एवं छाती की मांसपेशियों में लचीलापन होता है। हाथों एवं कंधों की बिमारियों में बहुत लाभ मिलता है।

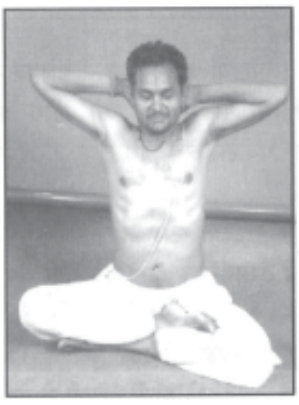
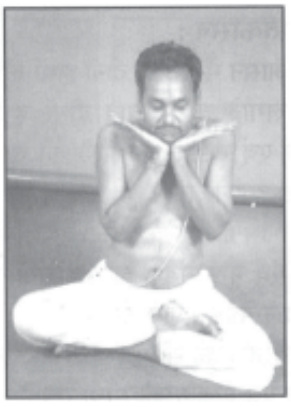

समय : ये आसन कम से कम एक बार करें।

जिओ और जीने दो– Live and Let Live

6. मस्तकासन— सुखासन में बैठकर श्वांस को रोककर सभी मस्तकासन करने चाहिए।

(क) दोनो हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसाकर सिर के पीछे लगाने के पश्चात् दोनों हथेलियों से मस्तक को आगे की तरफ धकेलें एवं मस्तक को पीछे की तरफ धकेलते

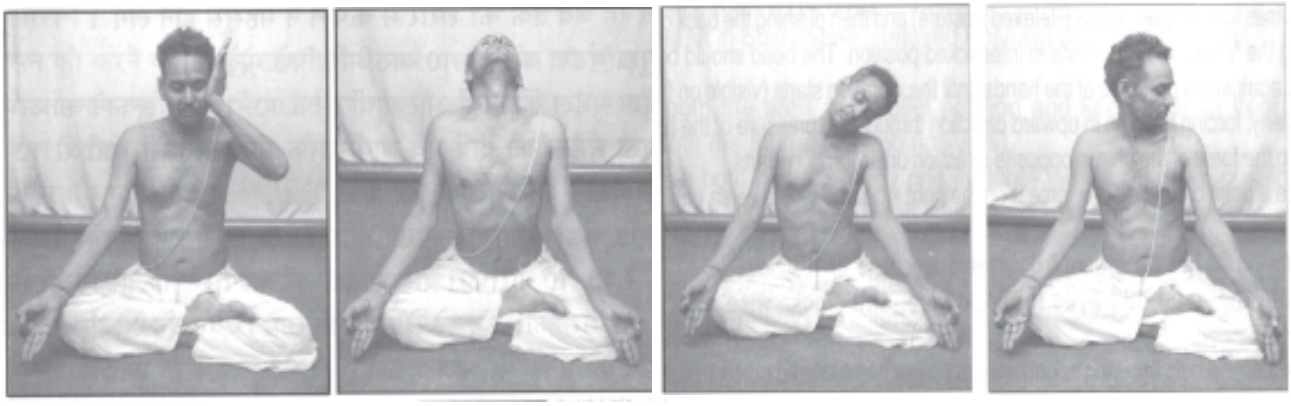

रहें जब तक शरीर में कंपन्न महसूस न होने लगे।

(ख) दोनों हथेलियों से मुँह की ढुड्डी को पीछे की तरफ धकेले एवं मुखमंडल को हथेलियों की तरफ दबाते रहें जब तक की शरीर में कंपन्न महसूस न होने लगे।

(ग) मस्तक को सीधा रख के मुँह के दायें जबड़े को दायीं हथेली से बायें तरफ धकेले एवं मस्तक को सीधा रख के बायें जबड़े को बायीं हथेली से दाहिनी तरफ धकेलते रहें जब तक की शरीर में कंपन्न न महसूस होने लगे।

(घ) मुखमंडल को 10-10 बार आगे पीछे मोड़ें।

(च) मुखमंडल को दायीं और बायीं तरफ 10-10 बार झुकाने का अभ्यास करें।

(छ) मुखमंडल को दायें एवं बांयी तरफ मोड़कर बारी बारी से 10-10 बार कंधे को देखने की कोशिश करें।

(ज) मुखमंडल को एवं आंखों की (आंखे खुली अवस्था में) पुतलियों को धीरे-धीरे 10-10 बार बारी-बारी से दाईं एवं बाईं तरफ गोलाकार करके घुमायें।

लाभ : यह मस्तकासन करने से सरवाईकल पेन एवं गर्दन सम्बन्धित बिमारियों में लाभ होने की प्रबल सम्भावना है।

''समय का सदुपयोग न करने वाला व्यक्ति,
किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं होता।''

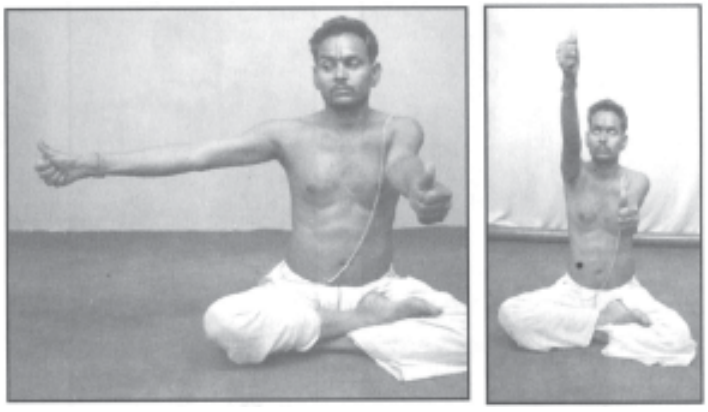

7. चक्षु आसन—इस योगासन को करने के लिए सुखासन में बैठकर मुखमंडल को सीधा रख के दोनों हाथों को नाक की सीध में रखें फिर मुट्ठी बन्द करके अँगूठे को बाहर निकाले फिर आँखो की पुतलियाँ और अँगूठे को दायें-बायें नीचे ऊपर एवं गोलाकार करके घुमाते रहें।

लाभ : आखों की नसों में रक्त संचार बढ़ने के साथ ज्योति भी बढ़ती है एवं आंख सम्बन्धी बीमारियों को दूर करने में सहायक है।

समय : इस चक्षु आसन को बारी-बारी से कम से कम 5/10 बार अवश्य करें।

''विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं हैं।''

8. घुटनापंजासन—घुटनासन : घुटनों के ऊपर तथा कमर के नीचे अंश को कम से कम 100 बार कंम्पन करते रहें।

पंजासन (क)

इस योगासन को करने के लिए सीधा बैठकर दोनों हाथ पीछे करें एवं पैरों को सामने पसार करके दोनों पंजों को

आपस में सटाकर तथा घुटनों को जमीन से टिकाएं। फिर दोनों पंजों को आगे–पीछे एवं दायें–बायें गोलाकार कम से कम 10–10 बार घुमाते रहें।

पंजासन (ख)

दोनों पैर के पंजों से कम से कम 20 बार जोर से ताली बजाते रहें।

लाभ : दोनों पैरों के पंजो एवं पिण्डलियों का व्यायाम होता है। लगातार करने से घुटनों के दर्द में लाभ होने की प्रबल सम्भावना है।

समय : इस आसन को कम से कम 1 बार अवश्य करें।

''बात से नहीं, क्रिया से सिद्धि मिलती है''

9. मोटापा आसन—

(क) यह योगासन करने के लिए आसन पर बैठकर दोनों पैरों को सामने पसारे, पंजों को सटाकर एवं घुटनों को जमीन से लगाएं। अब दोनों हाथों को सामने सीधा करके दोनों हथेलियों को आपस में जोड़कर चक्की से गेहूं पीसने की तरह कम से कम 10–10 बार उल्टा एवं 10 बार सीधा बड़ा शून्य बनाकर घुमाते रहें।

(ख) आसन पर सीधे लेट जायें। दोनों हाथ जमीन में सीधे सटावें, दोनों पैरों को बारी बारी से उठाकर कम से कम 20–20 बार साईकिल की तरह चलाते रहें।

(ग) आसन में सीधे लेट जाएं, दोनों हाथ जमीन में सीधे सटाकर दोनों पैरों को बारी–बारी से ऊपर उठाकर कम से कम 20–20 बार दाँये बाँये गोलाकार करके घुमावें।

(घ) आसन में सीधे लेटें, दोनों हाथ जमीन पर सीधे सटा कर दोनों पैर ऊपर की तरफ उठावें एवं दोनों पैरों को एक साथ गोलाकार करके कम से कम 10–10 बार दाँये बाँये घुमावें।

(च) पेट के बल पर उल्टा लेट जाएं, दोनों हाथ सामने की तरफ फैलायें एवं दोनों पैर पीछे की तरफ फैलाकर आपस में सटा लें अब श्वास को रोककर दोनों हाथ पैर तथा मुखमंडल समेत इन तीनों को 20/30 सैकेण्ड तक उपर उठाकर

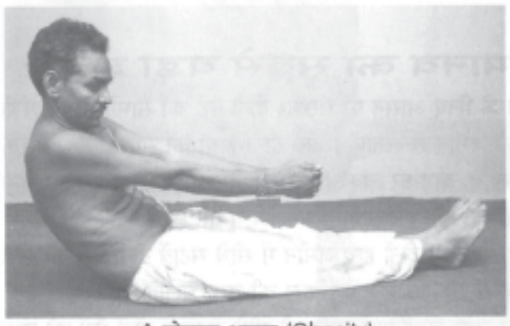

A मोटापा आसन (Obesity)

B मोटापा आसन (Obesity)

C मोटापा आसन (Obesity)

E मोटापा आसन (Obesity)

D मोटापा आसन (Obesity)

स्थिर रखने की कोशिश करें। यह योगासन 2/3 बार दोहराएं।

(छ) मोटापा कम करने के लिए खुले मैदान में या मकान की छत पर हल्के–हल्के (जोगिंग) दौड़ कर चलना चाहिए।

लाभ :- इन मोटापा आसनों को करने से कमर, पेट एवं कुल्हे हल्के होने के साथ मोटापा की बीमारियों में फायदा होता है। मेरूदण्ड संबंधी रोगों में लाभप्रद है तथा आलस्यता भी दूर होती है।

(ज) रोजाना सुबह उठकर 2 नींबू का रस 2 गिलास हल्के गरम पानी में डालकर या करेले के जूस में नींबू निचोड़कर पीने से मोटापे की बीमारी में बहुत फायदा होता है।

''विशेष नोट'': गर्भवती महिलाओं को यह मोटापा आसन नहीं करना चाहिए।

10 मण्डूकासन—

(क) यह योगासन वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द कर लें। मुट्ठी बंद करते समय अंगूठे की अँगूलियों को हाथों के अन्दर बन्द करें। दोनो मुट्ठियों को नाभि के दोनों ओर लगाकर श्वांस को बाहर निकालकर सामने की तरफ झुकिये एवं श्वाँस को रोकते हुए मस्तक को ऊँचा करके आंखों से सामने की तरफ देखते रहें। इसी अवस्था में कम से कम 10 सैकेन्ड तक रहें।

(ख) यह योगासन वज्रासन में बैठकर दोनों हाथ सामने की तरफ फैलाते हुए मस्तक को जमीन में सटाएं एवं इसी अवस्था में कम से कम 10 सैकेन्ड तक रहें।

लाभ : पेट बाहर की ओर जरूरत से ज्यादा नहीं निकलता एवं अन्य पेट के रोग भी दूर होने की सम्भावना है तथा शरीर को सुडौल बनाने में सहायक है।

समय : यह योगासन कम से कम तीन बार अवश्य करना चाहिए।

''विशेष नोट'' : गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिए।

''मोटापा सभी बीमारियों की जड़ है''

11. नौकासन—

(क) इस योगासन में आसन पर सीधा लेट जाए फिर दोनों पैरों को और मस्तक उठाकर नाव की तरह शरीर को बनाएं एवं दोनों हाथ सीधा करके पैर पंजों को स्पर्श करने की कोशिश करें। नौकासन अवस्था में कम से कम 15 सेकेण्ड रहकर शवासन करके विश्राम करें।

(ख) इस योगासन में सीधे लेट जाएं दोनों पैर की एड़ी एवं मस्तक व कन्धे जमीन में सटाकर दोनों हाथों से कमर को ऊपर उठाकर उल्टी नाव की तरह शरीर को बना लें। इसी अवस्था में कम से

कम 10 सैकेन्ड तक स्थित रहने के बाद पुनः शवासन करके विश्राम करें।

लाभ : यह योगासन करने से हाथ एवं पैरों की मांसपेशियों में लचीलापन, कमर की डिस्क आदि बीमारियों में फायदा होता है एवं शरीर को संतुलित बनाए रखने में सहायक है।

समय : नौकासन कम से कम 1/2 बार करना चाहिए।

12. कमर आसन—

(क) आसन पर सीधे लेट कर दोनों हाथों को दोनों तरफ फैला लें, दाहिने पैर को ऊपर की तरफ उठाएं और बाईं तरफ झुकाकर जमीन में सटाएं। इसके बाद बायें पैर को ऊपर की तरफ उठाएं और दाहिने तरफ झुकाकर जमीन से सटाएं। दोनों अवस्था में बारी बारी 10/15 सेकेन्ड तक रखें। यह प्रक्रिया कम से कम 2/3 बार करें।

A. कमरमेरूदण्डासन (Waist Backbone)

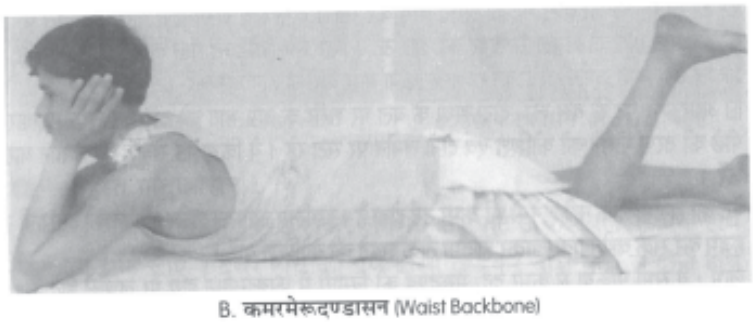

B. कमरमेरूदण्डासन (Waist Backbone)

C. कमरमेरूदण्डासन (Waist Backbone)

D. कमरमेरूदण्डासन (Waist Backbone)

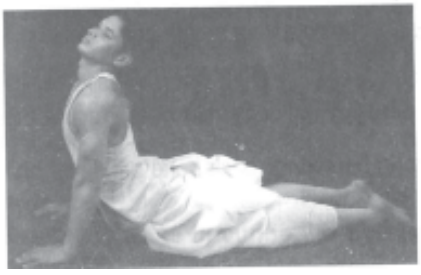

E. कमरमेरूदण्डासन (Waist Backbone)

(ख) आसन पर उल्टा लेट कर दोनों पैरों को बारी बारी से ऊपर नीचे की तरफ करते रहे। इसके साथ ही मुखमंडल को दोनों हाथों पर रखकर ऊपर उठाएं एवं सामने की 10/15 सेकेन्ड तक देखते रहें।

यह प्रक्रिया कम से कम 2/3 बार करें।

(ग) आसन पर उल्टा लेट कर दोनों हाथों को लम्बा करके पेट के नीचे दबाएं और मुखमंडल को ऊपर सामने की तरफ 10/15 सेकेन्ड तक देखते रहें। यह कम से कम 2/3 बार करें।

(घ) आसन पर पेट के बल पर उल्टा लेट जाएं, दाहिने हाथ को सामने भूमि पर रखें और मुखमंडल को बाईं तरफ मोड़कर इसी हाथ पर रख के बायें हाथ को ऊपर उठाकर सिर पर रखें। इसी तरह बायें हाथ को सामने भूमि पर रखें। मुखमंडल को दायें तरफ मोड़कर इसी हाथ पर रखे। सिर्फ कमर को आहिस्ता नीचे ऊपर करते रहें। यह दोनों प्रक्रिया कम से कम 10/15 सेकेन्ड तक 2/3 बार दोहराएं।

नोट : अगर आपको कमर में दर्द है तब इन योगासनों को करने के पहले नमक की पोटली से कमर की सिकाई करें, फिर 5 मिनट पश्चात् कोई भी दर्दनाशक तेल वगैरह लगाकर इन योगासनों को करें।

पेट का हाजमा ठीक नहीं होने से भी कमर में दर्द होता है।

इसलिए जो आपका शरीर आसानी से हजम कर सके वहीं खाना खाकर हाजमा ठीक रखने की कोशिश करें।

लाभ : इन योगासनों से कमर, हाथ, पैर एवं गर्दन में लचीलापन आता है तथा कमर सम्बन्धी बिमारियों में फायदा होता है तथा बराबर करने से कमर सम्बन्धित बीमारियाँ नहीं होने की सम्भावना है।

समय : चारों प्रक्रिया कम से कम बारी–बारी से एक बार अवश्य करना चाहिए।

13. हस्त पादुकासन—

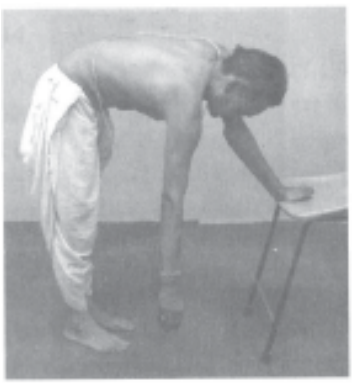

(क) इस योगासन में सीधे खड़े होकर लगभग ढाई फुट ऊंची टेबल पर एक हाथ रखते हुए झुक जाएं। दूसरे हाथ को पूर्ण ढीला छोड़कर बारी–बारी से दोनों हाथ को दायें बायें कम से कम 15–15 बार बड़े से बड़ा शून्य बनाकर घुमाएं।

(ख) सीधे खड़े होकर दोनों हाथ को ढाई फुट ऊँची जगह पर रुककर झुक जाएं एवं दोनों पैर को बारी बारी से दायें बायें कम से कम 15–15 बार खड़े करके बड़ा शून्य बनाकर घुमाएं।

लाभ : यह योगासन करने से हाथ एवं पैर की कमजोरी तथा घुटनों का दर्द होने की सम्भावना है।

समय : यह आसन कम से कम 1 बार अवश्य करें।

A. लम्बाई आसन (Height)

B. लम्बाई आसन (Height)

C. लम्बाई आसन (Height)

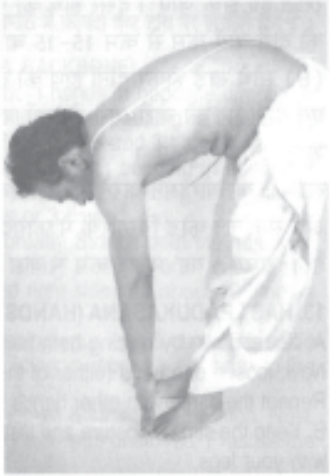

D. लम्बाई आसन (Height)

14. लम्बाई आसन—

(क) खड़े होकर कोई रॉड या कड़ी (सर से ऊपर लगी हुई) को पकड़ कर 10/15 सेकेन्ड तक लटकते रहे। इस क्रिया को कम से कम तीन बार करें।

(ख) दोनों पैरों की एड़ी को ऊंचा करके पंजों के बल पर खड़ें होकर दोनों हाथों को सीधा ऊपर की तरफ करके श्वास को रोकते हुए 5/10 सेकेन्ड तक आगे पीछे चलते रहें।

(ग) बचपन में स्कूल के अन्दर ड्रील करते समय दोनों हाथ पैरो को फैलाते हुए उछलना सिखाते थे वही उछलना 10/15 सैकेन्ड तक करते रहें।

(घ)सीधे खड़े होकर (श्वास रोककर) दोनों हाथों को सिर के ऊपर उठायें फिर धीरे धीरे सामने की तरफ झुकाते हुए (दोनों पैरो को सीधा रखते हुए) दोनों हाथों की उंगलियों से पैर के अंगूठे को छूने की कोशिश करें। यह क्रिया कम से कम 2/3 बार करें।

इसके अलावा रस्सी को सिर के ऊपर एवं पैर के नीचे से घुमाते हुये उछलना तथा साईकिल चलाना भी लम्बाई बढ़ाने में सहायक है।

लाभ : इन आसनों को नियमपूर्वक करने से लम्बाई होने की पूर्ण सम्भावना है।

15. शवासन :

सभी प्राणायाम एवं योगासन करने के पश्चात् ही शवासन और हास्यासन करना चाहिए।

इस योगासन के लिए दोनों आंखो को बन्द करके जमीन में आसन पर सीधा लेट जाएं। अपने पूरे शरीर को पूर्णरूप से ढीला छोड़ दें एवं मन को एकाग्र और प्रसन्नचित्त रखकर महसूस करें कि आप दूसरे लोक में हैं।

लाभ : मन में एकाग्रता, दृढ़ता एवं परम शान्ति मिलती है तथा कोई भी कार्य करके थकावट या परेशानी महसूस होने पर 2/3 मिनट शवासन करना चाहिये। इससे आपको दुबारा कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी।

समय : कम से कम दो तीन मिनट तक यह आसन अवश्य करें।

''अपने ही किये कर्मों का फल सुख दुख जीव भोगता है''

16. हास्यासन—''सभी सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन करने के पश्चात् हास्यासन करना चाहिए।''

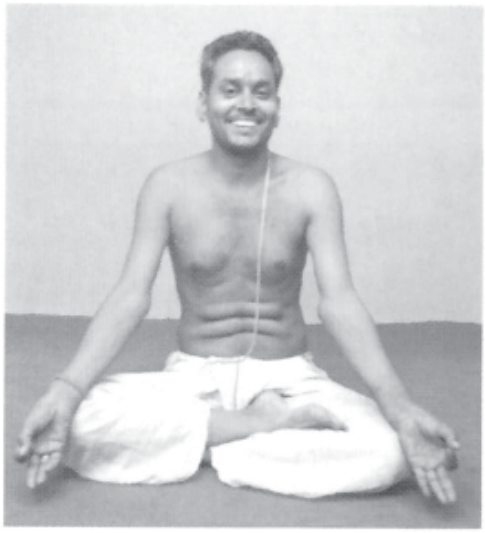

यह योगासन करने के लिए सुखासन में बैठे एवं अंग प्रत्यंग को ढीला छोड़कर प्रफुल्लित होकर खिल– खिलाकर कम से कम 15 सैकेण्ड तक हँसते रहें तथा जीवन का अलौकिक आनन्द लें।

लाभ : हास्यासन करने से पूरे शरीर के रोम–रोम खिलने के साथ बुद्धि का विकास एवं मन प्रफुल्लित होता है तथा सभी अंग प्रत्यंगों का भी व्यायाम हो जाता है तथा शरीर में जितनी भी नसें हैं उनमें रक्त के संचार में सक्रियता बढ़ती है।

समय : यह आसन कम से कम 3 बार अवश्य करें।

शुद्ध भाव से हंसना मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है।

हंसकर बोलने से प्राणीमात्र खुश होते हैं तथा मित्र भी बन जाते हैं।

आइये हम सब शुद्ध भाव से हंसकर बोलें।

केवल मात्र उपदेश नहीं देकर अपने सामर्थ्य अनुसार प्राणीमात्र की सेवा भी करते रहें।

5.2 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—बटर फ्लाई योगासन की विधि एवं लाभों का उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न 2—मस्तकासन की विधि का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 3—चक्षु आसन की विधि एवं लाभ बताइये ?

प्रश्न 4—मोटापा आसन की विधि का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 5—लम्बाई आसन की विधि एवं लाभों का वर्णन कीजिये ?

इकाई–4 अहिंसात्मक जीवन शैली

इस इकाई में प्रमुखरूप से निम्न विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) अहिंसक आहार-शाकाहार

(2) माँसाहार व अण्डाहार-नैतिक व आध्यात्मिक पतन का कारण

(3) रात्रि भोजन का त्याग एवं जलगालन

(4) परिवार नियोजन करें-गर्भस्थ शिशु हत्या नहीं

(5) मादक पदार्थों से हानियाँ एवं स्वास्थ्यवर्द्धक पेय

पाठ-1 – अहिंसक आहार-शाकाहार

1.1 विश्व के समस्त धर्मों में न्यूनाधिक रूप में अहिंसा का महत्व समझाया गया है। भारत वर्ष में जैन, बौद्ध एवं वैदिक धर्म ने अहिंसा को अत्यधिक महत्व दिया है। यह एक व्रत के रूप में स्वीकार किया गया है। जैन धर्म में पाँच महाव्रतों में अहिंसा एक प्रमुख व्रत है।

भारतवर्ष के अर्वाचीन इतिहास में महात्मा गाँधी ने अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया और उसे पराधीनता से मुक्ति हेतु अस्त्र के रूप में प्रयोग कराया।

जैन आचार, आहार एवं जीवन शैली का सम्बन्ध व्रतों से है। अहिंसा के विचार का मनुष्य में उदय तथा पोषण होता है। इसीलिए इन व्रतों से मानव में संयम तथा अहिंसा का पोषण होता है। आहार संयम के लिए प्राचीन काल में एक परम्परा थी कि श्रावक अपने घर के भोजनालय में शुद्ध एवं सात्विक एवं पौष्टिक भोजन करता था। समय एवं खाद्य पदार्थों में पूर्ण प्रमाणिकता थी किन्तु आज परम्परागत गृहस्थों के भोजनालय बदल गये हैं। उनका परिवर्तित स्थान आधुनिक होटल, डाईनिंग हाल आदि आहार के व्यापारिक संस्थानों ने ले लिया है। आधुनिक कारखानों में निर्मित आहार का व्यापक रूप में प्रयोग (होम डिलिवरी के रूप में) प्रचलित हो चुका है। आगामी समाज की पीढ़ी इसी आहार एवं पेय द्रव्यों पर निर्भर होगी, उससे जो शरीर एवं मन बनेगा वह भविष्य के गर्भ में है। सम्पूर्ण राष्ट्र एवं समाज पर इसका कुप्रभाव होगा। अतः इसका स्वस्थ विकल्प ढूँढना हमारा कर्तव्य है इसलिए अब विचार करना जरूरी हो गया है।

यह सर्व विदित है कि धर्मोपदेशक एवं साधु जैनागमों में वर्णित खान–पान का समय–समय पर प्रवचन करते हैं और समाज का ध्यान उसके लाभ हानियों की ओर भी आकृष्ट करते हैं, किन्तु उसका फल न्यून है। अतः इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों को विचार करना चाहिए तथा सक्रिय कदम उठाना चाहिए। कृषि कार्यों में कीटनाशक औषधियों के प्रयोग पर भी अहिंसक समाज को विचार करना चाहिये। आज विश्व में सूखी खेती तथा कीटनाशक दवाओं के वगैर कृषि सम्भव है। इजराइल का **अमिरिम** ग्राम इसका उदाहरण है। भारत में ऐसा हो, इसके लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक है। इससे अहिंसक विचार को बल मिलेगा

बहुत–सी औषधियाँ जान्तव द्रव्यों (हिंसक रीति) से निर्मित होती हैं। वे अहिंसक एवं शाकाहार आस्था रखने वाले समाज के लिए अभक्ष्य हैं। अतः चिकित्सकों को समाज के समक्ष एक विचार रखना चाहिए कि कौन–कौन सी औषधियाँ भक्ष्य या अभक्ष्य हैं। जैन चिकित्सकों का यह दायित्व भी है। कैप्सूल का भी विकल्प ढँढूना चाहिए। इसके लिए उद्योगपति पहल कर सकते हैं।

सौन्दर्य प्रसाधनों में अनेक जान्तव द्रव्यों का प्रयोग होता है। अहिंसा के विचार की दृष्टि से इस पर विचार करना होगा। Beauty without cruelity के विचार को मान्य करना चाहिए और इसके लिए जो करना हो, करना चाहिए। वस्त्रों

में रेशम का प्रयोग भी विचारणीय है। वस्त्र उत्पादन में **मटन टेलो** (मांस चर्बी) का प्रयोग होता है, यह सभी जानते हैं। अतः अहिंसक एवं शाकाहार समाज को यथासम्भव खादी, सूती अथवा सिन्थेटिक वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

1.2 शाकाहार से आशय—

शाकाहार क्या है ? सहज स्वभाव है। शाकाहार में दो शब्द सम्मिलित है। शाक और आहार। शाक से आशय साग–पात, तरकारी–फल, दूध–घी आदि का है और आहार से अभिप्राय रोटी, दाल, चावल आदि से है। जिस प्रकार दीर्घ जीवन के लिए शुद्ध जल, वायु आवश्यक है। उसी प्रकार शुद्ध शारीरिक, मानसिक भोजन भी आवश्यक है। शाकाहार जितना धार्मिक है, माँसाहार उतना ही अधार्मिक है। शाकाहार हितकर भोजन है।

शाकाहार क्यों ? दुनिया के उच्च कोटि के वैज्ञानिक चिकित्सक और खिलाड़ियों का कहना है कि शाकाहार सर्वश्रेष्ठ भोजन है। शाकाहारी भोजन में भोजन तन्तु अधिक पाये जाते हैं। भोजन तन्तुओं की अधिकता से आँतों में भोजन का चलन व्यवस्थित रहता है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य स्वभाव से माँसाहारी नहीं है। वह तो स्वाद की लोलुपता और निर्दयता से माँसाहारी बनता जा रहा है।

शाकाहार से लाभ–शाकाहारी भोजन से अनेक लाभ हैं। शाकाहारी भोजन से हमें भरपूर रेशे मिलते हैं। इसके नियमित प्रयोग से कब्ज होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। स्वास्थ्य की दृष्टि से शाकाहार भोजन उत्तम है। इसलिए आज विश्व में सभी डॉक्टर शाकाहार का समर्थन करते हैं। इसमें रोग–निरोधन शक्ति है। आर्थिक दृष्टि से भी शाकाहार उत्तम भोजन है। शाकाहार के द्वारा कम मूल्य में अधिक ऊर्जा व कैलोरी प्राप्त की जा सकती है।

भारत की जीवन–शैली के दो प्रमुख प्रेरक सूत्र हैं–'जियो और जीने दो' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (यह धरती हमारा परिवार है)। अहिंसा और सहअस्तित्व की पवित्र भावनाओं ने इस देश में परस्पर–सहयोग, प्रीति और विश्वास का खुशहाल वातावरण बनाया है। कोई भी भारतीय धर्म जीव–हिंसा/रक्तपात के पक्ष में नहीं है।

जहाँ तक शाकाहार के उद्भव का प्रश्न है, यहाँ सदियों से कृषि पर जोर दिया जात रहा है। जैनधर्म के वर्तमान युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ ने कृषि–संस्कृति का प्रवर्तन किया था। उन्होंने मनुष्य को ऐसी अहिंसक जीवन–शैली प्रदान की थी, जिसने एक–दूसरे के साथ प्रेम से रहने की सम्भावनाओं को समृद्ध दिया था। भारत गाँवों का देश रहा है। पशु–पालन भारतीय संस्कृति का प्रमुख प्रदेय है। माँसाहार का भारतीय संस्कृति से कोई तालमेल नहीं है।

भारत में वधशालाओं का जाल अंग्रेजों के जमाने में बिछना शुरू हुआ। आश्चर्य का विषय है कि जितने कत्लखाने अंग्रेजों के युग में नहीं खुले, उससे कई गुना स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे इस शस्यश्यामल देश में खुल गये है। आज हमारी इस पवित्र धरा पर हजारों कत्लखाने हैं, जिनमें रोज दर–रोज लाखों–लाख पशु काट दिये जाते हैं।

हिंसा और आतंक का दौर उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। क्रूरताएँ इस कदर बढ़ गयी हैं कि उन्होंने न सिर्फ पशु–पक्षियों वरन् स्वयं मनुष्य पर भी अपना खूनी पंजा पसार दिया है। यदि शाकाहार–आन्दोलन को जल्दी ही विस्तृत नहीं किया गया तो तय है कि देश स्वयं एक कत्लखाने में बदल जाएगा।

1.3 विभिन्न देशों में शाकाहार के प्रति रुचि–

अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान, मैक्सिको, युगोस्लाविया आदि देशों में वहाँ के निवासी माँसाहार का त्यागकर शाकाहार ग्रहण कर रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संघ ने 160 बीमारियों के नाम अपने समाचार पत्र में घोषित किये हैं, जो माँसाहार से फैलती हैं। रूस के अबेकशिया प्रान्त में अधिकांश निवासी शाकाहारी हैं, जो विश्व में दीर्घायु के लिए प्रसिद्ध है। पश्चिम जर्मनी में हाइडिल वर्ग स्थित कैंसर केन्द्र के अनुसार खासतौर पर हृदय एवं रक्त संचालन सम्बन्धी बीमारियों से मृत्यु दर माँसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारियों में कम है। शिकागो में भी चार साल तक ऐसे मरीजों पर

प्रयोग किये गये हैं। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि शाकाहारी भोजन निश्चितरूप से उच्च रक्तचाप को ठीक रखने में सहायक है।

माँस भक्षी मनुष्य ऐसा समझते हैं कि माँसादि में अन्न, फल, दूध, सब्जी आदि से अधिक शक्ति के अंश होते हैं, तो उनका यह सोचना बिलकुल गलत है। वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा विशिष्ट पदार्थों से प्राप्त होने वाली शक्ति की मात्रा निम्न तालिका से पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है–

वस्तु	**शक्ति की मात्रा**
सूखे चने मटर में	87 प्रतिशत
बादाम में	91 प्रतिशत
दाख आदि मेवा में	73 प्रतिशत
घी में	87 प्रतिशत
दूध में	14 प्रतिशत

दूध में 86 प्रतिशत जो पानी होता है वह भी स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है।

माँस में	28 प्रतिशत

इसका जलीय अंश मानव–शरीर के लिये हानिकारक होता है।

चावल में	87 प्रतिशत
गेहूँ के आटे में	86 प्रतिशत
जौ के आटे में	84 प्रतिशत
मलाई में	69 प्रतिशत
अंगूर आदि फलों में	25 प्रतिशत

इन फलों का जलीय अंश भी मनुष्य शरीर के लिये फायदेमन्द होता है।

मछली में	13 प्रतिशत
अण्डे में	21 प्रतिशत

इनका जलीय अंश भी हानिकारक होता है।

इसके अनुसार माँस में सूख चने, मटर, चावल, गेहूँ जौ, बादाम, घी, मलाई, फल आदि से शक्ति की मात्रा बहुत ही कम होती है। अतः साधारण मनुष्य भी चना–मटर चबाकर माँसाहारियों की अपेक्षा अधिक बलवान बन सकता है।

1.4 शाकाहार में सभी आवश्यक तत्व मौजूद–

शाकाहार में सभी आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं।

प्रोटीन–यह दूध, दही, छाछ, पनीर, फल, मेवों तथा दाल आदि में पायी जाती हैं।

चिकनाई–यह शरीर में गर्मी और शक्ति पैदा करती है। यह दूध, दही, मक्खन, तेल, बादाम, अखरोट आदि में पायी जाती है।

खनिज लवण–भोजन शक्ति को अच्छा रखते हैं। रोगों से शरीर की रक्षा करते हैं।

कार्बोहाइड्रेट–शरीर में गर्मी और शक्ति प्रदान करते हैं। यह चावल, गेहूँ, मक्का, ज्वार आदि में पाया जाता है।

कैल्शियम–हड्डियों और दाँतों को मजबूत करता है। यह दूध, दही व हरी सब्जियों में पाया जाता है।

विटामिन–शरीर को स्वस्थ और रोगों से मुक्त रखता है। यह चावल, गेहूँ, दूध, मक्खन, फल, नींबू, सेम आदि में पाया जाता है।

1.5 शाकाहार के बिना होने वाली बीमारियाँ–

शाकाहार के बिना मलेरिया, फाइलेरिया, चेचक आदि रोग हो जाते हैं। इन बीमारियों में मिर्गी की बीमारी प्रमुख है। यह बीमारी मस्तिष्क में टीनिया सोलिइम नाम के कीड़े से हो जाती है। यह कीड़ा सूअर का माँस खाने से पैदा होता है। इसी प्रकार जो जानवर गन्दा पानी पीते हैं व भोजन करते हैं, उनके शरीर में अनेक कीटाणु होते हैं। इन जानवरों के माँस के खाने से यह मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और बीमारी फैला देते हैं। अधिकांश व्यक्ति जो हृदय रोगी हैं, वे वसायुक्त (चर्बी) पदार्थ अधिक खाते है। हार्ट–अटैक की बीमारी भी इसी से होती है।

जिन भोज्य पदार्थों में फाइवर की कमी होती है, उनके सेवन से कैंसर की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। फाइबर की मात्रा अधिकांशतः फल–सब्जियों में अधिक होती है। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है, कि अण्डे खाने से शरीर में अनेक भयानक रोग, जैसे–ब्लड प्रेशर, जिगर, लकवा, कैंसर आदि हो जाते हैं।

1.6 विभिन्न विद्वानों के शाकाहार के बारे में विचार—

अमेरिका के उच्चकोटि के डॉक्टर ब्राउन और गोल्ड स्टीन का कहना है कि उनके देश में हार्ट अटैक की बीमारी का प्रमुख कारण भोजन में वसा का अधिक होना है। इन वैज्ञानिकों को इस खोज के लिए 1985 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शॉ को जब एक बार दावत में माँसाहारी भोजन परोसा गया तो उन्होंने भोजन को यह कहकर लौटा दिया कि "मेरा पेट कब्रिस्तान नहीं है।" महात्मा गाँधी ने कहा कि मैं मर जाना पसन्द करूँगा लेकिन माँस नहीं खाऊँगा। शाकाहारी आन्दोलन की लहर में लन्दन के प्रिन्स चार्ल्स व राजकुमारी डाईना के साथ डांस स्टार माईकल जेक्सन तथा अभिनेत्री सारा मोईल्स व हेलीमेल्स जैसे नामी–गिरामी लोग भी बह गये हैं। लीओनारडोडा विन्सी को पश्चिमी सभ्यता का शाकाहारी कहा जाता है। उनमें बहुत दया मौजूद थी। यदि वे किसी के पास पिंजरे में बन्द पक्षी को देखते थे, तो मुआवजा देकर वह पिंजरा खरीद लेते थे। फिर उस पिंजरे के पक्षी को आकाश में उड़ा देते थे।

भौतिक विज्ञान के महान वैज्ञानिक अलवर्ट आइन्स्टाईन शाकाहारी भोजन के प्रभाव के बड़े कायल थे, कि शाकाहार हमारी प्रकृति पर गहरा प्रभाव डालता है। यदि हम शाकाहार को अपना लें तो इन्सान की दशा पलट जाये।

प्रसिद्ध पहलवान राममूर्ति, इंगलिश चैनल को तैरकर पार करने वाले विलपिकारिंग, प्रसिद्ध बल्लेबाज विजय मर्चेण्ट, टैनिस खिलाड़ी रामनाथ कृष्णन, ओलम्पिक में तीन बार स्वर्ण पदक जीतने वाले मर्रे रोज तथा उड़न सिख के नाम से जाने वाले प्रसिद्ध धावक मिलखासिंह आदि शाकाहारी ही थे।

माँसाहार के कदम रोकने के लिए शाकाहार को लोकप्रिय बनाना और उसकी स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा चिकित्सकीय महत्ता/उपयोगिता को जनता–जनार्दन तक पहुँचाना जरूरी है। यह काम दो तरह से किया जा सकता है–1. लोगों को कानून के प्रति जागरूक करके; 2. शाकाहार/अहिंसा की सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक उपयोगिता को प्रतिपादित करके।

जब तक हम आम आदमी को माँसाहार–जनित विकृतियों की तर्क–संगत जानकारी नहीं देंगे, उसे उससे विमुख करना सम्भव नहीं होगा। हमें प्रचार–माध्यमों का सहारा लेकर तथा अपना स्वयं का प्रचार–संस्थान विकसित कर पूरे विश्व में जहाँ भी शाकाहार की उपयोगिता तथा उसकी उपादेयता को प्रसारित किया जा रहा है, वहाँ से पूरी दुनिया में फैलाना चाहिये। शाकाहार को लेकर इन दिनों काफी खोजें हुई हैं; किन्तु इस तरह प्राप्त निष्कर्षों को अभी जनता तक पहुँचाया नहीं गया है। हमें चाहिये कि हम पूरी ताकत से इन उपलब्धियों को सब तक पहुँचाये और शाकाहार का मनोयोगपूर्वक प्रचार–प्रसार करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार को शक्ति व सुरक्षा प्रदान करने में शाकाहार की विशेष भूमिका है। जब शाकाहारी सात्विक भोजन द्वारा सात्विक विचारों की उत्पत्ति होगी। तभी मानव शान्ति की ओर अग्रसर हो सकेगा।

1.7 फास्ट-फूड कल्चर से फैलती विभिन्न बीमारियाँ-

आज कल फास्ट-फूड आधुनिकता का पर्याय बन गए हैं और इसी आधुनिकता के चलते **कब्ज, अल्सर, हृदय रोग, ब्लड प्रेशर, आँखों के रोग, बहरापन, डायबिटीज, कैंसर** जैसे रोग भी बढ़ रहे हैं। पश्चिमी तरीके से तैयार फास्ट-फूड का सेवन करने वाले लोग अनजाने में रोगों को आमंत्रित कर रहे हैं। आकर्षक सुविधाजनक हर जगह उपलब्ध होने वाले फास्ट-फूड को लोगों ने जिस तेजी से अपनाया है, उतनी ही रफ्तार से लाइलाज रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है। दसअसल यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आड़ में बाजार में कब्जा करने के लिए खाद्य उत्पादों को घटिया तरीके से बेचना शुरू किया है।

आमतौर पर डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ जो बाजार में लंबे समय तक टिके रहते हैं, हानिकारक होते हैं। बिस्कुट, पेस्ट्री, नमकीन, अचार, मिठाइयां इत्यादि जिन्हें लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए रसायनों का इस्तेमाल होता है शरीर के नाजुक अंगों को क्षति पहुँचाते हैं।

डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों का चलन तेजी से बढ़ रहा है। आजकल बाजारों में जैसे चटचटे, जायकेदार, व्यंजन मिलने लगे हैं, जिन्हे जब चाहे, जहॉ खोलिये और खाइये। कहीं भी, कभी भी लजीज व्यंजन के भरोसे डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों को पश्चिमी तर्ज पर परोसा जा रहा है, जिसके चलते भारतीय व्यंजन, फीके पड़ने लगे हैं। महंगा फास्ट फूड खरीरकर अपनी सेहत बिगाडने वाले लोग आधुनिकता का दंभ भरते नजर आते हैं। मगर धीरे-धीरे इनका दुष्प्रभाव शुरू होता है, तब चिकित्सकों के भरोसे वे अपने जीवन की गाड़ी घसीटने को मजबूर हो जाते हैं।

1.7.1 रसायनों की रंगत रोगों की संगत—

नूडल्स खाने में स्वादिष्ट इसलिए लगता है, क्योंकि इसमें मिलाया जाने वाला रंग रसायन स्वादग्राही कोशिकाओं को भ्रमित कर देता है। इस स्वाद रहित रसायन से नूडल्स अधिक समय तक तरोताजा बना रहता है। लंबे समय तक नूडल्स के सेवन से स्वादग्राही कोशिकाएं अपनी प्राकृतिक शक्ति खो देती हैं परिणामतः भूख न लगने की बीमारी हो जाती है। स्वाद को बढ़ाने वाले और भोजन को तरोताजा रखने वाले रसायन भी घातक हैं, '**अजीनोमोटो**' नामक रसायन दुकानों में सहजता से उपलब्ध है यह बासी खाद्य पदार्थों को तरोताजा बना देता है। लेकिन स्वास्थ्य के लिए खतरनाक सिद्ध होता है **शाकाहारियों को तो इससे अवश्य बचना चाहिये क्योंकि ये जैविक चर्बी से बनता है।** भोजन में स्वाद को बढ़ाने वाले सेक्रीन, साइक्लोमेट, एमेसल्फ, तीनों कैंसरकारी माने गए हैं।

1.7.2 फास्ट फूड खाओ, मोटापा बढ़ाओ—

फास्ट-फूड में **वसा** और **कार्बोहाइड्रेट** की अधिकता और **प्रोटीन** नहीं के बराबर होता है। इसे स्वादिष्ट और आकर्षक बनाया जाता है, जिसे खाकर बच्चे **मोटापे** का शिकार हो जाते हैं। फास्ट-फूड खाने वाले बच्चों में विशेष प्रकार के ऐंजाइम की कमी भी हो जाती है, जिससे बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास रुक जाता है। लीवर खराब होने के साथ दस्त अधिक लगने लगते हैं लौह तत्व व विटामिनों की कमी से होने वाले रोग पनपने लगते हैं।

1.7.3 डिब्बाबंद खाना, मौत का परवाना—

डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों में जिन खतरनाक रसायनों को मिलाया जाता है, उनकी एक लंबी सूची है। खाद्य पदार्थों को ऐसे रसायन तरोताजा, सुगंधित आकर्षक बनाने का काम करते है। शोधों के जरिए बताया है कि इसके प्रभाव से बच्चों की छाती में धड़कन, दमा या लगातार चलने वाला सिरदर्द हो सकता है। इसकी अत्यधिक मात्रा मस्तिष्क की कोशिकाओं को नुकसान पहुॅचाती है, जिससे बच्चों की याददास्त कमजोर हो जाती है। अततः चिड़चिड़ापन क्रोधित

होना जैसे रोग भी इनसे बढ़ रहे हैं।

बच्चे फास्ट-फूड की ओर ज्यादा आकर्षित हो रहे हैं। भारतीय बच्चों में डाईबिटीज ज्यादा बढ़ रही है जो जिंदगी भर के लिए पंगु बना देती है। बर्गर, फेंच, फ्राईज, चाउमीन, पोटेटो चिप्स जैसे खाद्य बच्चे होड़ में खाते हैं। ऐसा खाद्य खाने वालों का जीवन स्तर भी समाज में ऊँचा समझा जाता है। दरअसल इसमें विटामिन सी, आयरन फोलेट और रिबोप्लोविन की कमी होती है, क्रीम होने से कैलोरी, वसा और सोडियम की मात्रा अधिक होती है। शरीर के लिए जो पोषक तत्त्व होना चाहिए वे नहीं होते और नतीजे में इससे पाचन तंत्र कमजोर होता है। महंगा फास्ट फूड खाकर शरीर को रोगों का घर बनाना समझदारी नहीं हैं फास्ट-फूड बच्चों का आहार कभी न बने, अन्यथा उनका भविष्य चौपट हो सकता है। इसका ध्यान जरूर रखना चाहिए।

1.7.4 देशज स्थिति विरुद्ध हैं ये आहार-

कुल मिलाकर ये आहार भारतीय मौसम, परिस्थिति और संस्कृति के विपरीत है। हमारे यहाँ, उष्ण-आर्द्र मौसम रहता है। इस मौसम में प्राकृतिक, सुपाच्य और स्वाभाविक स्वाद वाली देशज वस्तुएं ही आहार की जानी चाहिये, लेकिन देखा रहा है कि एक तरफ कुपोषण का शिकार बच्चे हैं तो दूसरी तरफ फास्टफूड से बीमार बच्चे हैं। अतः भविष्य में देश का नागरिक कैसा होगा? विचार करना चाहिए।

1.8 शुद्ध आहार के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण-

1.8.1 जैन दृष्टि : जैन दर्शन ने इस आधुनिक स्थिति को पहले ही पढ़ लिया था। तभी तो **'भगवती आराधना ग्रंथ'** में लिखा है कि-

होई णरो णिल्लज्जो पयहइ तवणाण दंसणं चरित्तं।
आमिस कलिणा ठइओ छायं मइलेइ य कुलस्स।।

अर्थात जब आहार मर्यादा खोकर मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है तब तप, ज्ञान, दर्शन और चारित्र की मर्यादा भी तोड़ देता है। ऐसा निर्लज्ज मानव कुल की लाज भी गंवा बैठता है। शायद हम भारतीय भी विदेशियों की देखा-देखी भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार भूलकर चाहे जो खाने को तत्पर होकर अपने राष्ट्रीय कुल, अपने सांस्कृतिक वैभव पर कलंक लगा रहे हैं। हमें इससे उबर कर स्वयं को और अपनी भावी पीढ़ी को बचाना चाहिये।

1.8.2 'शाक' शब्द संस्कृत की 'शक्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है योग्य होना, समर्थ होना, सहज करना।शक् धातु से शक्नोति इत्यादि शब्द बने हैं। शाक शब्द का अर्थ है-बल, पराक्रम, शक्ति एवं शक्त के मायने हैं -योग्य, लायक, ताकतवर। इस तरह शाकाहार का वाच्यार्थ हुआ ऐसा आहार जो मनुष्य की योग्यताओं का विकास करें और उसे बलशाली तथा पराक्रमी बनाये।

1.8.3 वेजीटेरियन शब्द लेटिन भाषा के 'वेजीटस' शब्द से जन्मा हैं, जिसका अर्थ है-स्वस्थ, समग्र, समर्थ, विश्वस्त, ठोस, परिपक्व, जीवन, ताजा। फ्रांसीसी में 'वेजीटेबिल' शब्द का अर्थ है जीवन-संचारक, अंत जीवन से भरपूर।

महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाईन विशुद्ध शाकाहारी थे वे कहा करते थे कि शाकाहार का हमारी प्रकृति पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

सन् 1945 में रसायन शास्त्र विषयक नोबल पुरस्कार से सम्मानित डा.अर्तुरी वर्ततेन (हेलिंस्की, फिनलैंड में जवे रासायनिक शोध संस्थान के निदेशक) ने कहा है कि दुग्ध शाकाहारियों को फल, साग-सब्जी, दाल, वसा, न्यूनित दूध आदि से तमाम आवश्यक पोषक तत्व सहज ही मिल सकते हैं।

अमेरिका फूड एंड न्यूट्रीशन बोर्ड की नेशनल रिसर्च कौंसिल ने साफ कहा है कि अधिकांश पोषण विज्ञानी इस तथ्य से सहमत हैं कि यदि शाकाहार को यथोचित संयोजन किया जाए तो वह स्वयं में सम्पूर्ण /पर्याप्त आहार है। दुनिया

के प्रायः सभी देशों में शुद्ध शाकाहारियों ने अपना स्वास्थ्य उत्तम प्रकार से बनाये रखा है।

एक वैज्ञानिक खोज ने यह सिद्ध कर दिया है कि '**शाकाहार में मांस से पांच गुणा अधिक शक्ति है**'– (ओरियन्टल वॉच्मेन पूना पृ.35।)

संयुक्त राज्य अमेरिका में डेढ़ करोड़ शाकाहारी लोग 1999 तक हो चुके थे। **गेलप पोल** अनुमान के अनुसार यू.के.में हर हफ्ते 3 हजार लोग शाकाहारी बन जाते हैं। जिनकी संख्या करोड़ो में पहुँच चुकी है।

शाकाहारियों का अच्छा स्वास्थ्य उनके आहार का परिणाम है यह विचार बर्लिन वेजीटेरियन स्टडी की जांच पड़ताल का है। जर्मन स्वास्थ्य दफ्तर के सामाजिक औषध और महामारी विज्ञान संस्थान ने 1985 में उपर्युक्त अध्ययन शुरू किया था। अध्ययन के अनुसार शाकाहारियों का संतुलित स्वास्थ्य उसके मांस मछली आदि न खाने और मोटे रेशे वाले तथा कम कोलेस्टेरोल वाले अन्न उत्पादनों के सेवन करने का परिणाम है।

वीगन (शुद्ध शाकाहारी) जीवन शैली को एक वाक्य में परिभाषित करते हुए क्रूएल्टी फ्री गाइड टू लन्दन के संपादक स्लेक्स बुर्क ने कहा है कि **''एक शाकाहारी न तो किसी जन्तु के किसी अन्तर्वर्ती भीतरी भाग को खाता है और न ही उसके बाहरी भाग को ओढ़ता-पहनता है।''**

1.9 सौन्दर्य प्रसाधन/शाकाहारी विकल्प

सौन्दर्य देखने वाले की दृष्टि में होता है जिससे हमें बहुत अनुराग होता है, उसको हम सुन्दर मानते हैं। अपनी माँ या दादी, नानी क्या आपको सुन्दर नहीं लगतीं ? लगतीं है, पर इन्होंने कोई कॉस्मेटिक तो प्रयोग किये ही नहीं–सूती साड़ी, ढका हुआ सिर और लाल सिन्दूर की बिन्दी; बस हो गया इनका व्यक्तित्व गरिमापूर्ण। जहाँ सौन्दर्य की सारी परिभाषायें अपने अर्थ खोने लगती है, वह है आज का चिन्तन, आज के मन की पवित्रतायें, उमड़ता हुआ मातृत्व और जीवमात्र के प्रति करुणा। आप कृपया यह तर्क मत दीजिये कि मेरे अकेले के त्याग से कितने जीव बच जायेंगे ? यह सोचने का सबसे घटिया तरीका है। आपको यह संकल्प करना है कि आप बस 'वही हैं' जो जीवन में ठान लेते हैं, उसे पूरा करते हैं और आज पशु हित के लिये, जीवन के सम्मान के लिये बिना एक पैसा खर्च किये बस जरा–सा अपनी जीवन–शैली को परिवर्तित करना है। यह ना खरीद कर, वह खरीदना है। नीचे दिये गये कुछ घर में ही तैयार किये गये पूर्णतः अहिंसक घरेलू सौन्दर्य प्रसाधन के बारे में जानें, जो ''एक अहिंसात्मक जीवनशैली'' नामक पुस्तक के आधार से दिये जा रहे हैं–

आफ्टर शेव–शेव करने के बाद फिटकरी का गीला किया हुआ टुकड़ा स्किन पर मलें।

क्लीजिंग मिल्क–एक बड़ा चम्मच दही और एक चाय की चम्मच नींबू का रस मिलायें और रुई की सहायता से चेहरे पर लगायें, थोड़ी देर बाद टिश्यू पेपर से चेहरा पोंछ लें।

डीओडॅरॅन्ट–आधी चाय की चम्मच पिसी हुई फिटकरी को 200 ml गरम पानी में मिलाकर उपयोग करें।

डैन्ड्रफ क्योर (डैन्ड्रफ हटाने वाला)–चार चम्मच अजवाइन पानी में उबालें और छानकर ठण्डा करें और शैम्पू करे हुए नम बालों में लगायें और धीरे–धीरे मालिश करें और फिर पानी से न धोएँ।

फेस पैक–एक चाय का चम्मच बेसन, थोड़ी सी मलाई और पानी मिक्स करके चेहरे पर लगायें, 10–15 मिनट के बाद धो दें और तैलीय त्वचा के लिए सप्ताह में दो बार मुल्तानी मिट्टी का फेस पैक उपयोग करें। इसका पेस्ट घमौरी को ठीक करता है।

फेशियल स्क्रब–जई का आटा 50 ग्रा. 3-4 चम्मच दूध मिलाकर पेस्ट बनायें और चेहरे पर लगायें। इसके बाद गरम पानी से चेहरा धो लें।

बालों का गिरना–(1) शुद्ध बिना सेंट मिला हुआ नारियल का तेल सिर पर 10 दिन तक रोज घिसें और फिर इस प्रक्रिया को हफ्ते में एक बार दोहराते रहें।

(2) सिर धोने के बाद अन्त में चाय का पानी (बिना चीनी और दूध का) से सिर धोने से बालों में चमक आती है।

बालों का तेल और कण्डीशनर–एक किलो नारियल का चूरा लगभग 3 लीटर पानी में मिलाकर उबालें। जब तक कि तेल अलग होकर सतह पर न तैरने लगे, उसे छानकर ठण्डा करके बोतल में भर लें। यह शुद्ध नारियल का तेल सर्वोत्तम हेयर कण्डीश्नर का काम करता है।

हेयर स्प्रे–तीन नींबूओं को थोड़े से पानी में उबाले। जब छिलका नरम हो जाये, तो अच्छे से मिलाकर ठण्डा करके स्प्रे बोतल में भरकर उपयोग करें।

मसाज ऑइल–जैतून का तेल, सरसों का तेल।

मॉइश्चुराइजिंग लोशन–एक चुकन्दर की पत्तियाँ दो कप डिस्टिल वाटर में 10 मिनट उबालें, ठण्डा होने तक छोड़ दें और एक बोतल में छानकर भर लें। वैसलीन और पेट्रोलियम जैली सबसे अच्छे त्वचा के नमीकारक होते हैं।

माउथवॉश–एक चाय का चम्मच खाने का सोडा, इतना ही नमक एक गिलास गरम पानी में घोलें और फिर एक कप सिरका, 10 लौंग और आधा कप सौंफ मिलाकर, इसे ठण्डा करके माउथ वॉश के रूप में प्रयोग करें।

परफ्यूम–चमेली, चम्पा, मोगरा, गुलाब, चन्दन, लेवेंडर आदि के प्राकृतिक सुगन्धित तेल परफ्यूम का काम कर सकते हैं।

मुहाँसों से बचने का उपाय–(1) तुलसी के पत्ते, नींबू के रस के साथ पीसकर यह पेस्ट चेहरे पर लगाने से मुहाँसों की रोकथाम होती है।

(2) कील–मुहाँसों से पीड़ित लोग 250 ग्राम मुल्तानी मिट्टी, इतना ही चन्दन पाउडर व 50 ग्राम पिसी हुई हल्दी मिला लें। इसकी तीन चम्मच का पेस्ट तैयार कर उपयोग करें। इससे न केवल कील–मुहाँसे ही साफ होंगे, बल्कि चेहरे का रंग भी साफ हो जायेगा।

झुर्रियाँ रोकने का घरेलू नुस्खा–गाजर का पेस्ट और दूध झुर्रियों को रोकने में सहायक होते हैं।

टूथपेस्ट–(1) तीन हिस्सा खाने का सोडा और एक हिस्सा पानी। यह विधि सिर्फ वयस्कों के लिए उपयोगी है, क्योंकि इसमें फ्लोराइड नहीं होता जो बच्चों के दाँतों के लिए आवश्यक होता है।

(2) दाँतों से टार–टार और प्लाक हटाने के लिए 1 टेबिल स्पून बेकिंग पावडर में एक चुटकी नमक मिलायें।

टोनर–एक चम्मच खीरा का रस, एक चम्मच टमाटर का रस, एक चम्मच नींबू का रस, एक चम्मच तरबूज का रस मिलाकर चेहरे पर लगायें। सौन्दर्य प्रशाधन में पशुओं के वध जैसा पाशविक कृत्य तो आवश्यक ही नहीं है।

भला न होगा इस देश का, पशुओं की अवैध कटाई से।
भारत का उत्थान न होगा, मांस निर्यात की कमाई से।।
पाबन्दी नहीं पशु कत्ल पर, क्या भला उस कानून से।
क्या चलेगी सरकार वह, जो पैसा कमावे खून से।।
हिंसा का जो विधान करे, वह संविधान किसे प्यारा।
हिंसा पर प्रतिबन्ध लगाना, है, अधिकार हमारा।।

1.10 अभ्यास प्रश्न—

प्रश्न 1—शाकाहार से क्या आशय है ? यह क्यों आवश्यक है ?

प्रश्न 2—सन्तुलित भोजन के आवश्यक तत्त्व कौन–कौन से हैं ?

प्रश्न 3—प्रोटीन एवं चिकनाई किन प्रमुख शाकाहारी पदार्थों में पाई जाती है ?

प्रश्न 4—अहिंसक फैश पैक स्क्रव किस प्रकार तैयार किया जाता है ?

प्रश्न 5—फास्ट फूड का प्रयोग किस प्रकार हानिप्रद है ?

पाठ-2 – माँसाहार व अण्डाहार-नैतिक व आध्यात्मिक पतन का कारण

2.1 मनुष्य की भावना ही उसके कर्मों को प्रभावित करती है। जिसमें अहिंसा, दया, परोपकार आदि की भावना है वह ऐसा कोई कर्म करना या कराना नहीं चाहेगा जिससे किसी अन्य प्राणी को पीड़ा पहुँचे। जो किसी प्राणी को कष्ट में देखकर द्रवित हो जाता है ऐसी भावना वाला व्यक्ति माँसाहार की तो कल्पना ही नहीं कर सकता, किन्तु जिनकी भावना इसके विपरीत है, जो हिंसा करने, क्रूरता करने व अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को कष्टों में डालने में संकोच न करने की वृत्ति रखते हैं उनके लिये माँसाहार तो क्या वे कोई भी अनैतिक कार्य कर सकते हैं।

2.1.1 माँसाहार से मस्तिष्क की सहनशीलता व स्थिरता का ह्रास होता है, वासना व उत्तेजना बढ़ाने वाली प्रवृत्ति पनपती है, क्रूरता व निर्दयता बढ़ती है। जब किसी बालक को शुरू से ही माँसाहार कराया जाता है तो वह अपने स्वार्थ के लिये दूसरे जीवों का माँस खाना, उन्हें पीड़ा देना, मारना आदि कार्यों को इतने सहज भाव से ग्रहण कर लेता है कि उसे किसी की हत्या करने, क्रूरता व हिंसक कार्य करने में कुछ गलत महसूस ही नहीं होता। अहिंसा, दया परोपकार की भावना तो उसमें पनप ही नहीं पाती। उसमें केवल स्वार्थ लाभ की भावना ही पनपती है, जो उसे अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये, जाति व देश तक का अहित करने से नहीं रोकती। माँसाहार द्वारा कोमल सद्भावनाओं का नष्ट होना व स्वार्थ, निर्दयता आदि भावनाओं का पनपना ही आज विश्व में बढ़ती हुई हिंसा, घृणा व दुष्कर्मों का मुख्य कारण है।

2.1.2 माँसाहार वासनाओं को भड़काता है और वासनाएँ जितनी पूरी की जाती है उतनी अधिक भड़कती हैं इनकी कभी तृप्ति नहीं होती। जब इनकी तृप्ति में बाधा आती है तो क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से सही–गलत का विवेक समाप्त हो जाता है जिससे बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट होने से पथभ्रष्ट हो जाते हैं। अथवा सर्वनाश हो जाता है। अर्थात् माँसाहार सर्वनाश की ओर ले जाता है। अपराधियों के एक सर्वेक्षण से यह भी पता लगा कि 75 प्रतिशत अपराधी माँसाहारी हैं तो केवल 25 प्रतिशत शाकाहारी। अर्थात् माँसाहार से आपराधिक प्रवृत्ति बढ़ती है।

अतः हम देखते हैं कि माँसाहार अन्य हानियों के अलावा विश्व में बढ़ती हुई हिंसा, अमानुषिकता, दुष्कर्मों आदि का कारण व मानव को सर्वनाश की ओर ले जाने वाला भी है। इसे रोकना हम सबका कर्त्तव्य है, यदि हमने ऐसा नहीं किया तो हमारी आने वाली पीढ़ियों को इसके गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

यह प्रायः देखने में आता है कि दुष्कर्मों, बलात्कार, हत्या, निर्दयतापूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति साधारण स्थिति में ऐसे दुष्कर्म नहीं करते अपितु इन कुकर्मों के करने से पहले वे शराब, माँसाहार आदि का सेवन करते हैं ताकि उनका विवेक, मानवीयता व नैतिकता नष्ट हो जाए और उन्हें उन कुकर्मों को करने से रोके नहीं। अर्थात् जब कोई अनुचित कार्य करने को अन्तरात्मा तैयार नहीं होती तो उसकी आवाज को अनसुनी करने के लिए ये पदार्थ लेते हैं। दुर्भाग्य से आज तो लोग केवल फैशन, आधुनिकता व उच्च स्तर का दिखावा करने के लिए माँसाहार करते हैं और यह भी सर्वविदित है कि ऐसे व्यक्तियों का नैतिक स्तर क्या बन रहा है ? यह उनका अन्तर्मन स्वयं जानता है।

कुछ शाकाहारी व्यक्ति भी अपने को आधुनिक दिखाने की होड़ में शाकाहारी पदार्थों से पशु–पक्षियों की आकृति के भोजन तैयार कराकर, उन्हें माँसाहारियों की भाँति इस प्रकार देखते हैं मानो वे भी माँसाहारी है। ऐसा शाकाहारी भोजन करना यद्यपि स्वास्थ्य की दृष्टि से बुरा नहीं है। किन्तु भावनात्मक दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि हमारी भावना ही कर्मों को प्रेरित करती है। ऐसा शाकाहारी भोजन करते हुए भी भावना तो यही है कि हम दूसरे प्राणी को काटकर खाने का आनन्द ले रहे हैं। यह भावना हमें अहिंसा, दया, प्रेम जैसे गुणों से दूर ले जाकर हिंसा, क्रूरता आदि की ओर प्रेरित करेगी और देर–सबेर से हमें, नहीं तो आने वाली पीढ़ी को तो माँसाहारी बना ही देगी।

2.2 विशिष्ट व्यक्तियों के माँसाहार निषेध सम्बन्धी विचार—

"मारने की सलाह देने वाला, मरे प्राणियों के शरीर को काटने वाला, मारने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला, खाने वाला–ये सब के सब पापी दुष्ट हैं।" **–मनुस्मृति**

"ये लोग जो तरह–तरह के अमृत से भरे, शाकाहारी उत्तम पदार्थों को छोड़कर माँस आदि घृणित पदार्थ खते हैं, वे सचमुच राक्षस की तरह दिखाई देते हैं।" **–महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 116**

जो प्राणी लोभ के वशीभूत होकर दूसरे के प्राणों को हरते हैं अथवा माँस की पैदावार बढ़ाने में धन का योगदान करते हैं वे पापी हैं, दुष्ट हैं और घोर नरक में जाकर महान् दु:ख उठाते हैं।"

..... मैं मानता हूँ, जो व्यक्ति दूसरों का माँस खाता है वह सचमुच अपने बेटे का माँस खाता है।

महात्मा बुद्ध

'जो व्यक्ति माँस, मछली और शराब सेवन करते हैं, उनका धर्म–कर्म जप–तप सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।

–गुरु ग्रंथ साहब

"सब राक्षस जैसे क्रूर–पुरुषों को प्रभु का नाम जपाया, उनसे माँस खाने की आदत छुड़वाई। उन राक्षस पुरुषों ने जीवों को वध करने की आदत छोड़ दी। सच कहा है, महात्माओं की संगति सुख देने वाली होती है।"

–नानक प्रकाश

कपड़े पर खून लगने से कपड़ा गन्दा हो जाता है। वही घृणित खून जब मनुष्य पीवेगा तब उसकी चित्तवृत्तियाँ अवश्य ही दूषित हो जायेंगी। **–गुरु नानक देव, बार माँझ, महल्ला–1**

जिसमें खून है, वही माँस है। मरे हुए जीव का माँस, शूली पर चढ़ाये हुए जीव का माँस, शस्त्र के द्वारा मारे गये जीव का माँस कदापि नहीं खाना चाहिए।" **–कुरान शरीफ अरबी**

"तुम मेरे पास सदैव एक पवित्र आत्मा होगे बशर्ते तुम किसी का माँस न खाओ।"

—Holy Bible—Teachings of J. Christ

पैगम्बर हजरत मोहम्मद नबी साहब और उनके दामाद हजरत अली ने कहा था–"हे संसार के प्राणियों ! अपना पेट भरने के लिए पक्षियों को मारकर अपने उदर को कब्र न बनाओ।"

फारसी शास्त्र 'फरदोषी शहनामा' में यह लिखा सहज ही देखा जा सकता है–"पशु हिंसा, माँस–भक्षण तथा शिकार कभी भी नहीं करना चाहिये, ऐसा हमारे पवित्र–शास्त्रों का फरमान है।"

इस तरह जो कोई भी किसी पशु को मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैगम्बर एसफंदरमद ने कहा है– "हे पवित्र मानव ! परमात्मा की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मल व माँस से पवित्र रखा जाये।"

–जरतुश्तनामा दु–95

"जो मनुष्य माँस खाते हैं, वे अल्पायु, दीन, दरिद्र, दास होते हैं तथा नीच कुलों में जन्म लेते हैं।"

–विष्णु पुराण

2.3 मांसाहारी भोजन से उत्पन्न रोग—

प्रकृति ने जिस जीव की रचना जिस भोज्य–पदार्थ के अनुरूप की है, वह वैसा ही भोजन पचा सकता है। प्रकृति विरुद्ध भोजन करने या बलपूर्वक कराने से शरीर–तन्त्र असहज हो उठता है और उसे अनेक रोग घेर लेते हैं। उदाहरणार्थ, सन् 1996 में इंग्लैण्ड की 'गौओं में पागलपन का रोग' फैला। गौओं के चारे में पशु–मांस मिलाकर खिलाने से ये रोग हुआ। इस रोग से उनके मस्तिष्क छिन्न–भिन्न होकर स्पंज की तरह असंख्य छिद्रों से भर गए। उन गौओं का मांस खाने से

भी कई लोग मारे गए। सारे विश्व में इस बिमारी का बहुत शोर मचा। यूरोपीय आर्थिक समुदाय ने इंग्लैण्ड से गो–मांस के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। गौओं से पहले यही रोग भेड़ों में '**सक्रैपल**' नाम से फैला था।

मनुष्य भी शाकाहारी वर्ग का ही प्राणी है। मांसाहार उसकी शारीरिक–संरचना के सर्वथा प्रतिकूल है। मांस खाने से उसे अनेक दुस्साध्य रोग घेर लेते हैं। मनुष्य को मांसाहार से होने वाले विभिन्न रोग–

हृदय रोग और मस्तिष्कावरोध : हमारा हृदय मांस–पेशियों से निर्मित है। यह सारे दिन में लगभग एक लाख बार धड़क कर सारे शरीर की हर कोशिका तक खून की आपूर्ति करता है। हृदय को अपने स्वयं के संचालन के लिए भी खून की जरूरत होती है, जो तीन बड़ी धमनियों से प्राप्त होती है। रक्त–धमनियों की भीतरी दीवार पर वसा–युक्त पदार्थ जम जाने से धमनी–मार्ग सिकुड़ जाता है, बीच में खून के थक्के जम जाएं तो हृदय पूरी तरह अवरुद्ध हो जाता है।

इसी तरह मस्तिष्क को जाने वाले रक्त–धमनियों में थक्के जम जाने से मस्तिष्कावरोध हो जाता है।

धमनी–अवरोध का मुख्य कारण भोजन में सन्तृप्त वसा और कोलैस्ट्रोल की अधिकता है। मांस, अण्डे और दुग्ध–उत्पाद सन्तृप्त–वसा के समृद्ध स्रोत है। प्रत्येक सौ ग्राम अण्डे में 550 मि. ग्रा. तथा अन्य मांसों में 45 से 375 मि. ग्रा. तक कोलैस्ट्रोल होता है। प्रायः सभी वनस्पति–पदार्थ कोलैस्ट्रोल से रहित होते हैं। अमेरिकी मैडिकल एसोसिएशन ने अपनी मुख–पत्रिका के सम्पादकीय में लिखा है कि शाकाहारी भोजन करने से हृदय धमनी की सिकुड़न में 60–70 तक बचाव हो सकता है।

उच्चरक्तचाप :–आजकल ये विश्वव्यापी रोग है। अधिक वसा और अधिक कोलेस्ट्रोल से युक्त तथा कम रेशेदार भोजन खाने से रक्त–धमनी का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस कारण धमनियों के ऊपर रक्त का अधिक दबाव पड़ता है, यही उच्च रक्तचाप है। मांस, अण्डों में वसा और कोलेस्ट्रोल अधिक है तथा रेशे हैं ही नहीं, इससे मांसाहारियों को उच्च रक्तचाप की अधिक शिकायत होती है।

मधुमेह :–पेट में स्थित पैक्रियाज ग्रन्थि, खून में स्थित शर्करा का अनुपात स्थिर रखने के लिए इन्सुलिन नामक हार्मोन का स्राव करती है। मांसाहारी भोजन अधिक वसा–युक्त होने से खून में कोलैस्ट्रोल के स्तर को ज्यादा करता है। इस कारण खून में इन्सुलिन का पूरा विलयन नहीं हो पाता, जिससे मधुमेह रोग होता है। खून में रही हुई अतिरिक्त वसा खुद भी विखण्डित होकर शर्करा (ग्लूकोज) में बदल जाती है, जो और भी शर्करा–वृद्धि करती है।

मिन्सोटा यूनिवर्सिटी, अमेरिका के महामारी विभाग ने निरन्तर 21 वर्ष तक 25,000 लोगों के विस्तृत अध्ययन के आधार पर मांसाहार को मधुमेह का एक प्रमुख कारण मान कर उसके त्याग करने की सलाह दी है।

कैंसर :–N. C. I. के कैंसर–कार्यक्रम के उप–निदेशक डा. जिओ बी. गोरी ने कहा है कि भोजन में वसा की अधिकता और रेशों की कमी होना कैंसर का प्रमुख कारण है। मांस व अण्डों में वसा बहुत है और रेशे हैं ही नहीं। अतः रेशे कम होने के कारण आंतों की क्रिया गति बहुत शिथिल होती है। जबकि शाकाहारी भोजन में रेशे पर्याप्त मात्रा में होते हैं, जो बुहारी का काम करते हैं अर्थात् आंतों की क्रिया ठीक प्रकार चलती है।

मांसाहारी की आंतों में आहार के अधिक समय तक रुके रहने से उससे कई विषाक्त पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं तथा आंतें उस कैंसररूपी विष को सोखने लगती है, जो धीरे–धीरे कैंसर का कारण बनते हैं। माँसाहारियों में बड़ी आंत के कैंसर के अतिरिक्त अम्ल की बिमारी, अपच, कब्ज, हरिनया, बवासीर, कौलाइटिस, डाइवर्टिक्यूलोशिस आदि बिमारियां भी अधिक पाई जाती हैं।

गुर्दे व पित्ताशय की पथरी :–रासायनिक संरचना के आधार पर गुर्दे की पथरी कई प्रकार की है। कुछ कैल्शियम ओक्सलेट से, कुछ कैल्शियम फास्फेट से, कुछ यूरिक अम्ल से बनती हैं। इनमें से कुछ पथरियाँ अधिक वसायुक्त भोजन लेने से बनती है। जब कत्लखाने में पशु को मारते हैं तो उनके शरीर में रहे हुए यूरिक–अम्ल आदि

त्याज्य पदार्थ पशु–मांस में ही पड़े रहते हैं। उनको बाहर निकालने का कार्य भी मांसाहारी मनुष्य के गुर्दों को करना पड़ता है। इससे उनके खून में यूरिक–एसिड के स्तर में भारी वृद्धि हो जाती है जो गुर्दों में जाकर जमने लगता है व परत पर परत जमकर पथरी का रूप ले लेता है।

पित्ताशय की पथरी का मुख्य घटक कोलेस्ट्रोल ही है। वह पित्ताशय के तरल पदार्थों में जम कर पथरी बनाता है। कम वसा, कम प्रोटीन व अधिक रेशेदार भोजन लेने से पथरी में सुधार होने लगता है।

पशु–मांस में प्रोटीन अधिक मात्रा में पाया जाता है। किसी वस्तु के अधिक–सेवन से हानियां ही होती है। प्रोटीन के उच्छिष्ट पदार्थ (पचने के बाद व्यर्थ बचे) यूरिक एसिड और क्रेटिनम को बाहर निकालने के लिए गुर्दों को अधिक श्रम करना पड़ता है। जिसके कारण गुर्दे पर अतिरिक्त भार पड़ता है।

अस्थियों का विरलन :–आस्टियोपरोशिस (हड्डियों का घुलना) इस रोग का एक कारण है आहार में प्रोटीन का अधिक होना। मांसाहार को प्रोटीन का स्रोत माना गया है। सूत्र यह है कि 'अधिक प्रोटीन–अधिक कैल्शियम क्षति' तथ्य है–'आहार में जितना अधिक प्रोटीन होगा, कैल्शियम की हानि भी उसी अनुपात में होगी'। आस्टिपयोपरोशिस कैल्शियम की कमी से होने वाला हड्डी रोग है। जिससे हड्डियों की सघनता घटती है वे कमजोर और कच्ची पड़ जाती है।

जोड़ों का दर्द/गठिया :–इस रोग में जोड़ो में सूजन आ जाती हैं। मांसाहारी भोजन में वसा व कोलेस्ट्रोल की मात्रा अधिक होने से रक्त–धमनियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं, जिससे जोड़ों के सब ऊतकों तक पर्याप्त आक्सीजन नहीं पहुँच पाती, अतः सूजन व पीड़ा होती है।

मांसाहारी भोजन में यूरिक एसिड की मात्रा अधिक होने से गाउट होता है। इसमें पाँव के अंगूठों में सूजन व दर्द होने लगता है।

उच्च प्यूरीन युक्त व अधिक प्रोटीन वाला भोजन छोड़ देने से जोड़ों के दर्द में काफी फायदा होता है। घोघां–मछली, मुर्गी, गोमांस व सुअर–मांस में काफी मात्रा में प्यूरीन होता है।

पेट का अल्सर :–यह पेट में मवाद झरने वाला फोड़ा होता है, जो पेट में हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड अधिक बनने का परिणाम माना जाता है। मांसाहार में तेजाब (अम्ल) की अधिकता होती है। **कत्लागार में मारे जाने वाले पशुओं को देखकर, अन्य पशुओं का मांस, मौत के डर से अधिक तेजाबयुक्त हो जाता है।** अतः इसे खाने से पेट का अल्सर होता है।

मांस, मछली व अण्डे विशेष एसिड–वर्धक है। मांस को सुरक्षित रखने के लिए मिलाए जाने वाले बोरिक एसिड बेंजाइक एसिड व नाइट्राइट् भी पेट के अल्सर का कारण बनते हैं। किसी भी मांस व अण्डे में 'विटामिन सी' नहीं होता, यह विटामिन सर्व रोग निवारक है। इसकी कमी से शरीर की रोग–प्रतिरोधक–क्षमता प्रभावित होती है, जिससे कई रोग उत्पन्न होते हैं।

मिर्गी के दौरे व दृष्टिहीनता :–अधपक्का सुअर का माँस खाने से उसमें मौजूद टीनिया सोलियुम नाम सूक्ष्म जीव हमारी पाचन क्रिया की अन्तड़ियों से होकर खून में प्रवेश कर जाते हैं फिर यह जीव रक्त प्रवाह द्वारा हमारे मस्तिष्क व आँखों में पहुँच जाते हैं।

मस्तिष्क में यह जीव न्यूरो सीस्टीसरकोसिश बीमारी का कारण बनती है जिसके कारण मिर्गी के दौरे आने लगते हैं।

आँखों में प्रवेश पाकर अधिकतर यह सूक्ष्म जीव आँखों के नेत्र पटल (Retina) पर आक्रमण करते हैं तथा आँखों के नेत्रपटल (Retina) को अपनी जगह से हटा (Retinal-Detachment) देते हैं। जिसके कारण मनुष्य दृष्टिहीन हो सकता है।

2.4 अण्डा भी मांसाहार के समान हानिकारक है—

हृदयरोग विशेषज्ञ, नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक डॉ. माइकल ऐस ब्राउन एवं डॉ. जोजेफ ऐल गोल्डस्टाइन का परामर्श है कि हृदयरोग से बचने के लिये मांस तथा अण्डे का सेवन न करें। उनका कथन है कि अमेरिका में पचास प्रतिशत मौंते केवल हृदयरोग के कारण होती हैं। उनके अनुसार अब तक वर्षों से चली आ रही यह धारणा कि बच्चों को अण्डा देने से उन्हें कोई हानि नहीं होती, विपरीत निकली है। भले ही बच्चे ऊपर से हृष्ट–पुष्ट दिखाई दें, किन्तु अन्दर से वे हृदयरोग से ग्रस्त हो जाते हैं।

2.4.1 अण्डा रक्त में रिस्पेटरों को कम करता है—

आधुनिक भौतिक विज्ञान की नवीन खोज के अनुसार, रक्त में पाया जाने वाला पदार्थ लोडेन्सिटी लिपोप्रोटीन (LDL) है जो कोलेस्टोरेल को अपने साथ प्रवाहित करता है। शरीर में यकृत तथा अन्य भागों के सेलों में एक पदार्थ है जिसको रिस्पेटर कहते हैं, जो एल.डी.एल. तथा केलोस्टेरोल को रक्त में विलीन करता है, जिसके फलस्वरूप रक्त प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती। उपर्युक्त इन वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार, जो व्यक्ति मांस या अण्डे खाते हैं, उनके शरीर में रिस्पेटरों की संख्या में कमी हो जाती है। इसकी कमी से रक्त के अन्दर कोलेस्टेरोल की मात्रा अधिक हो जो जाती है, जिससे यह रक्तवाहिनियों में जमना आरम्भ हो जाता है और हृदयरोग आरम्भ हो जाता है।

2.4.2 अण्डों से चर्म रोग—

कोलेस्टेरोल अण्डों में सबसे अधिक मात्रा में पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप चर्मरोग हो जाते हैं। अण्डों से कुछ व्यक्तियों को एलर्जी भी होती है कुछ दिन पूर्व 'इण्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' द्वारा किये सर्वेक्षण से पता चला है कि फल, सब्जियाँ, अण्डे तथा मांस में डी डीटी के अंश पाये जाते हैं। अण्डों में डी. डीटी के अंश अधिक मात्रा में होता है, क्योंकि 'पॉल्ट्री फार्मिंग में मुर्गियों को महामारी से बचाने के लिये डीडीटी आदि दवाईयों के अंश जा जाते हैं। इन दवाईयो का धड़ल्ले से प्रयोग होता है। फलस्वरूप अण्डे खाने वाले व्यक्ति के पेट में दवाईयों के अंश आ जाते हैं। इन दवाईयों के भयंकर परिणाम हो सकते हैं।

2.4.3 अण्डे दुष्पाच्य हैं—

अब तक अण्डों को सुपाच्य समझा जाता था, क्योंकि इनके प्रयोग पशुओं पर किये गये थे। कुछ वैज्ञानिकों ने जब इनका प्रयोग मनुष्यों पर किया तब पाया गया कि अण्डे सुपाच्य नहीं होते, ये दुष्पाच्य होते हैं।

अण्डे आठा डिग्री सेल्सियस से ऊपर के ताप पर खराब होने आरम्भ हो जाते हैं। इनको खराब होने से बचाकर रखने के लिये भारत में इतना नीचा ताप रखना कठिन हैं। विदेशों में भी आजकल अण्डे न खाने का परामर्श दिया जा रहा है।

2.4.4 अण्डों का प्रोटीन शाक प्रोटीन से महंगा—

अण्डा, गेहूँ, दाल, सोयाबीन से प्राप्त होने वाले एक ग्राम प्रोटीन का मूल्य क्रमशः 14, 4, 3, व 2 पैसे तथा सौ कैलोरी पर व्यय क्रमशः 10, 9, 8, व 5 पैसे हैं। इससे स्पष्ट है कि अण्डों की अपेक्षा दालों और अनाज से बहुत कम व्यय में (सस्ता) प्रोटीन और ऊर्जा प्राप्त होती है।

2.4.5 अण्डों से आंतड़ियों में सड़ान—

अण्डों में शक्तिदायक तत्व शर्करा तथा विटामिन सी बिल्कुल नहीं होते और कैल्सियम तथा बी–काम्पलेक्स विटामिन भी नगण्य मात्रा में होते हैं। इन तत्वों की कमी के कारण तथा विषैले तत्वों से युक्त होने के कारण अण्डे आंतड़ियों में सड़ान (Putrafaction) उत्पन्न कर कई रोगों को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त दूध की तुलना में अण्डे आसानी से नहीं पचते हैं।

2.4.6 अण्डों से अनेक रोग—

आज विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि मांस की भांति अण्डा मनुष्य के शरीर के अनुकूल नहीं है, क्योंकि इनसे शरीर में अनेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। अण्डे खाने से रक्त में कोलेस्टेरोल की मात्रा बहुत बढ़ जाती है, जिससे पित्ताशय में पथरी (stone) हो जाती है। इससे दिल का दौरा पड़ने लगता है। इनके सेवन से त्वचा कठोर हो जाती है। इनसे रक्त अशुद्ध हो जाता है। शरीर में यह उत्तेजना बढ़ाता है। इनसे सात्विक बुद्धि नष्ट हो जाती है इनके सेवन से शरीर में से दुर्गन्ध आने लगती है। इनसे रक्त दाब (blood Pressure) बढ़ जाता है। इनसे दाँत, गुर्दों के अनेक रोग हो जाते हैं। इनसे कैन्सर (Colon Cancer) हो जाता है। इनसे दाँत शीघ्र रोगग्रस्त हो जाते हैं। इनसे पाचन क्रिया विकृत हो जाती है। इनसे श्वास की गति व हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। इनसे मस्तिष्क में अशान्ति बढ़ जाती है। इनसे अतिनिद्रा का रोग हो जाता है और शरीर थका–थका सा रहता है। इनसे मनुष्य निर्दयी तथा हिंसक बन जाता है।

मांस की भाँति, अण्डों से शरीर में अनपेक्षित मौन–विचार उत्पन्न होते हैं और मन में विक्षेप और क्रोध का आविर्भाव होता है।

2.5 अण्डा शाकाहारी नहीं होता—

अण्डे दो प्रकार के होते हैं एक वे जिनसे बच्चे निकल सकते हैं तथा दूसरे वे जिनसे बच्चे नहीं निकलते। मुर्गी यदि मुर्गे के संसर्ग में न आए तो भी जवानी में अण्डे दे सकती है। इन अण्डों की तुलना स्त्री के रजःस्राव से की जा सकती है। जिस प्रकार स्त्री के मासिक धर्म होता है, उसी तरह मुर्गी के भी यह धर्म अण्डों के रूप में होता है। यह अण्डा मुर्गी की आन्तरिक गन्दगी का परिणाम है। आजकल इन्हीं अण्डों को व्यवसायिक स्वार्थवश लोग अहिंसक, शाकाहारी, वैज आदि भ्रामक नामों से पुकारते हैं किन्तु ये शाकाहारी नहीं होते। ऐसे अण्डों की प्राप्ति भी एक जीव के अन्दर से ही होती है किसी वनस्पति से नहीं। शाकाहारी पदार्थ मिट्टी, सूर्य किरणों व जल वायु से विभिन्न तत्त्व प्राप्त कर उत्पन्न होते हैं, जब कि किसी भी प्रकार के अण्डे ऐसे प्राप्त नहीं होते। दोनों प्रकार के अण्डों की उत्पत्ति मुर्गी से ही होती है व दोनों के रासायनिक तत्व (Chemical Composition) में भी कोई भिन्नता नहीं होती। यदि कोई भेद करना ही हो तो ऐसे अण्डों को अपरिपक्व (Immature), मुर्दा (Dead) या भ्रूण (Still Born) भले ही कह लें किन्तु शाकाहारी कभी नहीं कह सकते।

ऐसे अण्डों को अधिक मात्रा में प्राप्त कर शीघ्र धन प्राप्त करने के लिए मुर्गियों पर कैसे अत्याचार किये जाते हैं? क्या क्रूरता पूर्ण विधि अपनाई जाती है ? और मुर्गियों को धन्धे की दृष्टि से लाभप्रद बनाए रखने के लिए उनसे कैसे त्रासदायी वातावरण में अण्डे दिलाए जाते हैं और वह त्रासदाई वातावरण जो मुर्गी से अण्डे में कैद होकर खाने वाले के उदर में उतरकर उसके खून में घुल मिल जाता है, वह इस प्रकार है।

मुर्गियां जो अण्डे देती हैं वे सब अपनी स्वेच्छा से या स्वभावतया नहीं देती बल्कि उन्हें विशिष्ट हार्मोन्स और एग–फॅर्म्युलेशन के इन्जेक्शन दिये जाते हैं। इन इन्जेक्शनों के कारण ही मुर्गियाँ लगातार अण्डे दे पाती हैं। अण्डे के बाहर आते ही उसे इंक्यूबेटर (सेटर) में डाल दिया जाता है ताकि उसमें से 21 दिन की जगह 18 दिनों में चूजा बाहर आ जाए।

मुर्गी का बच्चा जैसे ही अण्डे से बाहर निकलता है, नर तथा मादा बच्चों को अलग अलग कर लिया जाता है। मादा बच्चों को शीघ्र जवान करने के लिए एक खास प्रकार की खुराक दी जाती है और उन्हें चौबीस घण्टे तेज प्रकाश में रखकर सोने नहीं दिया जाता ताकि ये दिन–रात खा–खा कर जल्दी ही रजःस्राव करने लगे और अण्डा देने लायक हो जाएँ। अब इन्हें जमीन की जगह तंग पिंजरों में रख दिया जाता है, इन पिंजरों में इतनी अधिक मुर्गियाँ भर दी जाती हैं कि वे पंख भी नहीं फड़फड़ा सकतीं। तंग जगह के कारण आपस में चोचें मारती हैं, जख्मी होती है गुस्सा करती हैं व कष्ट भोगती है। जब मुर्गी अण्डा देती है जो अण्डा जाली में से किनारे पड़कर अलग हो जाता है और उसे अपने अण्डे

सेने की प्राकृतिक भावना से वंचित रखा जाता है ताकि वह अगला अण्डा जल्दी दे। जिंदगी भर पिंजरे में कैद रहने व चल–फिर न सकने के कारण उसकी टाँगें बेकार हो जाती हैं। जब उसकी उपयोगिता घट जाती है तो कत्लखाने भेज दिया जाता है।

इस प्रकार से प्राप्त अण्डे अहिंसक व शाकाहारी कैसे हो सकते हैं ?–

शाकाहारी अण्डे–एक मिथ्या भ्रम—

जिन अण्डों से बच्चे नहीं निकलते, उन्हे पॉल्ट्री फार्मिंग वाले शाकाहारी अण्डे कहकर समाज में एक मिथ्या भ्रम पैदा करते हैं। अण्डे कभी किसी पेड़ पर नहीं लगते, अतः वे शाकाहारी नहीं हो सकते।

तथाकथित शाकाहारी अण्डे क्या हैं?

किसी प्राणी के देह में चार प्रकार के पदार्थ बनते हैं–

(अ) वे जो उसके शरीर का वास्तविक अंग हैं।

(आ) वे जो मल के रूप में और विभिन्न मार्गों से मल–मूत्र के रूप में निकलते हैं।

(इ) वे जो शरीर में रसोल (ऊल्स्दल्) आदि रोग बनने का कारण बनते हैं।

(ई) वे जो माता के शरीर में सन्तान का शरीर निर्माण करते हैं जैसे गर्भ का अण्डा।

निर्जीव अण्डा पहली कोटि में इसलिये नहीं आ सकता, क्योंकि निर्जीव होने से तथा पिता से उत्पन्न न होने के कारण सन्तान का शरीर नहीं है। अब, या तो वह मुर्गी के शरीर का मल है या रोग का अंश है। वस्तुतः जिसे एक शाकाहारी अण्डा कहते हैं वह तो मुर्गी का रजःस्राव होता है, जो गन्दगी से लिप्त होता है। साधारण व्यक्ति शाकाहारी और अशाकाहारी अण्डे में पहचान नहीं कर सकता। तथा कथित शाकाहारी अण्डों के सेवन से भी वे सभी हानियाँ हैं जो अन्य अण्डों के सेवन से होती है।

2.6 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—माँसाहार नैतिक पतन का कारण किस प्रकार है ?

प्रश्न 2—माँसाहारी भोजन के सेवन से उत्पन्न किन्हीं प्रमुख दो रोगों का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 3—अण्डाहार की हानियों का उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न 4—'अण्डा शाकाहारी नहीं होता' स्पष्ट कीजिये ?

पाठ-3 – रात्रि भोजन का त्याग एवं जलगालन

3.1 अन्धेरे में जीवों की अधिक उत्पत्ति होने के कारण रात्रि में भोजन करना या कराना घोर हिंसा है। यह कहना कि बिजली की तेज रोशनी से दिन के समान प्रकाश कर लेने पर रात्रि भोजन में क्या हर्ज है, उचित नहीं। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि (Oxygen) तन्दुरुस्ती को लाभ और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड चूसते हैं (Carbondioxide) हानि पहुँचाने वाली है। वृक्ष दिन में **ऑक्सीजन** छोड़ते हैं, जिसके कारण दिन में वायु–मण्डल शुद्ध रहता है और शुद्ध वायु–मण्डल में किया हुआ भोजन तन्दुरुस्ती बढ़ता है। रात्रि के समय वृक्ष भी कार्बन–डाइ–ऑक्साइड छोड़ते हैं जिसके कारण वायु–मण्डल दूषित होता है। ऐसे वातावरण में भोजन करना शरीर के लिए हानिकारक है। सूरज की रोशनी का स्वभाव सूक्ष्म जन्तुओं को नष्ट करने और नजर न आने वाले जीवों की उत्पत्ति को रोकने का है। दीपक, हण्डे तथा बिजली की तेज रोशनी में भी यह शक्ति नहीं, बल्कि इसके विरुद्ध बिजली का स्वभाव मच्छर आदि जन्तुओं को अपनी तरफ खींचने का है। इसलिए तेज से तेज बनावटी रोशनी में भोजन करना वैज्ञानिक दृष्टि से अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

सूर्य की रोशनी में किया हुआ भोजन जल्दी पच जाता है, आयुर्वेद के अनुसार भी भोजन का समय रात्रि नहीं, बल्कि सुबह और शाम है। रात्रि को तो कबूतर और चिड़िया आदि तिर्यंच भी भोजन नहीं करते। महात्मा बुद्ध ने रात्रि भोजन की मनाही की है।

श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिरजी को नरक जाने के जो चार कारण बताये हैं, रात्रि भोजन उन सबमें प्रथम कारण है। उन्होंने यह भी बताया है कि रात्रि भोजन का त्याग करने से 1 महीने में 15 दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है।

भवन का आधार नींव है, वृक्ष का आधार मूल है, संसारी जीव की स्थिति का आधार भोजन हैं। जैसे नींव एवं मूल के बिना भवन एवं वृक्ष की स्थिति असम्भव है, वैसे ही शुद्ध भोजन के बिना संसारी जीव का अस्तित्व होना असंभव है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक समस्त संसारी जीव देह स्थिति के लिए भोजन करते हैं। चाहे वे पशु हों, पक्षी हों, कीट हों या मनुष्य, प्रकृति में प्रत्येक जीव आहार पर आधारित हैं। भोजन पर मनुष्य का जीवन निर्भर है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान रखते हुए भोजन करना चाहिए। यदि किसी में कुछ विकृतियाँ दृष्टिगोचर हो रही हों तो जान लेना चाहिए कि उस जीव के भोजन में कहीं न कहीं कमी है। विकृति से आकृति का परिचय होता है एवं आकृति से चरित्र का परिचय होता है। उत्तम भोजन श्रेष्ठ चारित्र का भी साधन है। हम प्रतिदिन जिस प्रकार का भोजन करते हैं, उसी प्रकार के हमारे आचार–विचार होते हैं। कहा है–

As you eat, So you think

As you think, So you become.

जैसा भोजन करते हो, वैसे विचार आते हैं, जैसे विचार आते हैं, वैसे चरित्र का निर्माण हो जाता है अर्थात् चरित्र विचार के अनुरूप बन जाता है। इसलिए अपने परिणामों को ठीक रखने के लिए भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक माना गया है। भोजन शुद्धि से स्मृति में ध्रुवता आती है।

वर्तमान काल में मनुष्य अन्न का कीड़ा बना हुआ है। वह प्रातः उठते ही खाना प्रारम्भ कर देता है और सायंकाल पर्यंत पशु के समान चरता रहता है। घर में खाता है, होटल में खाता है, मित्र के यहाँ खाता है, शय्या पर दूध पीते–पीते सो जाता है और उठते समय बैड टी (Bed-Tea) का कप मुँह में लगाकर ही उठता है। खाना मात्र ही जीवन नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि हम हर समय खाते ही रहें। कुछ लोग खाने के लिए ही जीते हैं। ऐसे लोगों का जीवन निरर्थक है। जो जीने के लिए खाता है, धर्माराधना के लिए खाता है। उसी का जीवन सार्थक है, वही जीवन में कुछ कर सकता है।

जैनधर्म एवं महाभारत आदि ग्रंथों में रात्रि–भोजन निषेध पर विशेषरूप से बल दिया है। रात्रि में भोजन नहीं करना

जैनत्त्व का परिचायक है। जो रात में भोजन करता है उसे निशाचर (उल्लू) कहा है क्योंकि निशाचर को छोड़कर प्रायः कोई भी पक्षी रात में भोजन नहीं करता है। यदि कोई जैन जाति में उत्पन्न होकर रात्रि में भोजन करता है तो आप ही निर्णय कीजिए कि ऐसा व्यक्ति मानव है या मानवरूप में निशाचर (उल्लू) है। रात्रि में भोजन करने वालों को साक्षात् माँस–भक्षी कहा जाता है, क्योंकि रात्रि में अत्यन्त सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति होती है, वे सूक्ष्मत्व के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते। अतः–

जिनेन्द्र देव के अनुयायी भक्तों को कदापि रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए। यदि कोई जिनेन्द्र भगवान् की वाणी का उल्लंघन करके रात्रि भोजन करता है, वह इहलोक में नाना प्रकार के रोगों से उत्पन्न दुःखों को भोगता है एवं परभव में जाकर विविध यातनाओं को सहता है। अधिक कहने से क्या लाभ, वह जीव दीर्घकाल तक संसार में भ्रमण करता है।

प्राचीन ऋषि–महर्षियों के ग्रंथों का अध्ययन कर रात्रि भोजन निषिद्ध बताया है तथा वर्तमान में भी वैज्ञानिक एवं वैद्यजन सूर्यास्त होने से पूर्व भोजन करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि सूर्यास्त के बाद किया हुआ भोजन ठीक प्रकार से पच नहीं पाता है पर्याप्त पाचन के अभाव में पेट में दर्द उठता है, आलस्य आता है, बुद्धि मन्द होती है एवं मानसिक रोग बढ़ते हैं। अतः सूर्यास्त के पूर्व भोजन करके निवृत्त हो जाना चाहिए।

3.2 दिवा भोजन से लाभ—

(1) दिन में भोजन करने से पाचन क्रिया ठीक रहती है।

(2) जो रात को पूर्ण रूप से आहार–त्याग करता है, वह अनेक उपवास का फल पाता है। कहा भी है–

ये रात्रौ सर्वथाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते।।

जो रात को सर्वथा–आहार– त्याग करता है, वह बुद्धिमान व्यक्ति एक मास में पन्द्रह दिनों के उपवासों का फल पाता है।

(3) सूर्य–किरणों में विटामिन 'डी' होता है। जो दिन में भोजन करता है, वह विटामिन 'डी' को प्राप्त कर लेता है।

(4) दिवा भोजन से अहिंसा का पालन होता हैं

(5) दिन में वातावरण शुद्ध रहता है। शुद्ध वातावरण में भोजन करने से स्वास्थ्य ठीक रहता है।

3.3 रात्रि भोजन से हानि—

(1) रात्रि में भोजन करने से अनेक जीवों की हिंसा का दोष लगता है।

(2) रात्रि में पर्याप्त मात्रा में प्रकाश न होने के कारण त्रस एवं स्थावर जीवों का घात हो जाता है। इससे निम्न प्रकार के अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(क) भोजन में जूँ आने से जलोदर रोग होता है।

(ख) भोजन में मकड़ी आने से कुष्ठ रोग होता है।

(ग) भोजन में मक्खी आने से हैजा होता है।

(घ) भोजन में चींटी आने से पित्त निकलता है।

(ङ) भोजन में छिपकली आने से मृत्यु हो जाती हैं

(च) भोजन में केश आने से स्वर–भंग होता है।

कुछ लोग यह कुतर्क देते हैं कि यदि भोजन प्रकाश में ही करना हो तो ट्यूब लाईट (Tube Light) का प्रकाश या मर्करी लाईट (Mercury Light) में भोजन कर सकते हैं। तो प्रश्न यह उठता है कि क्या वे सहस्रों ट्यूब लाईट लगाकर

सूर्य जैसा स्वाभाविक प्रकाश पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर सकते हैं ? अर्थात् नहीं कर सकते हैं। दिन में भोजन करने से जिस हिंसा से बचा जा सकता है उसी हिंसा से बचने के लिए रात में करोड़ों दीपक जलाकर भोजन करने से नहीं बचा जा सकता है। हम जानते हैं कि रात्रि में जलते हुए दीपक के चारों ओर असंख्यात जीव संचार करते रहते हैं। जो हिंसा से बचना चाहते हैं, उन्हें रात्रि भोजन का त्याग कर देना चाहिए। आहार भी चार प्रकार के हैं–

(1) अन्न (दाल, रोटी)

(2) पान (पीने योग्य दूध आदि)

(3) खाद्य (पेड़ा, बर्फी आदि)

(4) स्वाद्य (चाटने योग्य–चटनी, रबड़ी आदि)

जो अपने को जैन बताता है उसे रात्रि को इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करना आवश्यक है। रात्रि भोजन न करने से जैनत्त्व की पहचान होती है इसलिए दिन में भोजन करके प्रत्येक जैनी को अपने जैनत्त्व की रक्षा करनी चाहिए। कहा है–

दिवसस्य मुखे चान्ने, मुक्त्वा द्वे द्वे सुधार्मिकैः।
घटिके भोजनं कार्यं श्रावकाचार चंचुभिः।।

सुधी धार्मिक को सूर्योदय के पश्चात् एवं सूर्यास्त के पूर्व दो दो घड़ी (एक घड़ी = 24 मिनट) को छोड़कर भोजन करना चाहिए।

जैनाचार्यों एवं विद्वानों ने स्पष्टतः घोषणा की है कि यदि माँसाहार तथा उससे उत्पन्न भयंकरतम बीमारियों से बचना चाहते हो तो दिवा भोजन आवश्यक है। निशि भोजन त्याज्य है। आयुर्वेद विशेषज्ञों का कथन है कि हमारे द्वारा उपयोग किये गये भोजन को पूर्णरूप से पचने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त होना चाहिए अन्यथा वह उपयोगी की अपेक्षा अनुपयोगी सिद्ध होगा। अतएव भोजन को सूर्यास्त से दो घड़ी पूर्व करने की सलाह दी गई है। वर्तमान में उदर सम्बन्धी रोगों का अधिक प्रकोप है। सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हुआ है कि ये सब बीमारियाँ अशुद्ध एवं निशि भोजन की देन हैं। जहाँ एक ओर गैस या उदरशूल से पीड़ित लोग बढ़ रहे हैं वहीं दूसरी ओर दिन–रात समाचार पत्र उन समाचारों को प्रकाशित कर रहे हैं जिनमें ऐसे लोगों के कथानक दिये रहते हैं जिन्होंने रात्रि भोजन तैयार करते हुए विषैले जन्तुओं को भी आहार बनाकर स्वयं को काल के गाल में समर्पित करने का जोखिम उठाया है।

मनुष्य के उदर की बनावट पूर्णतः शाकाहारी है उसमें माँसाहार को पचाने की शक्ति नहीं है। मानव उदर की बनावट को आयुर्वेद शास्त्र में "कमल कोश" की संज्ञा दी है। कमल का मुख सूर्य प्रकाश में ही मुखर रहता है। प्रत्येक शाकाहार पदार्थ पर सूर्य की किरणें उसमें पोषक तत्वों का संचार किया करती हैं। रात्रि में स्वभावतः ठण्डक होती है जिसका निमित्त पाकर अनेक सूक्ष्म जन्तुओं की उत्पत्ति स्वयमेव ही होती रहती है। उसे नष्ट करने की शक्ति सूर्य द्वारा प्रदत्त प्रकाश में निहित है। आज के हजारों वॉट वाले विद्युत बल्ब या ट्यूब लाईट में वह शक्ति नहीं है। एक तथ्य और भी है सूर्य के प्रकाश में वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते हैं और रात्रि में कॉर्बन–डाइ–ऑक्साइड। अतएव दिन में वायुमण्डल में पर्याप्त ऑक्सीजन रहती है जो मनुष्य को श्वांस लेने में और स्वास्थ्यप्रद भोजन में सहायक होती है जबकि कॉर्बन–डाइ–ऑक्साइड के कारण रात को दूषित वातावरण स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं, इसलिए सूर्यास्त के पूर्व ही भोजन करना चाहिए। अल्ट्रा वायलट किरणें भी सूक्ष्म जीवों, कीटाणु आदि को प्रकट नहीं होने देती। अतएव जो छोटे–छोटे अरबों कीटाणु सूर्य के प्रकाश में स्वतः नष्ट हो जाते हैं, रात्रि में भोजन करने वालों के लिए हमेशा हानिकारक सिद्ध होते हैं।

धर्म ग्रंथों में लिखा है–

संध्यायं यक्ष रक्षोभिः सदा भुक्तं कुलो इह।
सर्ववेलातिक्रम्य च रात्रौ भुक्तमभोजनम्।।

अर्थात्–दिन में किसी भी समय भोजन कर लिया जाये, किन्तु रात्रि का समय भोजन का समय नहीं है, वह तो अभोजन का समय है क्योंकि रात में दैत्य (दानव) ही भोजन करते हैं, देव और मानव नहीं। इसी ग्रंथ में लिखा है।

पूर्वान्हे भुञ्जते देवैर्मध्यान्हे ऋषिभिस्तथा।
अपरान्हे च पितृभिः सांयान्हे दैत्य दानवैः।।

अर्थात्–स्वर्गस्थ देवों का भोजन का समय प्रातःकाल है। ऋषिजन मध्यान्ह काल में भोजन करते हैं, पितृजन अपरान्ह काल में। राक्षस और दैत्यजन रात के समय भोजन किया करते हैं। **मनुस्मृति में लिखा है**–रात्रि के समय तो श्राद्ध भी न करें, क्योंकि रात राक्षसी होती है।

यदि निष्पक्षता एवं विज्ञान के आलोक में भी विचार करें तो यह सत्य प्रतीत होता है कि प्रकाश हमें सूर्य से, चन्द्र से, तारा आदि से, बिजली के बल्ब से, गैस जलाने से, मोमबत्ती से एवं और भी कई साधनों से प्राप्त होता है। ये सभी प्रकाश वास्तव में इकाई या तत्त्व (Element) नहीं है। वरन् स्कन्ध या मिश्रण (Mixture) हैं। एक तिकोने काँच या प्रिज्म की सहायता से हम प्रत्येक प्रकाश के अंशों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जब हम सूर्य के प्रकाश की एक किरण को प्रिज्म से गुजारते हैं तो वह नौ अंशों में विभाजित हो जाती है। इन नौ के नौ अंशों को वर्णक्रम (Spectreum) कहते हैं। इन नौ अंशों में बीच के सात अंशों को हम लाल–पीले–नीले–बैंगनी आदि रंग की किरणों के रूप में देख सकते हैं। पर किनारे के दो अंश नहीं देखे जा सकते। इन दोनों के सद्भाव का निर्णय इनकी गर्मी को महसूस करके किया जाता है। लाल रंग की किरणों के बाहर का अंश इंफ्रारेड (Infrared) और बैंगनी किरण के बाहर का अंश पराबैंगनी (Ultra Violet) कहा जाता है। बीच के सात रंगीन किरणों के रंग ठीक वही हैं, जो आकाश में बने इन्द्रधनुष में होते हैं। सब की सब किरणें गरम नहीं हैं।

मनुष्य एवं पशु–पक्षी व पेड़–पौधे जो भोजन करते हैं, उसका पचना पूर्व–कथित दोनों गर्म स्वभाव वाली किरणों पर निर्भर है। सूर्य के प्रकाश को छोड़कर जब अन्य स्रोतों से प्राप्त प्रकाशों का स्पेक्ट्रम बनाते हैं तो हम पाते हैं कि चाँद व तारों के प्रकाश में और ट्यूब लाईट आदि के प्रकाश में पूर्वकथित दोनों गर्म किरणें हैं ही नहीं। कॉर्बन (Carbon) या आर्कलैम्प के प्रकाश में, एक वैल्डिंग के प्रकाश में वे किरणें बहुत कम शक्ति की रहती हैं। कम शक्ति की इम्फ्रारेड और अल्ट्रा वायलेट भोजन पचाने में सहायक नहीं हो सकती।

प्रकाश के परावर्तन (Reflection of Light) के कारण यह पाया गया है कि सूर्य अपने उदयकाल से एक मुहूर्त (48 मिनट) पहले दिखने लग जाता है और वास्तविक अस्तकाल के एक मुहूर्त पश्चात् भी दिखता रहता है। अतः यह सिद्ध है कि उपर्युक्त दोनों गर्म किरणें सूर्य उदय के 48 मिनट पश्चात् पृथ्वी पर आती हैं और सूर्यास्त के 48 मिनट पहले ही पृथ्वी पर आना बन्द हो जाती हैं। इन कारणों से प्रत्येक जीव को दिन में ही खाना खा लेना चाहिए। सूर्योदय के 48 मिनट पश्चात् और सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व ही खाना खा लेना चाहिए। ऐसा करने से भोजन का पूर्णरूप से पाचन (Digestion) होगा और शरीर पुष्ट होगा।

वैष्णव विद्वान सूर्यग्रहण के काल में भोजन का निषेध करते हैं। इसका वैज्ञानिक पहलू यही है कि सूर्यग्रहण के समय किसी भी गरम किरणों की प्राप्ति नहीं होती। अतः हमारा हित इसी में है कि हम केवल सूर्य के सद्भाव में ही भोजन करें। कोई भी कहे कि बल्ब आदि के अत्यधिक प्रकाश में जीव का घात नहीं होता, सो रात को तेज रोशनी में भोजन कर लेना चाहिए। परीक्षण से पाया गया है कि कितने ही कीट–पतंगे ऐसे हैं, जो सूर्य के प्रकाश में सक्रिय नहीं होते। सूर्यास्त होने पर यह सक्रिय हो जाते हैं। रात में भोजन करने पर ये कीट–पतंग भोजन में गिरकर स्वयं मरते हैं और हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं।

3.4 सूर्य, प्रकृति और भोजन—

सूर्य प्रकाश में अल्ट्रावायलेट किरणें एवं इन्फ्रारेड अदृश्य किरणें होती हैं जो वातावरण को सूक्ष्म जीवाणु रहित बनाती हैं।

दिन में ऑक्सीजन की उपलब्धता (अवशोषण) अधिक होती है।

सूर्य प्रकाश में विटामिन डी का निर्माण होता है।

सूर्य प्रकाश में भोजन के चयापचय प्रक्रिया में वृद्धि होती है।

दिवा भोजन से खनिज पदार्थों के संश्लेषण में वृद्धि होती है।

सूर्य प्रकाश में रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।

सूर्य और विद्युत प्रकाश में अंतर–कई लोगों के मन में प्रश्न होता है कि बिजली या दीपक के प्रकाश में भोजन बनाया और खाया जाए तो क्या अंतर पड़ता है ? इसका समाधान यह है कि बिजली या दीपक का प्रकाश कितना भी तेज क्यों न हो उसमें भोज्य पदार्थ अच्छी तरह से देखने में नहीं आते और इस कृत्रिम प्रकाश में सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति उसी रंग की होती है जिस रंग के खाद्य पदार्थ होते हैं। उस प्रकाश में ऐसी शक्ति नहीं होती जिससे वे उन जीवों की उत्पत्ति को रोक सकें परन्तु सूर्य प्रकाश में ऐसी शक्ति होती है जिससे उन जीवों की उत्पत्ति नहीं हो पाती है।

रात्रि में दीपक या बिजली का प्रकाश होते ही चारों ओर कीड़े–मकोड़े मंडराने लगते हैं, जो गाड़ी चलाते हैं उन्होंने देखा होगा कि सूर्य अस्त होते ही शरीर पर अनेक कीड़े चिपक जाते हैं और गाड़ी के सामने आ जाते हैं जबकि सूर्य प्रकाश में कीड़े नहीं आते। ये बड़े–बड़े जीव–जन्तु हमें दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु सूक्ष्म जीवाणु दृष्टिगोचर नहीं होते। रात्रि के समय कृत्रिम प्रकाश में अपनी सावधानी से वे कीड़े–मकोड़े भोजन में भले ही न गिरें या गिरने के बाद दिखाई न दें परन्तु सूक्ष्म जीवोत्पत्ति और उनकी हिंसा से कोई बच नहीं सकता इसलिए जैनाचार्यों ने अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए रात्रि भोजन त्याज्य बताया है।

सूर्य प्रकाश और विद्युत आदि प्रकाश में जो विशेष अंतर है वह यह है कि दिन में सूर्य का प्रकाश एक लाख लक्स के बराबर होता है और बादल छाये रहने पर भी दस हजार लक्स तो होता ही है। जबकि घरों में रात्रि के समय कृत्रिम प्रकाश सामान्यतः 200 से 500 लक्स तक होता है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि प्रकाश से हमारी ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। जैसे अंधेरे में पिनियल ग्रंथि में से सूर्यास्त होने पर अंधेरा होते ही मैलाटोनिन नामक द्रव्य निकलकर रक्त प्रवाह में मिलता है जिससे शरीर सोने के लिए तैयार होता है। रक्तचाप एवं शरीर का ताप कम होता है, पित्त शांत एवं वायु में वृद्धि होती है। उन्हीं रासायनिक परिवर्तनों के कारण रात्रि में अचेत और दिन में सचेत रहते हैं क्योंकि दिन निकलते ही मैलाटोनिन द्रव्य का श्राव बन्द हो जाता है शयन से उसकी मात्रा कम हो जाती है। यदि कोई कृत्रिम प्रकाश द्वारा इस द्रव को धोखा देना चाहे तो असंभव है क्योंकि इसको प्रभावित करने के लिए कम से कम एक हजार लक्स प्रकाश की आवश्यकता होती है। जबकि कृत्रिम प्रकाश दो सौ से पांच सौ लक्स तक ही उपलब्ध होता है।

यदि आप रात में भोजन करते हैं और शयन नहीं करते तो इसके दूरगामी परिणाम विपरीत पड़ते हैं। जैसे पाचन एवं रोग प्रतिरोध क्षमता में कमी, दिन में आलस्य, आँखों में जलन, कैंसर, हृदय रोग, मानसिक असंतुलन और अकाल में वृद्धावस्था जैसे अनेक रोगों में वृद्धि होती है। पुराने समय में लोग दिन में काम और रात में आराम करते थे। इसलिए मनुष्य एवं प्रकृति में अच्छा तालमेल था परन्तु आधुनिक युग में प्रकृति के साथ तालमेल बिगड़ गया है। परिणाम स्वरूप जिन्दगी रोगमय, तनाव युक्त और बोझिल बन गई है। इनसे मुक्त होने का सीधा सरल उपाय है रात्रि भोजन,

डिब्बा बंद भोजन, गुटखा, पान–सुपाड़ी, चाकलेट, शराब, तम्बाखू, स्मेक आदि का त्याग, संयम और प्रकृति के नियमानुसार आध्यात्मिक जीवन जीना।

3.5 रात्रि भोजन बन्द करने के उपाय—

1. रात्रि भोजन के दुष्प्रभावों का सही सही ज्ञान प्राप्त करना और उसके, कुप्रभावों को जानकर प्रचार प्रसार करना।

2. रात्रि में सामूहिक भोजन का प्रचलन बन्द करना।

3. पाठशालाओं, कार्यालयों, कारखानों और दुकानों आदि को सायं 5.00 से 7.00 बजे के बीच भोजनावकाश के लिए बन्द रखना।

4. स्कूलों में बच्चों के पाठ्यक्रमों में रात्रि भोजन के दुष्प्रभावों की जानकारी हेतु इन्द्रिय व मन पर नियन्त्रण करना।

5. आवश्यकताओं को कम करते हुए इन्द्रिय व मन पर नियन्त्रण करना।

6. बढ़ते हुए नाश्ते का प्रचलन बन्द कर प्रातः 9–10 के बीच भोजन करना। जिससे शाम 5–6 बजे स्वतः भूख लगेगी।

7. धर्म, धर्मात्मा और धर्मशास्त्रों पर सच्ची श्रद्धा रखते हुए परमार्थ की ओर अग्रसर होना।

8. रात्रि भोजन न करने का दृढ़ संकल्प लेना।

3.6 निष्कर्ष—

दुनिया के प्रत्येक देश में, प्रत्येक गाँव में और प्रत्येक घर में बीमार लोग मिलेंगे। बीमारी के अनेक कारण हैं उनमें कुछ प्रमुख कारण जैसे भोजन का ठीक ढंग से पाचन नहीं होना, पेट में मल का रुकना अर्थात् कब्जियत बनी रहना, भूख से अधिक भोजन करना, मल–मूत्र के वेग को रोकना, आवश्यकतानुसार शुद्ध हवा, पानी, धूप नहीं मिलना, प्रदूषित वातावरण में रहना, वंशानुक्रम से जीवाणुओं का आना, प्रकृति विरूद्ध भोजन करना इत्यादि। ये सभी कारण रात्रि भोजन करने से घटित होते हैं अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से भी रात्रि भोजन त्याग आवश्यक है।

दुनिया के सभी दर्शनों में रात्रि भोजन को हानिकारक बताकर त्यागने योग्य स्वीकार किया है अतः दार्शनिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन करना अनुचित है।

रात–दिन जब जैसा वैसा भोजन करते रहने से शरीर में धातु, उपधातु और अनावश्यक कोशिकाओं की वृद्धि होती है और इन्द्रियाँ विषय वासना की ओर जाती हैं, शरीर रोगी बन जाता है और व्यक्ति धार्मिक आस्था और अध्यात्म से पलायन करने लगता है अतः आध्यात्मिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन अहितकर है।

रात्रि भोजन बनाने, बनवाने, करने व कराने से जीवों का प्रत्यक्ष घात होता है साथ ही साथ भोजन के प्रति तीव्र राग होने से रात–दिन आहार की भावना होती है, तीव्र राग निश्चय ही हिंसा है और हिंसा अधर्म है अतः धार्मिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन अहितकर है।

रात्रि में ही अधिकांश अन्याय–अत्याचार होते हैं। भूत–पिशाच और क्रूर हिंसक प्राणी विचरण करते हैं, जो सामाजिक भय, अशांति और विसंगतियाँ उत्पन्न करते हैं। अतः सामाजिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन की प्रवृत्ति अनुचित है।

जिन परिवारों में रात्रि भोजन होता है उनमें महिला वर्ग भोजन बनाने, खिलाने, पिलाने और बर्तन सफाई आदि की क्रियाओं में व्यस्त रहती हैं, जिससे उन्हें परिवार–वालों के साथ आमोद–प्रमोद और बच्चों को संस्कारित करने का समय नहीं मिल पाता। अतः पारिवारिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन ठीक नहीं है।

रात–दिन भोजन करने से एंजाइम प्रणाली निष्क्रिय हो जाती है, जिससे शरीर की त्वचा, हड्डी, हृदय, स्नायु, किडनी, खून, मस्तिष्क और ग्रंथियों सहित शरीर के समस्त अंङ्गोपाङ्ग पर घातक प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिकों ने भी यही सिद्ध किया है अतः शारीरिक और वैज्ञानिक दृष्टि से रात्रि भोजन हानिकारक है।

3.7 जलगालन विधि—

रात्रि भोजन का त्याग और पानी छानकर पीने का अन्योन्य सम्बन्ध है। जल गालन विधि (पानी छानने की विधि) का भी वर्णन किया जा रहा है।

जल गालन/पानी छानने (Filteration of Water) को लेकर जैन आचार संहिता में जिस विधि (पद्धति) का विकास हुआ है, वह इसलिए तर्कसंगत है कि वह मात्र एक स्थूल आचार नहीं है, वरन् जैन चिन्तवन का एक दृढ़ आधार है। वस्तुतः जिन सिद्धान्तों को हम मानते हैं यदि उन्हें जीवन की साधारणताओं में वितरित करके देखते हैं किन्तु जानते नहीं हैं तो उन्हें निरर्थक समझना चाहिए।

पानी कैसे छाना जाए ? छन्ना कितना बड़ा हो ? जल में कितने किस प्रकार के जीव हो सकते हैं ? प्रासुक जल और छने हुए जल की मर्यादा क्या है ? इत्यादि कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर विस्तार से चिन्तवन किया जाना चाहिए।

जैनधर्म अनादिकाल से कहता चला आया है कि वनस्पति, जल, अग्नि, वायु व पृथ्वी एक–इन्द्रिय स्थावर जीव हैं परन्तु संसार न मानता था। डॉ. जगदीश चन्द्र बोस ने वनस्पति को वैज्ञानिक रूप से जीव सिद्ध कर दिया तो संसार को जैनधर्म की सच्चाई का पता चला। इसी प्रकार जल को जीव मानने से इन्कार किया जाता रहा तो कैप्टिन स्ववोर्सवी ने वैज्ञानिक खोज से पता लगाया कि पानी की एक छोटी सी बूँद में 36450 सूक्ष्म जन्तु होते हैं। यदि छानकर पानी न पिया जावे तो यह सब जन्तु शरीर में पहुँच जायेंगे।

36 अँगुल चौड़े, 48 अँगुल लम्बे, मजबूत, मलरहित, गाढ़े, दुहरे, शुद्ध खद्दर के वस्त्र से जो कहीं से फटा न हो, पानी छानना उचित है। यदि बर्तन का मुख अधिक चौड़ा है तो उस बर्तन के मुँह से तीन गुणा दुहरे वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए और छने हुए पानी से उस छलने को धोकर उस धोवन को उसी बावड़ी या कुएँ में गिरा देना चाहिए, जहाँ से पानी लिया गया हो। यह कहना कि नल का पानी जाली से छन कर आता है, उचित नहीं। क्योंकि जाली के छेद सीधे होने के कारण छोटे सूक्ष्म जीव उन छेदों में से आसानी से पार हो जाते हैं। यह समझना भी ठीक नहीं है–

"म्युनिसिपैलिटी फिल्टर से शुद्ध पानी भरती है। इसलिए टंकी के पानी को छानने से क्या लाभ ?" एक बार छने हुए पानी में 48 मिनट के बाद फिर जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए जीव हिंसा से बचने तथा अपने स्वास्थ्य के लिए छने हुए पानी को भी यदि वह 48 मिनट से अधिक काल का है, ऊपर लिखी हुई विधि के साथ दोबारा छानना उचित है।

इसके अतिरिक्त ज्ञान का हमें ठीक–ठीक विवेकयुक्त होकर उपयोग करना चाहिए। कुतर्क कोई भी कर सकता है, किन्तु एक तर्क संगत तथ्य को जीवन में प्रकट करना कठिन होता है। रात्रि भोजन न करना, पानी छानकर पीना हमारी करुणा की आकृतियाँ हैं। जैनों की करुणा कभी शाब्दिक नहीं रही, अपितु वह जीवन में जहाँ–तहाँ प्रकट हुई है, उसके रेशे–रेशे और रग–रग में समा गई है।

प्रासुक जल से आशय जीव रहित जल से है। वर्षा का जल प्रासुक माना गया है। छने जल की मर्यादा 48 मिनट की होती है। लौंग आदि से सुरक्षित करने पर मर्यादा छः घण्टे तथा गरम जल की मर्यादा 24 घण्टे मानी गयी है। वैज्ञानिक भी उबले हुए जल को ठण्डा करके पीना ही स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर कहते हैं। निश्चित अवधि के बाद जल भी विकृत हो जाता है, जल का रंग श्वेत माना गया है। रंग से भी जल के पेय–अपेय होने का निर्णय लिया जाता है। पानी को उसकी संपूर्ण स्वाभाविकता में ही ग्रहण किया जाना चाहिए।

जैन जलगालन विधि एवं रात्रि भोजन निषेध में स्वास्थ्य रक्षा स्वच्छता तो है ही, इसके साथ एक जीवन शैली भी

है। अहिंसक जीवन शैली जब हम चलें, उठें, बैठें, खायें, पियें, सोयें, जागें तब भी हमारे इन कार्यों में प्रकट होनी चाहिए।

जब हम जल गालन करते हैं तो उसमें हमारा ध्यान स्वयं को बचाने की ओर नहीं है, बल्कि जीव रक्षा की ओर है, वह उतना अंश भी समग्र जैन दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। जब किसी जल प्रदाय से छना हुआ जल दिया जाता है, तब वहाँ दृष्टि इस बात पर नहीं कि मनुष्य के अतिरिक्त कोई और जीवन बच रहा है या नहीं, वहाँ ध्यान केवल नागरिकों पर है, किन्तु जब कोई जैन पानी छान कर पी रहा है, भले ही उसका यह प्रयत्न एक सूती छलने के द्वारा किया जा रहा है, तब भी उसकी दृष्टि जहाँ तक संभव हो, संसार के जीव मात्र की रक्षा की है। वह नहीं चाहता कि–उसके चलने, उठने, किसी वस्तु को उठाने, रखने इत्यादि में प्रमाद के कारण किसी प्राणी को कष्ट पहुँचे या वह मारा जाये, इसलिए जो भी सावधानी वह प्रयुक्त कर सकता है, करता है।

एक आदमी जो जूता पहनकर चल रहा है और दूसरा व्यक्ति जो नंगे पाँव अपनी सुकुमार पगतली को सावधानी से रखकर चल रहा है, दोनों में फर्क है। पहला आदमी चल रहा है, किन्तु उसका ध्यान दूसरे जीवों के प्रति नहीं है, यदि कोई चींटी, कीड़ा, केचुँआ आदि उसके जूते के नीचे आता है तो उसकी चिन्ता उसे नहीं है। किन्तु वह व्यक्ति जो कंकरीली धरती पर नंगे पाँव चल रहा है प्राणीमात्र की रक्षा करना चाहता है। न किसी के प्राण लेना चाहता है और न ही किसी को कष्ट पहुँचाना चाहता है। सच तो यह है, महत्व इस बात का है कि आप क्या कर रहे हैं ? उसका नहीं–कि आप वैसा क्यों कर रहे हैं ? अभिप्राय यह है कि पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन न करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है, ठीक है, किन्तु जिस जीवन शैली के दर्शन को स्वीकार किया गया है, उससे इसका कितना तालमेल है, यह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जैनाचरण केवल वैज्ञानिक, स्वास्थ्य विज्ञान और स्वच्छता शास्त्र के ही अनुरूप नहीं है अपितु जीवनाचार से समन्वित एक अपरिहार्य एवं जीवन अंश है। वास्तव में आज एक 'केन्द्रीय जैन खाद्य प्रयोगशाला' की आवश्यकता है जो समय–समय पर आहार सम्बन्धी जानकारी देती रहे तथा आगमोक्त निष्कर्षों को पुष्ट करने की जिम्मेदारी भी उठाये। यदि ऐसा हो जाता है तो न केवल जैनों के आहार विज्ञान की एक स्पष्ट छाया (Image) निर्मित होगी, अपितु सामाजिक स्वास्थ्य क्षेत्र में भी एक उल्लेखनीय कदम होगा।

3.8 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—रात्रि भोजन से क्या हानियाँ हैं ?

प्रश्न 2—दिन में भोजन करने से क्या लाभ है ?

प्रश्न 3—वैज्ञानिकों के अनुसार पानी की एक बूंद में कितने सूक्ष्म जन्तू होते हैं ?

प्रश्न 4—जैनागम के अनुसार जल छानने की सही विधि का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 5—प्रासुक जल से क्या अभिप्राय है इसकी मर्यादा कितनी है ?

पाठ-4 – परिवार नियोजन करें-गर्भस्थ शिशु हत्या नहीं

4.1 आज की परिस्थिति में परिवार नियोजन की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। यह हमारी राष्ट्रीय नीति का एक अंग है और हर राष्ट्रभक्त नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्र और अपने परिवार की खुशहाली के लिए अपना परिवार सीमित रखे।

परिवार नियोजन के लिए सरकारी प्रचार तंत्र से आज देश के कोने–कोने में अनेकों उपाय जैसे 'निरोध', 'कॉपर टी', खाने की गोलियाँ 'माला डी' आदि बताए जाते हैं व कुछ ऐसे छोटे–छोटे ऑपरेशन भी न केवल बताए जाते हैं अपितु निःशुल्क किए भी जाते हैं जिनसे फिर गर्भाधान हो ही नहीं पाता। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी चिकित्सा पद्धतियों में भी गर्भ निरोध के लिए कुछ औषधियाँ बताई गई हैं। प्राचीन मान्यतानुसार रजोदर्शन के चौथे दिन से सोलहँवे दिन तक ही गर्भाधान हो पाता है, अन्य तिथियों में नहीं होता। अतः इनमें से जिसको जो उचित लगे वह उपाय अपना कर ऐसा प्रयत्न करें कि गर्भाधान होवे ही नहीं किन्तु यदि किसी कारण से गर्भाधान हो जाता है। तो उसका गर्भपात (Abortion) कराना सर्वथा अनुचित, घ्रणित, क्रूर, हिंसक, निन्दनीय व अमानवीय कार्य है क्योंकि गर्भपात किसी भी समय कराया जाए उसमें हर अवस्था में एक निर्दोष जीवित प्राणी की जानबूझ कर नृशंस हत्या होती ही है।

हमारे शास्त्रों में विवाह संस्कार की ही भाँति सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से संभोग को भी पवित्र गर्भाधान संस्कार कहा गया है व केवल सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से ही सम्भोग को उचित माना है। दूसरे अर्थों में संभोग को नियन्त्रित व सीमित करके परिवार नियोजन सुझाया गया है। किन्तु आज की स्थिति में जब संयम व ब्रह्मचर्य की बात करना कठिन व हास्यास्पद बन गयी है व सन्तान को जब वासनापूर्ति के प्रतिफल में प्राप्त हो जाने वाली अनिच्छित, अनावश्यक वस्तु (By-Product) माना जाने लगा है, तब ऊपर लिखे किसी भी आधुनिक परिवार नियोजन के साधन को अपना कर अपना परिवार सीमित रखें। किन्तु फिर भी यदि किसी भूल के कारण गर्भाधान हो जाता है तो फिर गर्भपात (Abortion) कराकर किसी दूसरे निर्दोष जीवित शिशु की हत्या कराने की दूसरी भूल तो न करें। यदि स्वयं में या अपने परिवार में भूल से उत्पन्न हो गई सन्तान को पालने का सामर्थ्य नहीं हो, तो उसे किसी निःसन्तान सद्गृहस्थ को दे दें किन्तु अपनी सन्तान की स्वयं हत्या करने की महाभूल व जघन्य पाप न करें।

4.2 हर एबोर्शन (गर्भपात) में हत्या अनिवार्य है–

आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि पुरुष के (Sperm) शुक्राणु का स्त्री के (Egg) डिंब से मेल होते ही एक नए जीव का जीवन प्रारम्भ हो जाता है। इनविटरो फर्टिलाइजेशन (Invitro fertilization) के तरीके से जो विश्व के अनेक भागों में हजार से भी अधिक बार दोहराया जा चुका है, यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि गर्भाधान के समय ही एक ऐसा भिन्न व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाता है जिसमें अनेक वर्षों तक प्रगति करने की क्षमता होती है। उस व्यक्तित्व की ऊँचाई, बौद्धिक स्तर, चलने की रीति, रक्त की जाति (Blood Group) आदि भी तभी निश्चित हो जाती हैं। इस प्रथम क्षण से ही उस जीव की विकास यात्रा प्रारम्भ हो जाती है जो एक निश्चित कार्यक्रमानुसार निरन्तर चलती रहती है। उसका जीवन माँ के जीवन से पृथक् होता है और वह जीवित प्राणी माँ से अलग अपनी निरन्तर प्रगति करता रहता है।

वह जीवित प्राणी प्रथम नौ माह तक अपनी माँ की कोख वाले निवास में रहकर प्रगति करता है और जब उसकी उत्तरोत्तर प्रगति के लिए वह निवास छोटा पड़ने लगता है तब वह माँ की कोख से बाहर आकर दूसरे बड़े निवास, संसार में आगे प्रगति करता है। शिशु का जन्म लेना तो उस नौ माह की आयु वाले प्राणी का निवास स्थान परिवर्तन करना मात्र है। जन्म लेना उस प्राणी की आयु की प्रथम तिथि नहीं, अपितु उसके माँ की कोख से बाहर संसार में आने की तिथि, जन्म लेने की तिथि (Date of Birth) है। जन्म लेने के दिन तो उसकी आयु नौ माह हो चुकी होती है। जैसे हम परिवार का आकार बढ़ने पर अपना छोटा निवास स्थान त्याग कर बड़े निवास में रहने लगते हैं उसी प्रकार शिशु माँ की कोख वाले छोटे निवास को त्याग कर बाहर की दुनिया के बड़े निवास स्थान में रहने को आ जाता है। हत्या चाहे छोटे निवास

स्थान में की जाए, चाहे बड़े निवास में हत्या तो समानरूप से हत्या ही है। जन्म के नौ माह पूर्व गर्भाधान के क्षण भी वह वही जीवित प्राणी था जो जन्म के बाद। जब भी उसमें उतनी ही जान थी जितनी जन्म लेने के बाद।

चाहे कोई जीव प्रगति की प्रारम्भिक अवस्था में हो अथवा अन्तिम में, चाहे वह गर्भ के अन्दर वाले निवास में हो अथवा बाहर वाले निवास में, प्रत्येक अवस्था में हत्या तो समानरूप से हत्या ही है। गर्भपात (Abortion), गर्भाधान के बाद चाहे जितनी भी जल्दी कराया जाए, उसमें एक जीवित शिशु की हत्या अनिवार्य है। जब तक माँ को अपने गर्भवती होने का आभास होता है तब तक तो उसकी कोख में पल रहे बच्चे का दिल धड़क रहा होता है, मस्तिष्क विकसित हो जाता है और वह अपने हाथ पांव हिलाने व प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगता है।

अपने ही लहू से बने, अपने ऐसे जीते जागते व दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक शिशु को गर्भपात द्वारा कटवा कर टुकड़े–टुकड़े करा कर निर्मम हत्या करवाने वाले माँ, बाप, सम्बन्धी व ऐसे जघन्य कार्य के लिए प्रेरित करने वाले इन्सानों को केवल अपराधी या पापी कहना बहुत न्यून है। धर्मशास्त्रों ने तो पंचेन्द्रिय वध को नरक गति का कारण कहा है व गर्भ हत्यारिणी स्त्री की नज़रों के सामने भोजन करने तक को मना किया है।

जैनधर्म की मान्यतानुसार तो गर्भपात होने पर भी उसी प्रकार सूतक मानने का विधान है जैसे एक पूर्ण आयु के व्यक्ति की मृत्यु पर होता है। सूतक की अवधि, जितने माह का गर्भपात हो उतने ही दिन का सूतक मानने का विधान है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय सुनाते हुए वेदों का उदाहरण देते हुए कहा कि किसी का जीवन लेना केवल अपराध ही नहीं अपितु पाप भी है। महान न्यायाधीशों ने यह भी कहा कि (Foetus is regarded as a ``human life'' from the moment of Fertilization) गर्भाधान के समय से ही भ्रूण को एक मानव जीवन माना जाता है। महात्मा गाँधी के कथन को दोहराते हुए उन्होंने कहा (``God alone can take life because he alone gives it'') जीवन केवल भगवान ही ले सकता है क्योंकि केवल एक वही जीवन देने वाला है।

हर छोटे बड़े प्राणी को जीने का पूर्ण अधिकार है। किसी का जीवन नष्ट करने का अधिकार किसी को भी नहीं है और न ही किसी माँ बाप को अपनी जीती जागती सन्तान की हत्या करवाने की छूट विश्व के किसी भी धर्म ने प्रदान की है। अतः भ्रूण हत्या (एबोर्शन) जैसे नृशंस, अमानवीय व हिंसक कार्य को जो सम्पूर्ण मानव जाति पर एक कलंक है, उसे न केवल स्वयं त्यागना, अपितु उसे पूर्णरूप से रोकने के लिए भरसक प्रयत्न करना भी हम सब मानवों का प्रथम कर्तव्य है।

4.3 एबोर्शन अर्थात् सुनियोजित भ्रूण हत्या की विधियाँ—

एबोर्शन यानि गर्भपात कराने को अधिकांश व्यक्ति एक साधारण सी ऐसी शल्य क्रिया मानते हैं जैसे कि शरीर में हुई एक रसौली अथवा पथरी को निकलवा देना। यह धारणा बिलकुल गलत है। अबोर्शन तो एक जीते जागते निर्दोष प्राणी की सुनियोजित नृशंस हत्या है। गर्भ में जीव का अस्तित्व तो गर्भाधान के क्षण से ही हो जाता है और जब तक माँ को यह पता लगता है कि वह गर्भवती है तब तक उसकी कोख के शिशु के प्रायः सब अंग बन चुके होते हैं, मस्तिष्क विकसित हो चुका होता है, दिल धड़कना प्रारम्भ कर चुका होता है अर्थात् वह एक पूर्णरूपेण जीवित प्राणी बन चुका होता है।

अपने ऐसे जीवित शिशु की अबोर्शन द्वारा हत्या करवाने का निश्चय करने वाले माँ–बाप यदि यह जान लें कि इस क्रिया द्वारा उनकी जीती जागती निश्चितरूप से पूर्ण विकसित सन्तान की किस निर्ममता व निर्दयता से यातना दे दे कर हत्या की जाती है, तो निश्चित है कि वे अपने गर्भस्थ शिशु की हत्या अर्थात् अबोर्शन कराने को फिर कभी तैयार नहीं होंगे।

एबोर्शन की मुख्य विधियाँ निम्न हैं :

1. चूषण पद्धति (Suction Aspiration) : यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है। इसमें गर्भाशय (Womb) का मुख खोलकर उसके अन्दर (Suction curette) एक खोखली नालिका जिसका सिरा चाकू जैसा होता है व नालिका के साथ एक पम्प जुड़ा होता है, डाली जाती है और पम्प के तेज दबाव व खिंचाव से बच्चे के शरीर को फाड़ कर टुकड़े–टुकड़े कर दिये जाते हैं। इसके चाकू की चपेट में बच्चे का कभी कोई तो कभी कोई, छाती, पेट, सिर आदि जो भी अंग आता जाता है कटता फटता जाता है और ये कटे फटे टुकड़े बोटी–बोटी कर इस प्रकार बाहर खेंच लिए जाते हैं मानो

कोई कूड़ा करकट हो।

2. फैलाव व निष्कासन विधि (Dillation and Evacuation) : यह विधि तीन से नौ माह तक के बच्चे के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इसमें गर्भाशय (Womb) के मुँह को खींचकर काफी खोला जाता है व विशेष प्रकार के औजार से बच्चे के शरीर को काटा जाता है व उसकी खोपड़ी को तोड़ा जाता है। बच्चे के अंगों के कटे व कुचले टुकड़ों को गोल छल्लेदार कैंची से निकाला जाता है। बच्चे के टुकड़े–टुकड़े , कुचला हुआ सिर, लहुलुहान आंतें, धड़कता हुआ नन्हा हृदय सब कूड़े करकट के ढेर की तरह फेंक दिये जाते हैं।

3. Dllatation and Curettage (D & C) विधि : यह भी प्रथम विधि जैसी ही होती है। इस विधि में चाकू एक तेज धार वाले लूप की शक्ल का होता है जो गर्भाशय में बच्चे को काट डालता है। कटे हुए अंगों के टुकड़ों को एक चम्मच जैसे साधन (Cervix) से गर्भाशय के मुँह में से निकालते हैं।

4. जहरी क्षार वाली पद्धति : एक लम्बी मोटी सुई गर्भाशय में लगा कर उसमें पिचकारी की सहायता से नमक का क्षार वाला द्रव छोड़ दिया जाता है। चारों ओर से घिरा बालक क्षार का कुछ अंश निगल जाता है व जहर खाये व्यक्ति की भाँति गर्भाशय में तड़फने लगता है, उसकी चमड़ी–श्याम पड़ जाती है और वह घुट–घुट कर वहीं मर जाता है, फिर उसे बाहर निकाल लिया जाता है।

4.4 गर्भपात कराने में माँ को भी खतरे—

गर्भपात (एबोर्शन) या भ्रूण हत्या से जहाँ एक ओर निरपराध गर्भस्थ शिशु की निर्मम हत्या होती है वहीं दूसरी ओर गर्भपात कराने वाली माँ को भी कई जटिलताओं, समस्याओं का न्यूनाधिक संकट उत्पन्न हो ही जाता है। इनमें से कुछ संभावित जटिलताएँ तत्कालिक प्रभाव वाली व कुछ दीर्घकालीन प्रभाव वाली होती हैं जो माँ को न केवल आगे के लिए बाँझ बना सकती हैं बल्कि उसकी जान तक को खतरा उत्पन्न कर सकती हैं।

तात्कालिक जटिलताएँ—

1. हैमरेज (रक्त–स्राव) (Haemorrhage) : गर्भपात के दौरान रक्त की हानि होने के कारण माँ को इसका खतरा हो सकता है व रक्त चढ़ाने की आवश्यकता पड़ सकती है।

2. रोग संक्रमण (Infection) : गर्भपात के दौरान गर्भस्थ शिशु के शरीर का कोई कटा फटा अंग या भाग गर्भाशय में बचा रह जाने पर या ऑपरेशन के समय कोई अन्य कमी रह जाने की अवस्था में टयूबल इन्फैक्शन हो सकता है व आगे के लिए वह बांझ भी बन सकती है।

3. गर्भाशय को नुकसान (Damaged Cervix) : गर्भपात के दौरान औजारों के प्रयोग के लिए जो गर्भाशय का मुख खोलना पड़ता है उससे उसको आघात लगने पर भविष्य में स्वतः गर्भपात हो जाने अथवा समय पूर्व ही शिशु को जन्म दे देने की अवस्था हो सकती है।

4. **गर्भाशय में छेद होना (Perforation of The Uterus) :** गर्भपात के लिए प्रयोग किए गए औजार (Curette) से बच्चेदानी में छेद हो सकता है और परिणामस्वरूप उसे निकालना भी पड़ सकता है और स्त्री आगे के लिए बांझ बन सकती है।

5. **अँतड़ियों में सुराख होना (Perforation of the Bowl) :** गर्भपात में प्रयुक्त औजारों से अँतड़ी में सुराख हो सकता है।

दीर्घकालीन जटिलताएँ—

1. **मृत अथवा अपंग बच्चे (Stillborn or Handlcapped bobies) :** जिन स्त्रियों का रक्त (RH-negative) होता है और जिन्हें गर्भपात के बाद (RHO-gam) नहीं मिल पाता, उनकी भावी सन्तान को ऐसा खतरा उत्पन्न हो जाता है।

2. **गर्भस्त्राव (Miscarriages) :** जिन स्त्रियों ने गर्भपात कराया होता है उन्हें गर्भस्त्राव का खतरा 35 प्रतिशत अधिक हो जाता है।

3. **विकृत गर्भ क्षमता (Impaired Child-bearing abllity) :** गर्भपात के बाद होने वाली आगामी सन्तानों की उत्पत्ति में जन्मते समय जटिलता उत्पन्न हो सकती है।

4. **अवधि पूर्व जन्म (Premature births) :** अधिक गर्भपात करा लेने पर समय से पूर्व ही बच्चे के जन्म हो जाने का खतरा 2 से 3.3 गुना बढ़ जाता है।

5. **कम वजन के शिशु का होना (Low birth weight) :** गर्भपात के बाद होने वाली आगामी सन्तान कम भार वाली होने का खतरा 2 से 2.25 गुना बढ़ जाता है।

6. **बच्चे का फैलोपियन टयूब में बढ़ना (Ectopic Pregenancies) :** इसमें माँ की जान को बहुत खतरा हो जाता है क्योंकि बच्चा गर्भाशय की बजाए (Falliopian Tube) फैलोपियन टयूब में बढ़ता है। इस प्रकार की घटनाओं की काफी बढ़ोतरी हो गई है। जिसमें तत्काल आपरेशन कराना पड़ जाता है।

4.5 भ्रूण का लिंग परीक्षण, वरदान से अभिशाप बना–

गर्भजल परीक्षण (Prenatal testing) या एमिनोसिन्टेसिस का प्रारम्भ, आनुवंशिक विकृतियों, वंशानुगत रोगों तथा गुणसूत्रों में दोषों का पता लगाने के उद्देश्य से किया गया था। यह एक वैज्ञानिक उपलब्धि थी क्योंकि इन परीक्षणों से 72 असाध्य एवं वंशानुगत रोगों की पुष्टि की जा सकती थी और गर्भस्थ शिशु में कोई रोग या दोष होने पर उसका तभी से उपचार प्रारम्भ करना संभव हो जाता था। निश्चित ही, यह एक वरदान व सराहनीय प्रयास था, किन्तु इस परीक्षण से शिशु के लिंग की जानकारी भी मिल जाने के कारण यह शीघ्र ही वरदान से अभिशाप में परिवर्तित हो गया।

प्रारम्भ में तो यह परीक्षण गर्भस्थ शिशु के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने की उत्सुकता को रोक नहीं पाने के कारण कराया जाता रहा। किन्तु शीघ्र ही उत्सुकता व ममता का स्थान बेटी को बेटे से हीन मानने वाली दुर्भावना ने ले लिया और ये परीक्षण ऐसी कुटिल, स्वार्थी व द्वेषपूर्ण भावना से कराए जाने लगे कि गर्भ में कहीं लड़के की बजाए लड़की ही तो नहीं है। बेटी को बेटे से दोयम दर्जे का अथवा एक प्रकार का भार मानने वाली समाज की इस मानसिकता से कुछ स्वार्थी तत्वों को अपना व्यवसाय चमकाने का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया और देखते ही देखते प्रायः सभी शहरों में ऐसे क्लीनिकों की बाढ़ आ गई जहाँ गर्भ परीक्षण और गर्भपात द्वारा भ्रूण नष्ट करने की सुविधा प्राप्त होने लगी। कुछ लोभी व्यक्तियों ने तो गर्भस्थ लड़की सन्तान की हत्या को उकसाने वाले ऐसे नारे "दहेज का सस्ता विकल्प–गर्भपात" तक फैलाने में भी संकोच नहीं किया।

परिणाम स्वरूप लिंग परीक्षण के बाद होने वाले गर्भपातों में 97 प्रतिशत अर्थात् प्रायः सभी में गर्भस्थ लड़की की ही हत्या हुई। गर्भस्थ लड़के की हत्या कराने से प्रायः सभी माँ बाप कतराते हैं भले ही उनके पहले से ही कई पुत्र क्यों न हों।

4.6 अभ्यास प्रश्न–

प्रश्न 1—प्रत्येक गर्भपात में हत्या अवश्य होती हैं, स्पष्ट कीजिये ?

प्रश्न 2—गर्भपात (एबोर्शन) कराने की प्रचलित किन्हीं दो विधियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3—गर्भपात कराने वाली माँ के स्वास्थ्य पर तात्कालिक क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ?

प्रश्न 4—भ्रूण का लिंग परीक्षण अभिशाप क्यों है ?

पाठ-5 – मादक पदार्थों से हानियाँ एवं स्वास्थ्यवर्द्धक पेय

5.1 भारतीय संविधान की धारा 47 में मद्यनिषेध के लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है। इस नीति के मूल प्रवर्तक राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी थे। इसे बाद में राष्ट्रीय नीति के रूप में अंगीकार कर लिया गया।

अतः मद्य निषेध हमारी राष्ट्रीय नीति व राष्ट्रीय कर्तव्य है, किन्तु खेद है कि महात्मा गाँधी के पदचिन्हों पर चलने की दुहाई देने वाले हमारे जनप्रतिनिधियों व संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेने वाले देश के कर्णधारों ने इस उत्तरदायित्व के प्रति उदासीनता ही दर्शायी और केवल मद्यनिषेध निदेशालय बना कर व नशे के विरुद्ध विज्ञापन व प्रचार करके अथवा सिगरेट के डिब्बे पर वैधानिक चेतावनी लिखवाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली। जो पदार्थ हानिकारक हैं व जनता और समाज के स्वास्थ्य व चारित्रिक पतन का कारण हैं उनका उत्पादन निरन्तर बढ़ क्यों रहा है? ऐसे पदार्थों के उत्पादन व विज्ञापनों पर रोक क्यों नहीं लगाई जाती ? विज्ञापन धूम्रपान के बढ़ते प्रचलन का एक प्रमुख कारण है। ऐसे विज्ञापन जो बार–बार यह बताएं कि धूम्रपान करने वाले अधिक जाँबाज व बहादुरी के कार्य करते हैं व सिगरेट तनाव–मुक्ति व ताजगी प्रदान करती है व सिनेमा, टीवी आदि में हीरो व बुद्धिजीवियों के धूम्रपान करते व शराब पीते हुए दृश्य युवा वर्ग पर अचूक प्रभाव डाल कर उनको इन पदार्थों के सेवन के लिए प्रोत्साहित ही करते हैं।

कुछ अवसरों पर जब देश का संचालन करने वाले कुछ कर्णधार स्वयं धूम्रपान करते अथवा शराब का उपभोग करते हुए जनता के समक्ष आ जाते हैं तो वे अप्रत्यक्षरूप से जनता को इन हानिकारक पदार्थों का उपभोग करने के लिए प्रोत्साहित ही करते हैं। जैसे बच्चा अपने माँ–बाप का व उनकी आदतों का अनुकरण करता है उसी प्रकार जनता अपना आदर्श राजा को मानती है व उसका अनुकरण करती है। 'यथा राजा तथा प्रजा' आज भी उतना ही सत्य है जितना प्राचीन काल में रहा है।

प्रायः यह कहा जाता है कि शराब, सिगरेट आदि के उत्पादन पर लगे करों से होने वाली आय हमारी **राष्ट्रीय आय में एक प्रमुख स्थान रखती** है अतः इन पदार्थों पर रोक लगाने से राष्ट्रीय आय में जो कमी होगी उसकी पूर्ति करना कठिन होगा। ऊपरी तौर पर ऐसा ठीक लगता है लेकिन यदि गम्भीरता से अध्ययन किया जाए तो यह मात्र एक छलावा है। इन पदार्थों से होने वाली आय हमारी राष्ट्रीय आय का स्रोत नहीं है अपितु राष्ट्रीय आय पर बोझ के ही समान है। धूम्रपान, शराब, आदि मादक पदार्थों से होने वाली आय को आय समझना एक भ्रम और जाल है और एक तरह से जनता को मूर्ख बनाना है क्योंकि इन विनाशकारी पदार्थों के उपभोग के फलस्वरूप जो रोग, अपराध, दंगे, बलात्कार आदि बढ़ते हैं उन्हें कम करने के रूप में औषधालयों, पुलिस, जेल आदि पर जो खर्च होता है वह इन पदार्थों से होने वाली आय से कहीं अधिक है।

भारत में तम्बाकू के उत्पादन के लिए जो भूमि उपयोग की जा रही है उसका क्षेत्रफल लगभग साढ़े चार लाख हेक्टेयर है। यदि इतनी भूमि में कोई अन्य फसल लगाई जाए तो उससे होने वाले उत्पादन से जो आय होगी वह और अलग रही।

जनता द्वारा चुनी हुई सरकार का उद्देश्य जनता की भलाई ही तो है। फिर जनता का स्वास्थ्य, आचरण व चारित्र बिगाड़ कर प्राप्त किया गया धन किस काम का। राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिए पहले जनता को दुर्व्यसनों में फंसाकर रोगों की ओर बढ़ने दें और फिर उस आय से जनता के उपचार के लिए धन व्यय करें यह कहाँ का न्याय है। क्या ऐसे हितैषी से शत्रु ही अधिक अच्छा नहीं ?

5.2 धूम्रपान–शत्रु महान्—

सम्भवतः धूम्रपान ही एक ऐसी लत है जो धूम्रपान करने वाले के साथ–साथ उसके परिवार, पत्नी, बच्चों आदि

के स्वास्थ्य पर भी उतना ही दुष्प्रभाव डालती है जितना धूम्रपान करने वाले पर। मित्रों की कुसंगति, परिवार के बड़े व्यक्तियों की देखा देखी अथवा अन्य किसी भी कारण से धूम्रपान के चँगुल में फँसा कोई व्यक्ति भी यह तो कभी नहीं कहता कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। वे यह भी जानते हैं कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, किन्तु वे इसे उतना हानिकारक नहीं मानना चाहते जितना यह वास्तविकता में है। वे इसे मूड ठीक कर, आनन्द देने वाला, मन–मस्तिष्क की एकाग्रता ला कर गुत्थी सुलझाने में सहायता करने वाला, चुस्ती–फुर्ती लाने वाला व उच्च वर्ग व अधिकारियों से सम्बन्ध बनाने में सहायता कर आर्थिक लाभ दिलाने में सहयोग करने वाला मानते हैं। सम्भवतः उनकी दृष्टि में आर्थिक लाभ के समक्ष स्वास्थ्य हानि कोई विशेष महत्व नहीं रखती।

अपने प्रत्येक आचरण को उचित ठहराने के लिए कोई न कोई तर्क तो सब ही बना लेते हैं किन्तु पक्षपातपूर्ण दृष्टि से तोड़ मरोड़ कर बनाए गए तर्क प्रायः तर्क ही होते हैं वास्तविकता व सत्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। वास्तविक सत्य तो वही होता है जो निष्पक्ष दृष्टि से तथ्यों, वैज्ञानिक निष्कर्षों को और पूरे विश्व में हुए सर्वेक्षणों व शोधों पर आधारित तथ्यों को आगे की पंक्तियों में दे कर वास्तविक सत्य पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। वास्तविक सत्य क्या है इसका निर्णय आप स्वयं करें।

धूम्रपान पर वैज्ञानिकों का मत-

रसायन विज्ञान के अनुसार तम्बाकू एक खतरनाक विष है। रिपोर्ट के अनुसार तम्बाकू में निकोटीन, टार व कार्बन मोनोक्साइड नाम के तीन मुख्य हानिकारक पदार्थ होते हैं। निकोटीन शरीर के टिश्यूज पर विशेषतः केन्द्रीय नर्वस सिस्टम पर दुःष्प्रभाव डालता है, उससे रक्तचाप व हृदय गति में वृद्धि भी हो जाती है व इससे व्यक्ति को नशे की आदत पड़ जाती है। कार्बन मोनोक्साइड रक्त की लाल कोशिकाओं में ऑक्सीजन की मात्रा कम कर देती है। निकोटीन व कार्बन मोनोक्साइड के मिलने से लकवे या दिल के दौरे का आक्रमण हो सकता है। टार से फेफड़ों के नाजुक रेशे खराब हो जाते हैं। जब फेफड़ों में टार अधिक मात्रा में जमा हो जाता है तो कैंसर पैदा हो जाता है।

सिगार, पाईप, हुक्का आदि सभी वस्तुएं समानरूप से हानिकारक हैं। कम टार तथा कम निकोटीन वाली तथा फिल्टर सिगरेट भी किसी मायने में कम हानिकारक नहीं होती। तम्बाकू चबाने से मुँह का कैंसर व गले और जुबान का कैंसर भी हो सकता है। पेट व खाने की नली में फोड़ा भी हो सकता है जिससे भूख लगनी कम हो जाती है व वजन भी घट जाता है। तम्बाकू का सेवन करने वाले लोगों और उनके बच्चों में छाती के रोग होने की सम्भावना भी अधिक होती है।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (I.C.M.R) के अनुसार महिलाओं में तम्बाकू का काफी गंभीर असर होता है। गर्भ–निरोधक गोलियाँ खाने वाली महिलाओं के धूम्रपान से उनमें दिल का दौरा पड़ने, पैर की नसें फूलने तथा लकवे का खतरा 10 गुणा अधिक बढ़ जाता है। महिलाओं का गर्भ गिरने और मरा हुआ बच्चा पैदा होने की संभावना भी तीन गुना बढ़ जाती है। बच्चा समय से पहले पैदा हो सकता है जिससे उसका वजन कम होगा और वह बीमार रह सकता है।

5.3 तम्बाकू व गुटका वैज्ञानिक खोज—

तम्बाकू एक तीखा व धीमा जहर है। तम्बाकू में 24 प्रकार के जहरीले पदार्थ पाये जाते हैं। इसके कुछ प्रमुख जहर व उनसे होने वाली बीमारियाँ इस प्रकार हैं–

निकोटिन : यह कई भयंकर रोग उत्पन्न करता है।

कोलीडिन : इससे सिर चकराने लगता है, नसें कमजोर होने लगती हैं।

पायरीडिन : इससे आँतों में खुश्की और पेट में कब्ज पैदा होती है।

कार्बोलिक एसिड : यह अनिन्द्रा, स्मरण–शक्ति में कमी और चिड़चिड़ापन पैदा करता है।

एजोलिन एवं सायनोजन : यह खून खराब करता है।

पूपिक एसिड : यह थकान व उदासी पैदा करता है।

यह विष मनुष्य के शरीर में धीरे–धीरे मिलकर अनेक भयंकर रोगों को जन्म देने का कारण बनते हैं।

तम्बाकू की पत्तियों में निकोटीन नामक अलकोलायड़ होता है। निकोटीन तम्बाकू की सूखी पत्तियों में भी सक्रिय रूप से विद्यमान रहता है। निकोटीन एक घातक विष है। जिसको अधिक मात्रा में यदि किसी व्यक्ति को दिया जाए तो, मात्र कुछ सैकिण्डों में आकस्मिकरूप से श्वसन अंगों तथा केन्द्रीय स्नायुविक प्रणाली के पक्षाघात के कारण उस व्यक्ति की निश्चितरुपेण मृत्यु हो जाती है।

निकोटीन अल्प मात्रा में लेने पर पहले तो शारीरिक प्रक्रियाओं को उत्तेजित करता है तत्पश्चात् शारीरिक शक्तियों को क्षीण बना देता है। तम्बाकू के कुछ दिन लगातार प्रयोग कर लेने पर व्यक्ति उसका आदी हो जाता है, मस्तिष्क के ''इच्छा केन्द्रों'' में उसकी ललक अपना घर बना लेती है। निकोटीन जहाँ शुरु में मानसिक एकाग्रता लाती है वहीं अपने दीर्घ चरण में मानसिक शिथिलता को जन्म देती है।

निकोटीन का नारी और पुरुष दोनों यौग जननांगों पर समानरूप से कुप्रभाव होता है। निकोटीन का कुप्रभाव गर्भस्थ शिशु पर भी होता है। इस कुप्रभाव के परिणामस्वरूप जन्म लेने वाला शिशु विकलांग तक हो जाता है। निकोटीन, गर्भस्थ शिशु की प्राकृतिक प्रतिशोधक शक्ति का समापन कर देती है।

पान मसाला गुटका या खैनी (तम्बाकू व चूने का मिश्रण) खाने का शौक शुरू करते ही मुंह का स्वाद बिगड़ने लगता है और यह शौक जैसे ही व्यसन का रूप लेने लगता है वैसे ही बीमारी जड़ पकड़ना शुरू कर देती है। पहले दाँत फिर मसूढ़े उसके बाद श्वास नली की बीमारियाँ पैदा होने लगती हैं। मुँह से बदबू आने लगती है, हाजमा बिगड़ जाता है। तम्बाकू और चूने से लगातार मुँह की खाल जलते रहने से उत्पन्न क्षोभ के कारण उस स्थान की त्वचा पर सफेद धब्बे दिखाई देने लगते हैं और अगर उस पर भी ध्यान न दिया जाये तो वही लयुकोप्लेकिया या सबम्यूकस फाइब्रोसिस (कैंसर के ठीक पहले की स्थिति) नामक जानलेवा बीमारी पनपने लगती है।

पान मसाला एक जेनिटोटोक्सिक पदार्थ है खाने वाले को भविष्य में मुँह के कैंसर की सम्भावना रहती है। किशोरों एवं युवकों को जरा से स्वाद, शौक एवं शान के पीछे जिन्दगी को बरबाद नहीं करना चाहिए।

उपचार–केवल दृढ़ इच्छा शक्ति ही पर्याप्त है। तम्बाकू और उसकी लत को छुड़ाने के लिए आमतौर पर ''कैलेडियम सेग्युनिम'' नामक औषधि की 6 अथवा 30 शक्ति का कुछ दिनों तक नियमित प्रयोग का निर्देश होम्योपेथिक साहित्य में किया गया है। विलयम बोरिक के अनुसार, 'कैलेडियम' मानवीय शरीर में तम्बाकू की लालसा को कम करता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण औषधि है–''प्लैंटेगो मेजर'' विलयम बोरिक के अनुसार 'प्लैंटेगो मेजर' मानवीय शरीर में तम्बाकू के प्रति अरुचि उत्पन्न करने में समर्थवान है तथा निकोटिन जनित अनिद्रा और जीर्ण लक्षणों को ठीक करती है। 'प्लैंटेगो मेजर' यह कदली (केले) परिवार का पेड़ है।

5.4 शराब —

मादक पदार्थों में शराब सबसे अधिक भयानक है।

आप समझते होंगे शराब अंगूरों का रस है ? शराब अधिकतर गन्दी चीजों से बनती है। शराब के कारखानों के पास से कभी–कभी हमें गुजरना पड़ता है तो दूर–दूर तक दम घोटने वाली दुर्गन्ध आती है।

शराब में एक प्रकार का अल्कोहलरूपी विष होता है। जिस श्रेणी की शराब होती है उसमें उतनी मात्रा में अल्कोहल होता है। वाइन में 4 प्रतिशत, बीयर जो साधारण शराब मानी जाती है उसमें 9 प्रतिशत, व्हीस्की तथा ब्रान्डी में 42.8 प्रतिशत तक अर्थात् लगभग आधा हिस्सा अल्कोहल होता है।

आश्चर्य की बात यह है कि जिस शराब में अधिक मात्रा में अल्कोहल होती है उतनी अच्छी किस्म की शराब मानी जाती है, क्योंकि उससे अधिक नशा उत्पन्न होता है। सुविख्यात डॉक्टर डॉक का अभिप्राय है कि अल्कोहल एक प्रकार का सूक्ष्म विष है जो क्षण मात्र में सारे शरीर में फैल जाता है। रक्त, नाड़ियों तथा दिमाग के कार्यो में विघ्न डालता है तथा शरीर के विविध गोलकों (चक्रों) को बिगाड़ देता है।

वैज्ञानिकों ने शराबियों के मृतक शरीर को चीरकर देखा है कि उसके सब अंग विषाक्त हो जाते हैं आँतें प्रायः सड़ जाती है। दिमाग में कमजोरी के निशान हो जाते हैं। रक्त की नाड़ियाँ आवश्यकता से अधिक चौड़ी हो जाती हैं।

शराब का स्वास्थ्य पर प्रभाव-शराब का सबसे पहला दुष्प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क तथा स्नायुतंत्र पर होता है। मस्तिष्क की नसें क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। जिस कारण मस्तिष्क की कार्यक्षमता मंद पड़ जाती है। स्नायुतंत्र भी कमजोर पड़ता है और फिर पाचन तंत्र को भी शराब क्षति ग्रस्त कर डालती है। जिगर खराब हो जाता है। जिससे पाचन शक्ति तो बिगड़ती ही है, साथ ही अनेक प्रकार की और बीमारियाँ भी लग जाती हैं। इन सबके प्रभाव से शराबी मनुष्य मानसिक दृष्टि से असंतुलित व कमजोर होने लगता है। इसकी विचार शक्ति नष्ट हो जाती है। शरीर का वजन घटने लगता है। वह चिड़चिड़ा स्वभाव वाला हो जाता है। सहनशक्ति क्षीण हो जाने से बात–बात में उत्तेजित होता है क्रोध आने लगता है।

लोग अक्सर यह कहते हैं कि शराब पीने से स्फूर्ति आ जाती है। डॉक्टरों का कहना है यह एक प्रकार की भ्रान्ति है और थोड़ी देर बाद वह एकदम निष्क्रिय हो जाता है। इन्टरनेशनल फिजियोलोजिकल कांग्रेस के सदस्य प्रो. डॉ0 आन्टेटा श्मेईदर वर्ग का कहना है "शराब शरीर को संवेदनशून्य अवसादयुक्त कर डालती है।" इसीलिए शराब पीकर आदमी दुःख–दर्द भूल जाता है। मद्यपान के उपरान्त जो थोड़ी–सी उत्तेजना दिखाई पड़ती है वह वस्तुतः अपनी जीवनी शक्तियों में बहुमूल्य पदार्थ को जलाकर चमकाई गई फूलझड़ी मात्र है

शराब से शरीर की श्वेत कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। ये श्वेत कोशिकाएँ ही शरीर में रोगाणुओं के आक्रमण को रोकती है। शराब से रोग–प्रतिरोधी शक्ति कमजोर पड़ती है। शराब से जिगर, दिल और गुर्दे भी खराब हो जाते हैं, फेफड़े कमजोर पड़ जाते हैं, जिसे आम भाषा में "फेफड़े जल जाना" कहते हैं।

अनेक डॉक्टरों ने परीक्षण करके यह पाया है कि शराब के सेवन से व्यक्ति में निष्क्रियता, आलसीपन और जिम्मेदारियों से दूर भागने की वृत्ति पनपती है। वह कोई भी उचित निर्णय लेने में कमजोर और असमर्थ हो जाता है। भावनात्मक दृष्टि से वह असंतुलित, उखड़ा–उखड़ा ढुल–मुल विचारों का, निराश और कुण्ठाग्रस्त हो जाता है।

शराबी का आचरण उग्र, अपराधी और एकान्तप्रिय गुम–सुम जैसा हो जाता है। समाज से भी अलग–थलक पड़ जाता है। इस तरह धीरे–धीरे शराबी के जीवन में उदासी, सुस्ती, निराशा, अकेलेपन की भावना बढ़ने लगती है। वह अपराधी वृत्ति का हीन भावनाग्रस्त हो जाता है और फिर इन परिस्थितियों से निबटने व मन को इनसे भुलाने के लिए और शराब ज्यादा पीने लगता है। ज्यों–ज्यों शराब की मात्रा बढ़ती है, शरीर क्षीण होने लगता है। परिणाम यह होता है कि शराब एक दिन असमय में ही मनुष्य को मौत में धकेल देती है।

दूषित व मिलावटी शराब (**Methyl Alcohol**) पीने से उल्टी, पेट दर्द, मांसपेशियों में ऐंठन व बेहोशी होने के साथ–साथ आँखों की रोशनी भी (**Optic Atrophy**) सदा के लिए चली जाती है। तथा यह दूषित व मिलावटी शराब मृत्यु का कारण भी बन सकती है।

कुछ लोगों में मद्यपान एक विलासिता की चीज रही है। कोई भी शराबी पिता अपने पुत्र को, शराबी पति अपनी पत्नी को सहसा शराबी बनाना नहीं चाहता। परन्तु यह बात खुद के लिए भुल जाता है। अहंकार, बड़प्पन, भोग–विलास की उत्तेजना और मन बहलाने के लिए वह खुद शराब के चंगुल में फँस जाता है। बहुत से अज्ञानी लोग यह समझते हैं कि शराब पीने से बड़ा आनन्द अनुभव होता है। मजा आता है। वास्तव में यह आनन्द एक क्षणिक उत्तेजना जैसा होता है, क्योंकि शराब का अल्कोहल विचार को मंद कर देता है। आदमी विचार शून्यता की स्थिति में पहुँच जाता है और सोचता है, ''आह! कितना आनन्द आ रहा है।'' असलियत में उसे इसके नुकसानों का पता नहीं है। कुछ लोग तनावों से मुक्त होने के लिए शराब का सहारा लेते हैं। परन्तु यह असलियत नहीं है।

उपचार-नशे की आदतें छुड़ाने में दवाओं के साथ–साथ प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं ध्यान का काफी महत्व है, क्योंकि इसके लिए चारित्रिक बल, नियम और संयम, व्यवस्थित दिनचर्या, संतुलित आहार एवं सात्विक विचारधारा की जरूरत होती है, जो केवल प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग के द्वारा ही संभव है। गांधीजी कहा करते थे कि प्राकृतिक चिकित्सा केवल एक उपचार की पद्धति ही नहीं, बल्कि जीवन का सिद्धान्त है।

5.5 कोल्ड ड्रिंक्स में प्रयुक्त पदार्थ एवं उनके दुष्प्रभाव —

आइए, एक नजर जरा उन पदार्थों पर डालें जो कोल्ड ड्रिंक्स तैयार करने में इस्तेमाल होते हैं–

शुगर : इसे कोल्ड ड्रिंक्स को मीठा बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। 300 मि.ली. की एक बोतल एक ही बार में लगभग 3 चम्मच शुगर आपके खून में पहुँचा देती है जो बहुत ही जल्द आपके खून में मिलकर स्वास्थ्य पर दूरगामी दुष्प्रभाव छोड़ जाती है। नतीजा–दांतों की बीमारियाँ, डायबिटीज, मोटापा, बदहजमी जैसे उत्पाती रोग।

कैफीन : कोल्ड ड्रिंक्स में कैफीन का इस्तेमाल अक्सर स्वाद बढ़ाने और महक बढ़ाने के लिए किया जाता है। कोल्ड ड्रिंक्स 300 मि.ली. की एक बोतल में लगभग 40 से 72 मि. ग्रा. कैफीन मिली रहती है। कैफीन लत लगाने वाला ऐसा पदार्थ है जिसे लेने से नाड़ी यंत्र उत्तेजित होता है और हृदयगति बढ़ जाती है। थोड़ी देर के लिए शरीर में ताजगी महसूस होने लगती है। परिणाम में यह अनिद्रा और रक्तचाप बढ़ाता है।

अक्सर आप अधिक शारीरिक श्रम के बाद कोल्ड ड्रिंक्स या चाय, काफी पीते हैं। दोनों तरह के पेय में कैफीन शामिल है। एक अमरीकी अध्ययन के अनुसार शारीरिक श्रम के बाद कैफीन मिला पेय आपके शरीर में मौजूद कैल्शियम और पोटैशियम को क्षति पहुँचाता है। नतीजा–मांसपेशियों एवं जोड़ों में दर्द। कैफीन के साथ जब शुगर मिला पदार्थ या पेय लिया जाता है तब यह क्षति लगभग दुगुनी हो जाती हैं

एसीड : सभी सॉफ्ट ड्रिंक्स के स्वाद में चटपटा–तीखापन लाने के लिए जिन तेजाबों का प्रयोग किया जाता है उनमें मुख्य हैं फास्फोरिक एवं साइट्रिक एसिड–ये एसिड बंद बोतल में पेय को टिकाऊ बनाये रखने का काम करते हैं। इसका औसत पी. एच. मान 3.4 पाया गया है।

फास्फोरिक एसिड शरीर में कैल्शियम–फास्फोरस के अनुपात को बिगाड़ने का काम करता है जिसके कारण हड्डियों से कैल्शियम गल–गल कर पेशाब के रास्ते बाहर निकलने लगता है। नतीजा–हड्डियों में कमजोरी व आस्टियोपरोशिस नामक रोग।

मनुष्य के पेट में प्राकृतिकरूप से हाईड्रोक्लोरिक एसिड पाचन क्रिया में मदद करता है। कोल्ड ड्रिंक्स में मिला फास्फोरिक एसिड उसे नाकामयाब बना देता है। **नतीजा**–बदहजमी, पेट फूलना, गैस इत्यादि।

कार्बन डाइऑक्साइड : प्रत्येक श्वास में हम ऑक्सीजन ग्रहण कर कार्बन डाईऑक्साइड बाहर छोड़ते हैं।

प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि जरा भी कार्बन डाईऑक्साइड हमारे शरीर के भीतर न रहे। कार्बन डाईऑक्साइड का इस्तेमाल कोल्ड ड्रिंक्स में बुलबुले झाग पैदा करने के लिए किया जाता है। नतीजा–वही कार्बन डाईऑक्साइड इस ड्रिंक्स के माध्यम से पेट से हमारे खून में पहुँचती है। जो अमाशय और अंतड़ियों को नुकसान पहुंचाती है।

एल्कोहल : एल्कोहल का सीधा–सा अर्थ है–शराब।

कोल्ड ड्रिंक्स बनाने वाले ईमानदारी से कभी भी बोतल पर लिखित जानकारी नहीं देते कि उनके पेय में किन–किन पदार्थों (Contents) का इस्तेमाल किया गया है।

5.6 स्वास्थ्यवर्द्धक पेय–

अब तक हमने जाना कि मदिरा, चाय, कॉफी व अन्य कैफीन युक्त सौफ्ट ड्रिक्स स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। तथ्यों को देखते हुए यह ठीक भी है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यदि इन सब पदार्थों को त्याग दें तो फिर आखिर पियें क्या ? क्या कोई ऐसे पेय पदार्थ भी हैं जो हानिकारक नहीं हैं ?

जी हाँ, ऐसे अनेकों पेय पदार्थ हैं जो न केवल लाभप्रद व स्वादिष्ट हैं अपितु अनेकों रोगों के उपचार का कार्य भी करते हैं। अनेक फलों व कुछ साग भाजियों के रस बीमार को तो ठीक करते ही हैं, स्वस्थ मनुष्य को स्वस्थ भी रखते हैं। कुछ मुख्य फलों व सब्जियों के रस के लाभ यहाँ संक्षिप्त में दे रहे हैं, जिन्हें पाठक अपनी सुविधा, स्वास्थ्य व रुचि के अनुकूल हानिकारक पेय पदार्थों के विकल्प के रूप में ले सकते हैं।

5.6.1 शाक सब्जियों व फलों के रस–

पालक का रस : इसमें विटामिन A B C तीनों होते हैं इसमें विटामिन A व लौह तत्व अधिक होता है। पालक एक प्रकार से हरा रक्त ही है। कब्ज दूर करने, दाँतों व मसूढ़ों को मजबूत करने व पायरिया नष्ट करने में विशेष गुणकारी है।

टमाटर का रस : इसमें विटामिन A, B, C के अतिरिक्त साइट्रिक एसिड, फास्फोरिक तथा मोलिक एसिड जैसे उपयोगी द्रव्य होते हैं इसके रस में कब्ज को मिटाने, रोगग्रस्त यकृत को स्वस्थ करने व रक्त को शुद्ध कर त्वचा को चमकीली बनाने की अद्‌भुत शक्ति है। यह स्वास्थ्य के लिए अमृततुल्य है।

संतरे का रस : इसमें ए, बी, सी, तीनों विटामिन हैं किन्तु विटामिन C अधिक मात्रा में है। 100 ग्राम सन्तरे का रस पूरे दिन की विटामिन C की आवश्यकता की पूर्ति कर देता है। इसके अतिरिक्त इसमें शर्करा, साइट्रिक ऐसिड, फॉस्फोरस, लौह व सोडियम, कैल्शियम, पोटाशियम आदि अन्य अनेकों लाभकारी तत्व हैं। यह उदर में पहुंचते ही पच जाता है, कब्ज का नाश व अंतड़ियों की शुद्धि करता है। रोग प्रतिकार की क्षमता बढ़ाता है व उच्च रक्तचाप, ज्वर, इन्फ्ल्युएन्जा, रक्ताभाव, दमा, जुकाम, अनिद्रा आदि रोगों के लिए भी उत्तम है।

मोसंबी का रस : इसमें बढ़िया फल शर्करा के साथ–साथ साइट्रिक विटामिन A, B, C और उपयोगी क्षार होते हैं। यह बलवर्द्धक व बीमार लोगों के लिए अमृत समान है। थकान, बेचैनी, ऊब आदि को दूर करके स्फूर्ति, रोगनिरोधक शक्ति प्रदान करता है व रक्त बढ़ाता है। चर्म रोगी के लिए भी मोसंबी का रस लाभकारी है।

अनन्नास (पाइनएपल) का रस : इसमें फास्फोरिक एसिड पर्याप्त मात्रा में होता है। लौह, मेग्नीशियम, सोडियम और क्लोराइड ऑफ पोटाशियम के क्षार भी ठीक मात्रा में होते हैं व विटामिन Aव C भी होता है। इसके रस में अँतड़ियों में से म्युकस (अम्लता) को बाहर निकालने के गुण हैं। यह अन्तःस्रावी ग्रंथियों को पुष्ट रखता है, ब्रोन्काइटिस, कफ, दमा, अजीर्ण, भेद वृद्धि, उच्च रक्तचाप आदि से पीड़ितों के लिए गुणकारी है। धूम्रपान करने वालों के खून में अकसर विटामिन C की कमी हो जाती है ऐसे लोगों को धूम्रपान छोड़कर अनन्नास का रस पीकर विटामिन 'सी' की कमी पूरी करनी चाहिए।

अनार का रस : इसमें उच्चकोटि का सोडियम तथा पर्याप्त प्रमाण में लौह, विटामिन C एवं टोनिक एसिड भी

है। ये तत्व रक्त–शक्तिवर्धक होने से शरीर को पुष्ट करते हैं, अतिसार, दस्त एवं संग्रहणी में बहुत लाभदायी हैं। आँतों के कृमियों के लिए अकसीर उपाय है। इससे यकृत (लिवर) की शक्ति बढ़ती है, आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है। उच्च रक्तचाप, सन्धिवात, पेचिश आदि में इसका रस तत्काल असर करता है। यह त्रिदोष–नाशक, शुक्रवर्द्धक, बुद्धिवर्द्धक एवं बलप्रद है।

सेब का रस : इसमें विटामिन A, B^1, B^2, B^3, P और C आदि एवं खनिज तत्व अधिक मात्रा में होते हैं। यदि सुबह खाली पेट लगभग 250 ग्राम ताजा सेब का रस पिया जाए तो वह शरीर को समस्त प्रकार के विष से मुक्त कर देता है। इसके रस से पीलिया के बाद बिगड़ा लिवर भी कार्यशील हो जाता है। हृदय–रोग व उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिए बेहद उपयोगी है। यह अँतड़ियों को मजबूत सक्षम बनाता है, भूख बढ़ाता है, नर्वस सिस्टम को तनाव मुक्त कर शान्त करने की जो सामर्थ्य सेब में है वह अन्य किसी भी फल या औषधि में शायद ही हो। यह रोग निरोधक शक्ति भी बढ़ाता है।

5.6.2 रसों के काकटेल-

1. टमाटर तथा सेब का रस बराबर मात्रा में ले कर उसमें एक चम्मच चाशनी मिलाने से स्वादिष्ट काकटेल बनता है।

2. दो–तीन नाशपाती के रस में दो तीन चम्मच नींबू रस तथा दो चम्मच चाशनी मिलाकर स्वादिष्ट काकटेल बनता है।

इसी प्रकार अपनी रुचि अनुसार विभिन्न फलों के रस मिलाकर अथवा विभिन्न शाक–सब्जियों के रस मिलाकर उनमें नींबू का रस, पुदीने का रस व चाशनी आदि जैसा जिसको रुचे व स्वादिष्ट लगे, अनेकों कॉकटेल बन सकते हैं जो स्वास्थ्यवर्धक होने के साथ–साथ ताजगी व स्फूर्ती भी प्रदान करेंगे।

5.6.3 आरोग्यवर्द्धक चाय —

तुलसी की चाय : अँतड़ियों के लिए उत्तम टॉनिक है, कृमिनाशक, हृदय–रोग को होने से रोकने वाला व कैंसर को रोकने में व पीलिया, मंदाग्नि, गैस, अस्थमा आदि रोगों के उपचार में गुणकारी है।

तुलसी : मलेरिया, खाँसी, दमा आदि में लाभकारी है, कृमिनाशक है, स्मरण शक्ति व किडनी की कार्य शक्ति बढ़ाने वाली है। सर्दी, जुकाम, सिरदर्द, मोटापा आदि रोगों के लिए गुणकारी व ब्लड–कोलेस्टरोल को तेजी से सामान्य करने वाली है।

इन दोनों गुणकारी पदार्थों को पानी में उबाल कर व इसमें एक दो काली मिर्च व इलायची आदि भी डाली जा सकती है।

मसाले वाली चाय : सुलभ प्राकृतिक चाय को सर्दी, जुकाम, वात, दमा आदि रोगों के लिए औषधि बताया गया है। यह चाय नित्य पीने से स्मरण शक्ति बढ़ती है।

सौंफ	16 भाग	आंव व पेचिश में लाभकारी
बड़ी इलायची	8 भाग	मस्तिष्क व टी. बी. के रोगों में लाभकारी
वनप्सा	2 भाग	कफ को समन करने वाली
ब्राह्मी बूटी	8 भाग	स्मरण शक्ति बढ़ाने वाली
लाल चन्दन	16 भाग	रक्त को बढ़ाने वाला व वात रोगों में लाभकारी
मुलेठी	4 भाग	कफ साफ करती है
सोंठ	2 भाग	वात रोगों को दूर कर रक्त संचालन करती है
काली मिर्च	1 भाग	कफ को दूर करती है।

उपरोक्त पदार्थों को अलग–अलग कूट कर छान लें फिर सब को एक साथ मिलाकर रख लें। आधा लीटर पानी

में एक चम्मच उपरोक्त मसाला चाय मिलाकर कुछ देर खौलाएं, फिर दूध और इच्छानुसार देशी शक्कर या चीनी मिला कर पिएं।

5.6.4 चाशनी, नींबू पानी : नींबू में निहित विटामिन 'सी' रोग–प्रतिकार शक्ति बढ़ाता है, शरीर के विष को निकालता है व कब्ज, रक्तविकार, मंदाग्नि आदि अनेक रोगों के उपचार करने के साथ–साथ थकान, सुस्ती दूर कर स्फूर्ति देता है। चाशनी शक्ति एवं उष्णता प्रदान करता है, थकान, बेचैनी या कमजोरी में तत्काल शक्ति देता है।

5.6.5 नारियल का पानी : सुबह चाय के बदले नारियल के पानी में नींबू का रस मिलाकर पीने से शरीर की गर्मी मूत्र एवं मल के साथ निकल जाती है और रक्त शुद्ध होता है।

5.6.6 अन्य लाभकारी पेय–

सूप : विभिन्न हरी सब्जियों, पत्तेदार सब्जियों , गाजर, टमाटर व दालों का अलग–अलग अथवा मिक्स सूप।

छाछ या मट्ठा दही की लस्सी, मिल्क शेक, मैंगोशेक, अमरस, बादाम की ठंडाई, गुलाब, खस आदि के शर्बत, कच्चे आम या इमली का पन्ना आदि अनेक ऐसे पेय हैं जो पाठकगण अपनी रुचि, स्वास्थ्य व सामर्थ्य के अनुसार ले सकते हैं।

डिब्बे बन्द रस से बचें : अकसर बन्द डिब्बों के फलों के रस में व जैम, जेली, अचार इत्यादि में बैन्जोइक एसिड व सोडियम बेन्जौइक मिलाया जाता है जो हानिकारक है। अतः स्वास्थ्य सुरक्षा की दृष्टि से डिब्बे बन्द रस का प्रयोग न करके ताजे निकाले हुए रस का प्रयोग करना ही उचित है।

5.7 अभ्यास प्रश्न–

प्रश्न 1—'धूम्रपान–शत्रु महान' संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ?

प्रश्न 2—तम्बाकू में पाये जाने वाले किन्हीं तीन जहरीले पदार्थ और उनसे होने वाली बीमारियों का वर्णन करें ?

प्रश्न 3—मद्यपान से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 4—कोल्ड ड्रिंक्स में मिश्रित किन्हीं दो हानिकारक पदार्थों और उनसे होने वाली बीमारियों का उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न 5—सन्तरे के रस के लाभों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 6—अनार के रस के क्या गुण हैं ?

प्रश्न 7—नाशपाती और नींबू से काकटेल किस प्रकार बनती है ?

प्रश्न 8—मसाले वाली चाय में मिलाई जाने वाली प्रमुख वस्तुओं का उल्लेख कीजिये ?

इकाई–5 जैन सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) जैन धर्म और विज्ञान

(2) आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि

(3) पुनर्जन्म की सिद्धि

(4) जैन सिद्धान्तों की व्यापकता

पाठ-1 – जैन धर्म और विज्ञान

1.1 धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं –

किसी ने पूछा–धर्म और विज्ञान एक दूसरे के संपूरक हैं या विघटक ? उत्तर मिला–पूरक हैं। मनुष्य को जीवन में जितनी आवश्यकता धर्म की है। उतनी ही विज्ञान की भी है। क्योंकि मनुष्य को गति विज्ञान से मिलती है जबकि धर्म इसे दिशा प्रदान करता है। विज्ञान के पास गति तो है किन्तु दिशा नहीं अतः जीवन में धर्म और विज्ञान का संतुलित समन्वय आज की सर्वोपरिजरूरत है। किसी भाई ने पूछा–धर्म बड़ा है या विज्ञान ? दूसरे ने उसी से पूछ लिया–माँ बड़ी है या बेटा ? उनका उत्तर था–माँ ! लेकिन यह उत्तर अधूरा है। माँ बड़ी है यह कथन स्थूल हैं। अनेकांत शैली में कथंचित, बेटा बड़ा है क्योंकि बेटे के बिना किसी स्त्री को माँ संज्ञा प्राप्त नहीं होती है। सन्तान को जन्म देने से पूर्व वह किसी की पत्नी थी, माँ नहीं। दुनिया कहती हैं कि माँ ने बेटे को जन्म दिया किन्तु कथंचित् पुत्र ने भी माँ को जन्म दिया है।

धर्म बड़ा है या विज्ञान ? इसका भी उत्तर यही है कि कथंचित् धर्म बड़ा है एवं कथंचित् विज्ञान बड़ा है। अपने–अपने स्थान पर दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। हाँ इतना अवश्य है कि अकेला विज्ञान विनाशकारी सिद्ध हो सकता है अतः विज्ञान पर धर्म का अंकुश जरूरी है। जैसे बेटे पर पिता का अंकुश बेटे के जीवन में विकास के नये–नये द्वार खोलता है वैसे ही धर्म द्वारा नियंत्रित विज्ञान जीवन में सर्वतोमुखी विकास करने में समर्थ होता है। जैसे अंकुश रहित हाथी और लगाम रहित घोड़ा बेकाबू हो जाता है वैसे ही धर्म रहित विज्ञान उच्छंखल हो जाता है।

आज के वैज्ञानिक से यदि यह पूछा जाए कि उसका लक्ष्य क्या है ? तो वह कहता है कि हम एक ऐसी रेलगाड़ी में बैठे हैं जिसका एक्सीलेटर तो निरंतर दबता जा रहा है किन्तु उसके ब्रेक पर कोई काबू नहीं है। पता नहीं आगे क्या होने वाला है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि अगर जीवन में सुख और शांति को पाना चाहते हैं तो बिना ब्रेक के विज्ञान पर धर्म का ब्रेक लगाना जरूरी है।

धर्म जीवन है और विज्ञान जीवन की गति है। धर्म जीवन का प्रयोग है तो विज्ञान प्रयोगशाला है। धर्म जीवन की बुनियाद है और विज्ञान जीवन का शिखर है। धर्म जीवन की शक्ति है और विज्ञान अभिक्रांति है। धर्म शाश्वत है और विज्ञान समय की आवश्यकता है। जब इस धरती पर भौतिक विज्ञान नहीं था धर्म तो तब भी था और जब भौतिक विज्ञान नहीं होगा धर्म तब भी रहेगा अर्थात् धर्म की सत्ता त्रैकालिक है।

जब जीवन में धर्म गौण होकर विज्ञान मुख्य हो जाता है तब जीवन कितना फीका व नीरस हो जाता है इसको समझने के लिए निम्न उदाहरण है–

अमेरिका में एक व्यक्ति ने पांच सितारा होटल की पंद्रहवीं मंजिल से कूदकर आत्म हत्या कर ली। उसने मरने से पूर्व पत्र में लिखा–मैंने जो चाहा मिल गया। अच्छी शिक्षा मिली, अच्छी पत्नी मिली नौकरी आदि सब मिल गया। अब

मेरे जीने की कोई चाह नहीं है अतः मैं आत्महत्या कर रहा हूँ। उसकी सूची में धर्म का नाम ही नहीं था इसलिए वह आत्महत्या करने को बाध्य हो गया। धर्म तो जीवन से हताश व्यक्ति को जीने की प्रेरणा देता है।

आज से सदियों पूर्व भगवान महावीर व उत्तरवर्ती आचार्यो ने आत्मा की प्रयोगशाला में बैठकर जिन तथ्यों की उद्घोषणा की थी वे आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। अल्बर्ट आइन्सटाइन की "थ्योरी आफ रिलेटिविटी (सापेक्षकता का सिद्धांत)" कुछ नया नहीं है। भगवान महावीर इन्हीं सब बातों को 2500 वर्ष पूर्व बता चुके हैं।

जहाँ पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक पैदा होते हैं वहीं भारत में तीर्थंकर ऋषि मुनि जन्म लेते हैं। ऋषि मुनि आत्मा की तह में जीने वाले होते हैं इसलिए वे विश्व को अध्यात्म का प्रसाद बाँटते हैं और वैज्ञानिक पुद्गल के तल पर जीते हैं इसलिए वे भौतिक संसाधनों का आविष्कार करते हैं।

भौतिक ज्ञान को **विज्ञान** कहते हैं, तत्त्व निर्णय को **दर्शन** कहते हैं। जिस मार्ग पर चलने से आत्मिक शान्ति मिलती है व शाश्वत सुख का मार्ग प्रशस्त होता है, उसको **धर्म** कहते हैं।

मूर्त की खोज–विज्ञान है। अमूर्त का अनुभव–धर्म है।

जो भी दृश्य या सूक्ष्म–दृश्य है–वह पुद्गल की पर्याय (Manifestation of Matter) है, जो संयोग/वियोग के गुण धर्म से जुड़ा है। परन्तु जो अदृश्य है वह चेतना है, अभौतिक है, शाश्वत है। यही चेतना ज्ञान और दर्शन के गुण से युक्त, आत्मा है।

जो अणु और परमाणु की शक्ति का चितेरा है–वह विज्ञान है। जो चेतना की शक्ति से आन्दोलित है वह धर्म है। विज्ञान–बाहर की खोज पर खड़ा है। धर्म आत्म अन्वेषण की अभिव्यक्ति है। परन्तु खोज चाहे बाहर की हो या भीतर की, कार्य–कारण सिद्धान्त पर खड़ी है।

1.1.1 विज्ञान कहता है-भगवान् से क्या लेना देना, हम तो प्रकृति का नियम खोजते हैं। जैनधर्म भी यही कहता है–हम उस नियन्ता को नमन करते हैं, जो भौतिक जगत से भिन्न अलौकिक है। हमारा नियन्ता–आत्म पुरुषार्थ है। जो हम कर रहे हैं, वही भोग रहे हैं। अच्छा या बुरा–किसी अन्य का दिया हुआ नहीं है, बल्कि हमारे ही कर्म और कर्म के फल हैं। कार्य और उसके फल का एक–दूसरे के साथ सीधा संबंध है, जो कर्म करने के पश्चात् उसी क्षण से मिलना प्रारम्भ हो जाता है।

1.1.2 जैन दर्शन की भाँति विज्ञान भी संसार को शाश्वत स्वयं सिद्ध मानता है। यदि जैनदर्शन में जड़ एवं चेतन दो मुख्य द्रव्य माने हैं, तो विज्ञान भी इन्हें जड़त्व (Inertial Mass) तथा ऊर्जा (Energy) से संबोधित करता है। दोनों का मूल सिद्धान्त है–जड़ चेतन का द्वैतवाद। परिणमन दोनों द्रव्यों का स्वभाव है। जो 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्त" है। जैनदर्शन का "उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य" सिद्धान्त विज्ञान का भी मूल सिद्धान्त है, जो Law of Conservation of Mass और Law of Conservation of Energy के नाम से जाने जाते हैं।

विज्ञान शक्ति है/ऊर्जा है, तो धर्म–जीवन की उस शक्ति को दिशा देता है। धर्म है–'विवेक की आँख'। विज्ञान के साथ यदि विवेक की आँख जुड़ जाये तो विज्ञान–'श्रेयस' बन जाता है। धर्म और विज्ञान में मित्रता चाहिए, समन्वय चाहिए।

अकेला विज्ञान–भोग संस्कृति परोस रहा है। वह आराम दे सकता है–आत्मिक सुख नहीं। जीवन में जहाँ विज्ञान की इति है, वहां से धर्म की शुरुआत है। एक विज्ञानी (Scientist) ऐसे 'धर्मयुग' की प्रतीक्षा में बैठा है, जो अंधविश्वासों की चुनौती स्वीकारता हुआ, परीक्षण एवं तथ्यों पर आधारित हो। सारांश है–कि आज विज्ञान का आध्यात्मीकरण चाहिए और अध्यात्म का विज्ञानीकरण हो।

1.1.3 जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। यह तथ्यों/तर्कों और आत्मपरीक्षण की कसौटी पर कसा हुआ धर्म है। यहाँ क्रियाकाण्ड को प्रश्रय नहीं है। कर्म सिद्धांत जो जैनदर्शन की रीढ़ है, वह सत्य/तथ्य परक विज्ञान की पृष्ठभूमि पर आधारित है।

1.1.4 जीवन–दोनों तरफ फैला है : बाहर भी, भीतर भी। इसलिए जीवन विज्ञान और धर्म दोनों से जुड़ा है। यदि विज्ञान–जीवन का वृक्ष है तो धर्म–उस वृक्ष का मूल है, जो उस वृक्ष में फल–फूल उगाने की सम्भावना लिए है। जीवन की सम्पूर्णता–दोनों के समन्वय में है। क्योंकि विज्ञान अभिमुख है–शक्ति की ओर, और धर्म संकल्पित है शांति के लिए। आवश्यकता है–उस अभिनव शक्ति की जो शांति/समता/आनंद से जुड़ी हो। आण्विक–शक्ति विज्ञान की उपलब्धि है जिसे ध्वंसात्मक और सृजनात्मक–दोनों बनाया जा सकता है यदि यह शक्ति–विवेक से जुड़ जाए तो सृजनशील हो सकती है और यही शक्ति निरंकुश हो जाए तो मानव के लिए संघातक है।

जैनधर्म की आध्यात्मिकता को विज्ञान की आँख से देखकर वैज्ञानिक–विश्लेषण निम्न तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है–

(1) धर्म और गणित।

(2) जैनधर्म में पुद्गल और आधुनिक परमाणुवाद।

(3) विज्ञान के आलोक में अमूर्त–पदार्थ (धर्म, अधर्म, आकाश और काल) की अवधारणाएँ।

(4) मंत्र/ध्यान एवं भाव–रसायन में विज्ञान की पहुँच।

(5) जैनधर्म और वनस्पति विज्ञान।

1.2 जैनधर्म और गणित—

कहा जाता है कि 'मेथेमेटिक्स इज द क्वीन ऑफ ऑल साइन्सेज–अर्थात् विज्ञान का मूल गणित है।

प्राचीन भारत में जैन दार्शनिकों / आचार्यों का गणित के क्षेत्र में वैज्ञानिक कार्य काफी महत्व रखता है। लोगरिथ्म का जनक सर जॉन नेपियर (ई. 15वीं शती) को मानते हैं। परन्तु दिगम्बर जैनों के प्राचीन ग्रंथ 'धवला' में (अर्धच्छेद) (लघुरिथ्म) की कल्पना ही नहीं की उसका गुणाकार, भागाकार लॉग टू डिफरण्ट बेसेजम e में उपयोग आदि का सुस्पष्ट रीति में विशद वर्णन है। ईसा की 9वीं शती में महावीराचार्य हुए, जिन्होंने 'गणितसार संग्रह' जैसा अप्रतिम ग्रंथ लिखा। नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती के 'गोम्मटसार' में वर्णित गणित को देखकर आश्चर्य होता है।

आज के संख्याशास्त्र का मूल जैन सिद्धांत में है। श्री पी. सी. महालनबीस ने ज्यूरिच में पठित अपने शोध–प्रबंध में कहा है कि आधुनिक सांख्यकी में मूलभूत सिद्धातों की तार्किक भूमिका हमें स्याद्वाद के तार्किक सिद्धांत में उपलब्ध होती है। जैनधर्म द्वारा नित्यत्ववाद, आधुनिक सांख्यकी के सम्भावनावाद (Theory of Probability) इकाई और समूह संबंध की धारणा, एसोसिएशन कोरिलेशन, कोनकोमिटेन्ट वेरिएशन का सिद्धान्त अनिश्चित परिणाम धारणा आदि विचारों की तार्किक पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। जैन ज्यामिती, बीजगणित एवं अंकगणित आदि का विस्तृत विवरण–'षट्खण्डागम' और 'जम्बूदीवपण्णत्ति संगहो ' की भूमिकाओं में दिया गया है।

1.3 जैन दर्शन में पुद्गल और आधुनिक विज्ञान का परमाणुवाद—

आचार्य उमास्वामी के "तत्त्वार्थसूत्र" के पाँचवे अध्याय में षड्द्रव्यों में अजीव (पुद्गल–Matter) आकाश (Space) काल (Time), धर्मद्रव्य (Non-Material, Media for Propagation of matter and Energy) तथा अधर्म–द्रव्य का 42 सूत्रों में पूर्णतया विज्ञान सम्मत वर्णन है।

पुद्गल (मूर्तिक/रूपी) के एक अविभाज्य कण को स्निग्ध या रूक्ष कणों के रूप में बताया गया है, जो ऋणात्मक

विद्युन्मय कण इलेक्ट्रॉन और धनात्मक विद्युन्मय कण पोजीट्रॉन कण है, जिनका परमाणु संरचना में मूलकणों के रूप में महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक विज्ञान–परमाणु की आन्तरिक संरचना में इलेक्ट्रॉन्स केन्द्रक से चारों ओर विभिन्न ऊर्जा स्तरों में तीव्र गति से घूमते रहते हैं।

स्कन्धों (Molecules) के निर्माण में यह सूत्र दृष्टव्य है–

''**स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः**'' अर्थात् स्निग्ध/रूक्षकण आपस में स्पृष्ट होते हैं और उनका बंध रूप परिणमन ही स्कन्ध की रचना करता है। प्रो. एडिंग्टन ने अपनी पुस्तक ''साइंस एण्ड कल्चर'' में इस तथ्य को उद्घाटित किया है। ''निगेट्रॉन–कण प्रोटोन की तरह भारी परन्तु ऋणात्मक विद्युन्मय हैं। वास्तव में यह रूक्ष कण का रूक्ष कण से सम्मिलन का उदाहरण है। इसी प्रकार पोजीट्रॉन कण परस्पर मिलकर प्रोटोन कण बनाते हैं, जो स्निग्ध का स्निग्ध कण से सम्मिलन का उदाहरण है।

'**न जघन्यगुणानाम्**'' जिनमें एक ही अंश स्निग्ध का अथवा रूक्ष का पाया जाता है, उनका परस्पर बंध नहीं होता। आधुनिक विज्ञान मानता है कि परमाणु संरचना में अंतिम ऊर्जा स्तर (लोएस्ट एनर्जी लेवल) के मूलकण आपस में नहीं मिलते। अतः रूक्ष या स्निग्ध कण स्वतंत्र अवस्था में भी पाये जाने चाहिए। प्रयोग–धातुओं को विद्युत द्वारा गर्म किए जाने पर निर्वात में, उनसे इलेक्ट्रॉन के पुंज निर्गत होते हैं। एण्डरसन ने कास्मिक किरणों को ऋण विद्युन्मय कणों का पुंज ही बताया है। ये प्रयोग सूत्र नं 33 को सत्यापित करती है।

1.4 पुद्गल द्रव्य की अन्य विशेषताएँ–

(1) **स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः**'' सभी पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण वाले होते हैं आधुनिक विज्ञान चार भौतिक प्रविधियों द्वारा जैन दर्शन में वर्णित आठ प्रकार के स्पर्श का ज्ञान कराता है–कठोर से (मृदु कठिन), घनत्व से (गुरू, लघु), ताप से (शीत, उष्ण), तथा रवे (Crystal) की संरचना में (स्निग्ध और रूक्ष)। रस के संबंध में लंदन के प्रो. विनिफ्रेड कूलिस ने अपने शोध निबंध में वर्णित किया कि जीभ पर स्वाद का प्रक्षेपण (Projection) लेन्स द्वारा देखा जा सकता है जैसे–मिष्ट स्वाद जीभ के अग्रभाग पर, कड़वा स्वाद जीभ के पिछले भाग पर अनुभव किया जाता है। जैनदर्शन में पाँच मूल रंगों का वर्णन है–नीला, पीला, सफेद, काला और लाल। सी. वी. रमन के वर्ण संबंधी प्रयोगों से उक्त तथ्य प्रमाणित है। जैसे–जैसे वस्तु का ताप बढ़ता है उत्सर्जित प्रकाश तरंगों की तरंग–दैर्ध्य के परिवर्तन से रंग परिवर्तित होते जाते हैं।

(2) **पुद्गल परमाणु की गतिशीलता**–जैनधर्म के अनुसार परमाणु में एक समय में चौदह राजू गमन करने की शक्ति बतलायी है। प्रकाश–पिण्डों का वेग 3×10^{10} सेमी प्रति सेकेण्ड नाप लिया गया है। ये प्रकाश–पिण्ड–फोटॉन कहलाते हैं, जो पुद्गल के रूप है। विद्युत चुम्बकीय तरंग आदि परमाणु की गतिशीलता के द्योतक है। परमाणु रचना में इलेक्ट्रॉन का अपने ओरविट्स में घूमते रहना, उक्त तथ्य का प्रमाण है।

(3) **पुद्गल अनन्त शक्ति का खजाना**–आइन्स्टाइन के संहति–ऊर्जा सूत्र ($E = mc^2$) जहाँ E = ऊर्जा, M = द्रव्यमान एवं C प्रकाशवेग है, ने यह सिद्ध कर दिया कि वस्तु का द्रव्यमान ऊर्जा में बदला जा सकता है–10 ग्राम यूरेनियम धातु, जब शक्ति में रूपान्तरित होती है तो 3 हजार टन कोयला जलाने जितनी उष्णता उत्पन्न होती है।

एनीहिलेशन ऑफ एनर्जी घटना द्वारा ऊर्जा को द्रव्यमान में बदला जा सकता है। डॉ. भाभा ने कांस्मिक किरणों के सैद्धान्तिक विवेचन में प्रकाशकण जो–(अल्फा) कणों से मिलकर बनते हैं शक्ति का रूप है। जब फोटॉन–अन्य शक्ति में परिवर्तित होता है, तब परिणाम में, अतिरिक्त ऊर्जा निकलती है। यह पुद्गल की शक्ति का द्योतक है।

(4) ''**शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोंद्योतवन्तश्च**'' सूत्र के अनुसार शब्द, बंध सूक्ष्मता, मोटापन, आकृति, भेद, तम (अंधकार), छाया, आपप, उद्योत (प्रकाश) ये सभी पुद्गल की पर्यायें हैं।

वैशेषिक दर्शन का मत है कि शब्द–आकाश द्रव्य का गुण है, परन्तु आधुनिक विज्ञान ने जैनदर्शन के सिद्धांत का समर्थन किया। ध्वनि ऊर्जा को बांधना, पकड़ना, प्रेषित करना, उसे सघन/विरल करना संभव है। छाया–प्रतिबिम्ब का रूप है तम–प्रकाश का अभाव नहीं है जैसा कणाद आदि दार्शनिकों ने कहा था, क्योंकि अंधकार में भी इनफ्रारेड और अल्ट्रा बैगनी किरणें गुजरती रहती हैं। जिनका प्रभाव फोटोग्राफिक प्लेट पर देखा जा सकता है।

(5) **जैन दर्शन का परमाणुवाद तथा क्वांटम फिजिक्स**–मूर्त पुद्गल का अमूर्त आत्मा के साथ बंधन संभव करने के उद्देश्य से ही भगवान महावीर ने मूर्त परमाणु को एक प्रदेशी कहा। परमाणु प्रदेश तथा आत्म प्रदेश के मिलन को बंध की संज्ञा दी। मूर्त द्रव्य (Mass) तथा अमूर्त द्रव्य (Energy) के बीच होने वाले बंध या Interaction के रहस्यों को जानने के उद्देश्य से ही सन् 1889 से 1925 के वर्षकाल में क्वांटम फिजिक्स का विकास हुआ। इसके अनुसार परमाणु एक प्रकार का Electron Cloud है जो न्यूनतम क्षेत्र में फैला है इस विद्युत फैलाव (Charge Distribution) का केन्द्र परमाणु है। यही विद्युत क्षेत्र 'परमाणु प्रदेश' है। परमाणु को 'एक प्रदेशी' कहना जैनाचार्यों की दूरदर्शिता, क्वांटम् फिजिक्स के ज्ञान को सिद्ध करता है।

1924 में 'डीब्रोली' (फ्रांसिसी वैज्ञानिक) ने (Wave Nature of Matter) का सिद्धान्त रखा, जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला था। इस सिद्धान्त के अनुसार परमाणु **द्विगुणी** है अर्थात् उसमें Mass तथा Energy दोनों के गुण है। भगवान महावीर का 'परमाणु प्रदेश' इसी सिद्धान्त का एक स्वरूप है।

1.5 विज्ञान के आलोक में अरूपी पदार्थों की अवधारणाएँ–

संसार सृष्टि के छह उपादानों में पुद्गल (Matter) केवल रूपी/मूर्त पदार्थ है शेष जीव (आत्मा), धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, काल और आकाश अरूपी पदार्थ हैं। इन षड्द्रव्यों में चार अरूपी अजीव द्रव्यों को आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त संक्षेप में यहाँ आख्यापित करते हैं।

(1) **धर्मद्रव्य**–(पंचास्तिकाय में धर्म द्रव्य का वर्णन इस प्रकार है)–

"यह न तो स्वयं चलता है, न किसी को चलाता है, केवल गतिशील जीव/अजीव स्कन्धों/अणुओं की गति में सहकारी एवं उदासीन कारण होता है। जीव के गमनागमन, अतिसूक्ष्म पुद्गलों के प्रसारित होने, मनोयोग, वचनयोग, काययोग तथा मनो/भाव वर्गणाओं में धर्मास्तिकाय निमित्त कारण है। यह वर्ण, रस, गंध और स्पर्श से रहित एक अखण्ड है और सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है।

सर्वप्रथम माइकेलसन वैज्ञानिक ने प्रकाश का वेग ज्ञात करते समय एक ऐसे ही अखण्ड–द्रव्य की परिकल्पना की थी, जो पूर्ण प्रत्यास्थ, लचीला, अत्यंत हल्का (Weightless) और प्रकाश कणों के चलाने में सहायक माध्यम की तरह व्यवहार करता है। उसका नाम 'ईथर' दिया जो धर्म द्रव्य के गुणों से साम्यता रखता है।

डॉ. ऐ. एस. एडिंग्टन ने अपनी पुस्तक ``The Nature of Physical World'' में तथा सापेक्षवाद के सिद्धांत का अध्ययन करते हुए उन्होंने ईथर को एक अभौतिक, लोकव्याप्त अखण्ड द्रव्य की मौजूदगी को स्वीकार किया।

(2) **अधर्म द्रव्य**–यह धर्मद्रव्य की भांति है–अखण्ड, लोक में परिव्याप्त घनत्व रहित, अभौतिक/अपरमाण्विक पदार्थ है। परन्तु गुण धर्म से स्थिति में सहायक कारण है आधुनिक विज्ञान में इसकी तुलना गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से की जा सकती है, क्योंकि लोक की वस्तुओं में ठहराव (Medium of Rest) गुरुत्वाकर्षण के कारण स्वीकार किया गया है।

(3) **आकाश द्रव्य**–इसका काम जीव/अजीव द्रव्यों को अवगाहना देना है और यह एक स्वतंत्र द्रव्य है। लोकाकाश में सभी द्रव्य रहते हैं और अलोक में आकाश के अतिरिक्त अन्य द्रव्य–धर्म, अधर्म, काल तथा जीव द्रव्य नहीं होते हैं।

आइन्स्टीन के विश्व विषयक सिद्धांत में समस्त आकाश अवगाहित है, परन्तु डच वैज्ञानिक 'डी. सीटर' का मानना है कि शून्य, (पदार्थ–रहित) आकाश की विद्यमानता की सम्भावना को सिद्ध करता है।

अनेकांतवाद के सिद्धान्त से आइन्स्टीन का विश्व–लोकाकाश की ओर संकेत करता है, जबकि डी. सीटर का विश्व–अलोकाकाश की ओर संकेत करता है।

वैज्ञानिक डॉ. पोइनकोर ने सांत आकाश और उसके परे क्या है, का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने विश्व को एक विशाल गोले के समान माना है जिसके केन्द्र में उष्ण तापमान है, जो सतह की ओर क्रमशः घटता जाता है और उसकी अंतिम सतह पर वास्तविक शून्य होता है। केन्द्र से सतह की ओर जाने पर पदार्थों का विस्तार क्रमशः कम होना प्रारंभ हो जायेगा और गति भी घटती जायेगी। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान आकाश द्रव्य की स्वतंत्र सत्ता को सिद्ध करता है।

(4) **काल द्रव्य**–पदार्थों के परिणमन में काल द्रव्य–उदासीन कारण होता है। आचार्य उमास्वामी ने 'कालश्च' सूत्र के द्वारा इसे स्वतंत्र द्रव्य माना। जिसका अविभागी कण–'समय' है। विज्ञान के कालाणु (Unit of time) को, एक इलेक्ट्रॉन को मंदगति से आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक जाने में लगा समय माना है ऐसा काल द्रव्य– "सोऽनन्त समयः" (40–5) अर्थात् वह कालद्रव्य अनंत समय वाला होता है।

प्रो. एडिण्टन ने कहा–"टाइम इज मोर टिपिकल ऑफ फिजिकल रिएलिटी दैन मैटर" (Time is more typical of Physical reality than matter)।

प्रत्येक वस्तु–तीन दैशिक (दिक्) आयामों के साथ चौथे 'काल' आयाम से भी युक्त होती है, अतः वस्तु को काल से पृथक् अस्तित्व वाला नहीं मान सकते। मिन्को के चतुर्थ आयाम सिद्धांत (Four Dimensional theory) ने एक नयी दृष्टि देकर वस्तु के परिवर्तन में 'समय' आयाम को भी सम्मिलित किया है। जैन दर्शन भी यही कहता है–

"वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य"।।22–5।। तत्त्वार्थसूत्र।

अर्थात् काल द्रव्य का उपकार–वर्तना (ध्रौव्य), परिणाम और क्रिया आदि है। पदार्थ की आयु का विस्तार और संकुचन–परत्व/अपरत्व है। आयु की दीर्घता का अल्पता में और अल्पता का दीर्घता में बदल जाना परत्व/अपरत्व है।

एक वैज्ञानिक उदाहरण से यह स्पष्ट किया जाता है :

एक नक्षत्र की पृथ्वी से दूरी 40 प्रकाश वर्ष है अर्थात् पृथ्वी से वहाँ तक प्रकाश को जाने में 40 वर्ष लगेंगे। प्रकाश वेग = 30 लाख किमी/सेकण्ड है। यदि एक रॉकेट 2 लाख 40 हजार कि.मी./से. वेग से चले तो 50 वर्ष में वहाँ पहुँचेगा। परन्तु काल का संकुचन (जगेराल्ड के संकुचन नियमानुसार) 10.6 के अनुसार $6 \times 50 / 10 = 30$ वर्ष ही लगेंगे।

इस प्रकार काल–गति से भी प्रभावित होता है।

श्वेताम्बर परम्परा में काल को–औपचारिक द्रव्य के रूप में जीव/अजीव की पर्याय माना, जबकि दिगम्बर परम्परा में स्पष्ट वास्तविक द्रव्य माना है।

लोगागासपदेसे एक्केक्के जेट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंख दव्वाणि।।

अर्थात् कालाणु, रत्नराशि के समान लोकाकाश के एक–एक प्रदेश में एक एक रूप में स्थित है। सापेक्ष विवेचन करें तो विशेष मतभेद नजर नहीं आता। क्योंकि वर्तना परिणामादि–काल के लक्षण भी हैं और पदार्थ की पर्यायें भी। पर्यायें–पदार्थरूप ही होती है।

काल को निश्चय काल और व्यवहार काल के रूप में परिगणित किया जाता है 'कालाणु' निश्चय काल है, जबकि

समयादि का विभाजन–व्यवहार काल हैं

व्यवहार काल की गणना आगम में इस प्रकार की गयी है–

(1) संख्यात समय = 1 आवलिका।

(2) संख्यात आवलिका = 1 उच्छ्वास (प्राण)

(3) 7 प्राण = 1 स्तोक

(4) 7 स्तोक = 1 लव

(5) 7 लव = 1 मुहूर्त = 48 मिनट

1.6 मंत्र/ध्यान/भावरसायन–

जिन ध्वनियों का घर्षण होने से दिव्य ज्योति प्रकट होती है, उन ध्वनि–समुदाय को मन्त्र कहा जाता है। ऊँ, ह्रीं, क्लीं, ब्लूं आदि बीजाक्षर हैं, इनमें विस्फोटक शक्ति होती है। इनके अर्थ नहीं होते, बल्कि इनके उच्चारण से अद्‌भुत शक्ति की तरंगे, उद्‌गम होती हैं।

मंत्र–शब्द–उच्चारण का विज्ञान है। जो कषाय–भावों को मंद (विरल) बनाता है तथा अशुभ भावों को शुभ भावों में बदल देता है।

ऊँ शब्द का लम्बा जोर से उच्चारण बहुत वैज्ञानिक है।

इससे मूलाधार से नाड़िया व अपान वायु ऊपर की ओर खिंचती है साथ ही प्राण वायु अंदर जाती है। नाभि केन्द्र (जहां मणिपुर चक्र होता है) हल्के से पीठ की ओर दबता है तथा हृदय के पास अनाहत चक्र होता है, जहाँ प्राण वायु का कुम्भक होता है। 'ह्रीं' के उच्चारण से भी मणिपुर चक्र पर विशेष दबाव पड़ता है। ये ऊर्जा केन्द्र हैं–इससे शरीर की आभा बढ़ती है।

णमोकार मंत्र में 'ण' का 10 बार उच्चारण होता है।

'ण' बोलने से जीभ की नोंक का पिछला भाग, तालु से लगकर रगड़ता है। तालु मस्तिष्क की निचली परत है। लयबद्ध घर्षण से तालु व जीभ कोशिकाओं में क्षोभशीलता व कपाली–तंत्रिकाओं में परिस्पंदन होता है। जीभ ऋण व तालु धन विद्युत का केन्द्र माना जाता है।

इन दोनों के घर्षण से–धन व ऋण विद्युत का मिलन होने से ऊर्जा का निर्माण होता है, जो आज्ञा चक्र को जाग्रत करता है और नाड़ियाँ उनसे भर जाती हैं। योगीजन की दिव्यता का यही कारण होता है। उनकी संपूर्ण नाड़ियां अमृत से सम्पूरित हो जाती हैं। जिससे साधक–दृढ़ इच्छा शक्ति वाला, नियंत्रक, कुशाग्र, बुद्धि/निर्णय क्षमता वाला बनता है।

णमोकार मंत्र के जाप्य से साधक श्रुतज्ञान के विकल्प ध्यान से आगे उठता हुआ निर्विकल्प ध्यान की ओर बढ़ता है।

इस प्रकार 'णमोकार' मंत्र की वैज्ञानिकता असंदिग्ध है।

1.7 जैनधर्म और वनस्पति विज्ञान–

तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में जीव सृष्टि का वर्गीकरण दिया गया है। एकेन्द्रिय प्राणी पांच वर्गों में विभाजित किये गये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। पहले चार के संबंध में इन्हें चेतनारूप मानने में विज्ञान मौन है, जबकि जैनदर्शन उनमें जीवत्व मानता है। डॉ. जगदीश चन्द्र वसु के प्रायोगिक परीक्षणों के उपरान्त वनस्पतियों में जीवत्व, भाव–विभाव, अच्छ–बुरे का ज्ञान, आज का विज्ञान मानने लगा है।

1.8 धर्म और आधुनिक विज्ञान—

वर्तमान युग विज्ञान का युग कहलाता है, क्योंकि जिन वस्तुओं की हमारे पूर्वजों ने कभी कल्पना भी नहीं की थी, वैज्ञानिकों ने उनको मूर्तरूप दे दिया है। आज का मनुष्य, विशेष कर युवा वर्ग, प्रत्येक बात को विज्ञान की कसौटी पर कस कर देखता है, कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह बात ठीक है या गलत है। अब हम इसी सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

धर्म का लक्ष्य हमें सच्चा सुख प्राप्त कराना है। विज्ञान का लक्ष्य भी मनुष्य को अधिक से अधिक शारीरिक सुख प्राप्त कराना है। साधारण दृष्टि से देखने पर दोनों का लक्ष्य एक ही दिखलाई देता है; परन्तु कुछ अधिक गहराई से विचार कर हमें पता चलेगा कि सुख के सम्बन्ध में दोनों की मान्यताएँ भिन्न–भिन्न हैं। धर्म का लक्ष्य एक प्रकार का अनुपम, अतीन्द्रिय, सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त कराना है। धर्म ऐसे सच्चे व स्थायी सुख की प्राप्ति का विश्वास दिलाता है, जो स्वाधीन है तथा जिसके लिये किसी भौतिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं है, अतः इसके द्वारा प्रदत्त सुख, निर्बल व बलवान, निर्धन व धनवान सबकी पहुँच के भीतर है, जबकि विज्ञान द्वारा प्रदत्त शारीरिक सुख पराधीन होता है, क्योंकि उसके लिये भौतिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। अतः विज्ञान के द्वारा प्रदत्त सुख का उपभोग केवल भौतिक साधनों से सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। एक बात और धर्म संसार के प्रत्येक प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या छोटा सा कीट–पतंग, सबके लिये सच्चे सुख का मार्ग दिखलाता है; जबकि विज्ञान का लक्ष्य केवल मनुष्य मात्र तक ही सीमित है। धर्म के माध्यम से प्राप्त सुख से किसी भी अन्य प्राणी को तनिक सा भी कष्ट नहीं मिलता, जबकि विज्ञान के द्वारा प्रदत्त बहुत से शारीरक सुख तो पशु जगत के कष्टों–उनकी हिंसा पर ही आधारित होते हैं।

एक तथ्य और भी ध्यान देने योग्य है। विज्ञान के द्वारा प्रदत्त सुख के साधनों से, सुख के साथ–साथ कष्ट मिलने की भी सम्भावना रहती है; जैसे विज्ञान ने मनुष्य की सुख–सुविधा के लिये उसे विद्युतशक्ति दी, परन्तु इसी विद्युत–स्पर्श से हम प्रतिदिन मनुष्यों को मरते हुए भी देखते हैं। विज्ञान ने मनुष्यों को ईंधन से चलने वाले वाहन दिये, परन्तु उन वाहनों से निकलने वाले धुंए ने पृथ्वी के वायुमण्डल को ही दूषित कर दिया है, जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये खतरा उत्पन्न हो गया है। इसी विज्ञान ने मनुष्य की सुख–सुविधा के लिये वायुयान दिये परन्तु उन्हीं वायुयानों की दुर्घटनाओं के फलस्वरूप हजारों व्यक्तियों की मृत्यु होती रहती है अतः हम देखते हैं कि विज्ञान अभी तक हमको निरापद तथा व्यवधान–रहित सुख देने में समर्थ नहीं हो सकता; जबकि चौथी विचारधारा हमको निरापद तथा शाश्वत सुख प्राप्त कराने का उद्घोष करती है।

एक सबसे महत्त्वपूर्ण बात और भी है। धर्म अपने अनुयायियों पर अहिंसा तथा विवेक का अंकुश रखता है, अतः इस विचारधारा के द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का तनिक सा भी कष्ट पहुँचाने का भय नहीं है। परन्तु विज्ञान पर अभी तक कोई अंकुश नहीं है, अतः उससे जितना सुख मिलने की आशा है उससे अधिक कष्ट मिलने की संभावना है। वैज्ञानिकों ने वायुयान मनुष्य की सुख–सुविधा के लिये बनाये थे परन्तु उन्हीं वायुयानों से मनुष्य पर मौत और आग बरसायी जा रही है। जो विज्ञान मनुष्य को सुख और सुविधा पहुँचाने के लिये नये–नये अनुसंधान और आविष्कार करता है, उसी विज्ञान ने ऐसे बम तैयार किये जिनसे हिरोशिमा और नागासाकी जैसे नगर देखते–देखते ही नष्ट भ्रष्ट हो गये, वहाँ के हजारों नागरिक कुछ ही क्षणों में काल के गाल में समा गये और उनसे भी अधिक व्यक्ति सदैव के लिये अपंग तथा असाध्य रोगों से ग्रस्त हो गये। और आज तो वैज्ञानिकों ने उन बमों से भी हजारों गुने अधिक शक्तिशाली बम तैयार कर लिये हैं। आज विभिन्न राष्ट्रों के पास इतने बम इकट्ठे हो गये हैं कि उन बमों से हमारी जैसी एक नहीं, अपितु ऐसी कई–कई पृथ्वियाँ, कुछ क्षणों में नष्ट भ्रष्ट हो सकती हैं। इन तथ्यों को देखते हुए आज के बुद्धिजीवी सोच रहे हैं कि यदि विज्ञान पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं लगा, तो कदाचित् ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण समय आ जाये, जब कि

कुछ ही व्यक्तियों के अविवेकपूर्ण निर्णय से यह पृथ्वी ही नष्ट–भ्रष्ट हो जाये।

इन सब तथ्यों को देखते हुए हमें यह निर्णय करना है कि हमें धर्म के द्वारा प्रदत्त स्वाधीन, सच्चा व स्थायी तथा विश्व के समस्त प्राणियों के लिये ये निरापद सुख प्राप्त करना है, जिसका मार्ग संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये खुला है।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय किसी भी तरह से वैज्ञानिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कम करना नहीं है। उस पर अहिंसा धर्म का अंकुश अपेक्षित है ताकि वैज्ञानिक अनुसंधानों का सृजनात्मक उपयोग ही हो।

1.9 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—धर्म दर्शन व विज्ञान से क्या अभिप्राय है ?

प्रश्न 2—जैन धर्म और गणित विज्ञान का सम्बन्ध बताइये ?

प्रश्न 3—जैन धर्म और वनस्पति विज्ञान का सम्बन्ध बताइये ?

प्रश्न 4—विज्ञान पर धर्म नीति का अंकुश आवश्यक है इसको स्पष्ट करें ?

पाठ-2—आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि

2.1 आत्मा के स्वरूप को समझने के लिए हम जब भी उद्यत होते हैं तो सबसे पहले हमारा सामना इस विकराल समस्या से होता है कि आत्मा कुछ है भी या नहीं ? क्या प्रमाण है आत्मा के अस्तित्व का ? किसने देखा है आत्मा को? इतना विकसित आधुनिक विज्ञान भी आत्मा को क्यों नहीं सिद्ध कर पा रहा है ? इत्यादि–इत्यादि।

कुछ लोग इन्हीं प्रश्नों से परेशान होकर स्वयं को नास्तिक तक कह देते हैं। कह देते हैं कि हम आत्मा को नहीं मानते और उसके बाद वे आत्मा का स्वरूप जानने का कभी कोई ईमानदार प्रयत्न ही नहीं कर पाते। किन्तु परेशान होकर कोई भी उल्टी–सीधी धारणा बना लेने से तो काम नहीं चलेगा। प्रश्न हैं तो उनके उत्तर भी खोजने ही होंगे।

इस जगत् में दो प्रकार की सत्ताएँ (वस्तुएँ / पदार्थ) हैं–एक मूर्तिक और दूसरी अमूर्तिक। मूर्तिक सत्ता भौतिक है, स्पर्श–रस–गन्ध–वर्णादिमान् है, अतः हम उसे अपनी इन्द्रियों द्वारा आसानी से जान लेते हैं उसके अस्तित्व और स्वरूप के सम्बन्ध में हमें कोई शंका नहीं रहती; परन्तु अमूर्तिक सत्ता स्पर्श–रस–गन्ध–वर्णादि से सर्वथा रहित होती है, उसे हम–आप कोई भी किसी भी इन्द्रिय के द्वारा नहीं जान सकते हैं; न तो हम उसे देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न सूँघ सकते हैं, न चख सकते हैं और न ही छू सकते हैं।

ऐसी स्थिति में अमूर्तिक वस्तुओं की सत्ता को जानना थोड़ा कठिन कार्य हो जाता है, किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि यह कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं। तथा कठिन भी बहुत अधिक नहीं है, अनभ्यास के कारण मात्र अभी हमें कठिन लगता भर है।

2.2 आत्मा अमूर्तिक वस्तु है—

आत्मा अमूर्तिक वस्तु है, स्पर्श–रस–गन्ध वर्णादि से रहित ही है, उसे हम–आप अपनी किसी भी इन्द्रिय द्वारा नहीं जान पाते हैं; अतः उसके अस्तित्व और स्वरूप में शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है, किन्तु इस शंका का समाधान होना कठिन नहीं है। जिस प्रकार अनेक अप्रत्यक्ष (परोक्ष) वस्तुओं को हम युक्ति और आगम द्वारा भलीभाँति जान लेते हैं, उसी प्रकार आत्मा को भी हम युक्ति और आगम के द्वारा भलीभाँति जान सकते हैं, भले ही वह हमें किसी भी इन्द्रिय से नहीं ज्ञात होता है।

युक्ति और आगम को भी, वस्तु का ज्ञान कराने में इन्द्रियों से कम उपयोगी अथवा कम प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार इन्द्रियाँ वस्तुओं का ज्ञान कराने में सहायक होती हैं, उसी प्रकार युक्ति और आगम भी वस्तुओं का ज्ञान कराने में बड़े सहायक होते हैं।

इतना ही नहीं, यदि ऐसा भी कहा जाए कि युक्ति और आगम तो वस्तुस्वरूप को जानने हेतु इन्द्रियों से भी अधिक प्रामाणिक साधन हैं तो अनुचित नहीं होगा, क्योंकि अनेक बार इन्द्रियों से गलत ज्ञान होते हुए हम देखते ही हैं और तब युक्ति एवं आगम से हुए ज्ञान को ही प्रामाणिक मानते हैं, अतः वर्तमान इन्द्रिय–प्रत्यक्ष के द्वारा ही सब–कुछ जानने का आग्रह रखना मिथ्या आग्रह (दुराग्रह) है, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा सब–कुछ जानना सम्भव ही नहीं है। लोक में भी अनेक बार हम कुछ मूर्तिक वस्तुओं को भी अपनी चक्षु आदि इन्द्रियों से नहीं जान पाते हैं और युक्ति एवं आगम से ही जानते हैं।

2.3 अमूर्तिक आत्मा के अस्तित्व और स्वरूप को जानने की विधि—

अमूर्तिक आत्मा के अस्तित्व और स्वरूप को जानने के लिए हमें सर्वप्रथम उसे इन्द्रियों से जानने का आग्रह छोड़कर, इन्द्रियों से कुछ ऊपर उठने का प्रयत्न करना चाहिए, ठोस युक्ति और समीचीन आगम का अवलम्बन लेना चाहिए। सभी प्राचीन आत्मज्ञ ऋषि–मुनियों ने आत्मा के अस्तित्व को इसी प्रकार सिद्ध कर दिखाया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यह आत्मा अरस है, अरूप है, अगन्ध है, अव्यक्त है और चेतनागुण सहित है, इसका कोई प्रकट संस्थान नहीं

है, अतः इसे इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता है–यह अतीन्द्रिय है। यथा–

''अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।''

अर्थात् जो रस रहित है, रूप रहित है, गन्धरहित है, अव्यक्त है, चेतनागुण से युक्त है, शब्दरहित है, किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं होता और जिसका कोई एक निश्चित आकार बनाया नहीं जा सकता है, उसे जीव जानो।

यह आत्मा अरस, अरूप इत्यादि है, अतएव इसे किसी प्रकार के शस्त्रादि से काटा नहीं जा सकता, अग्नि आदि से जलाया नहीं जा सकता, जलादि द्वारा गलाया नहीं जा सकता और हवा द्वारा सुखाया भी नहीं जा सकता है। जैसा कि 'गीता' के श्लोकों में जगत् प्रसिद्ध है–

''नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुचरलोऽयं सनातनः।।''

अर्थात् इस आत्मा को शस्त्र नहीं छेद सकते हैं, अग्नि नहीं जला सकती है, पानी भी नहीं गला सकता है और हवा भी नहीं सुखा सकती है; यह तो अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है; यह नित्य सर्वगत, स्थाणु अचल और सनातन है।

'आचारांग' नामक श्वेताम्बर जैनागम में भी ऐसा ही कहा है–

''से ण छिज्जइ, ण भिज्जइ, ण डज्झइ, ण हम्मइ कंचणं सव्वलोए।।''

आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि हेतु शास्त्रों में अनेकानेक युक्तियाँ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की गई हैं। उनमें से कुछ प्रमुख युक्तियाँ निम्नानुसार हैं। यदि सावधानीपूर्वक इन्हें ही समझने का प्रयत्न किया जाए तो अवश्य ही आत्मा के अस्तित्व में कोई शंका नहीं रहेगी।

2.4 न्याय–वैशेषिक दर्शन के ग्रंथों में आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि हेतु निम्नलिखित अनेक तर्क प्रमाण दिये गये हैं–

(क) हित पदार्थ के पाने का और अहित पदार्थ के छोड़ने का व्यापार मनुष्य के शरीर में हमेशा पाया जाता है। इससे शरीर के भीतर किसी चेतन पदार्थ की सत्ता का संकेत मिलता है। जैसे रथ के व्यापार से रथ के भीतर सारथी रूप चेतन पदार्थ का अनुमान होता है, वैसे ही शरीर के व्यापार से जिस चेतन पदार्थ का अनुमान किया जाता है, वही आत्मा है (व्यापार)।

(ख) श्वास–प्रश्वास से शरीर फूलता है तथा संकुचित होता है। यह किसी चेतन पदार्थ के द्वारा ही किया जाता है। जैसे लोहार की भाथी (भास्त्रिका या धोंकनी) का फूलना और संकुचित होना (भास्त्रिका या धोंकनी)फूँकने वाले प्राणी के व्यापार से होता है (प्राणापान)।

(ग) कुएँ में मोट का गिरना तथा उठना मोट खींचने के व्यापार से होता है। ठीक उसी प्रकार आँख की पलक का गिरना तथा उठना चेतन व्यक्ति का ही व्यापार है (निमेषोन्मेष)।

(घ) शरीर में घाव लगता है और दवा करने पर फिर भर जाता है। यह शरीर में स्थित आत्मा के द्वारा हो सकता है, जैसे घर में रहने वाला घर की मरम्मत करता है (जीवन)।

(ङ) मन को प्रेरित करने वाला भी आत्मा ही है। जैसे बालक अपनी इच्छा से गोली या गेंद इधर–उधर फेंकता है, उसी प्रकार आत्मा भी मन को अपनी इच्छा के अनुसार इधर–उधर दौड़ाया करता है (मनोगति)।

(च) मीठे आम को देखकर मुँह में पानी भर आता है। इसका कारण क्या है ? किसी रूपविशेष के साथ रसविशेष का अनुभव पहले हो चुका है और उसी की स्मृति वर्तमान दशा में हो रही है। अनुभव तथा स्मृति का आश्रय एक ही होना चाहिए। सब इन्द्रियों का अधिष्ठाता एक ही चेतन है और वही आत्मा है।

(छ) सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष तथा प्रयत्न गुण हैं, अतः इनका कोई आश्रय द्रव्य होना ही चाहिए। जड़ होने से शरीर वह आश्रय नहीं हो सकता, चेतन आत्मा ही इसका आश्रय होता है। इन गुणों के आश्रय होने से भी आत्मा की सिद्धि होती है।

जैन ग्रंथों में तो अत्यन्त विस्तारपूर्वक निम्नलिखित युक्तियों द्वारा आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि की गई है–

युक्ति 1–स्पर्शनादि इन्द्रियाँ तो माध्यम हैं, वे स्वयं नहीं जानती, क्योंकि वे चश्मा आदि उपकरणों के समान अचेतन हैं; अतः इन इन्द्रियों के माध्यम से जो कोई अन्य जानता–देखता है, वही आत्मा है।

युक्ति 2–जिस प्रकार रथ की क्रियाओं का अधिष्ठाता सारथी होता है; उसी प्रकार इस शरीर की क्रियाओं का अधिष्ठाता आत्मा है अन्यथा शरीर तो साक्षात् अचेतन है। उदाहरणार्थ, हम देखते हैं कि जो शरीर वर्षों तक ठीक रहता है, वही आत्मा के शरीर से चले जाने पर कुछ ही घण्टों में सड़ने–गलने लगता है।

युक्ति 3–'मैं सुखी, मैं दुःखी' इत्यादि प्रकार से जो 'अहं–प्रत्यय' होता है, उससे भी आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है।

युक्ति 4–'आत्मा' शब्द (सार्थक) है तो 'आत्मा' के नाम का अर्थ भी अवश्य होना चाहिए। जिनका अस्तित्व नहीं होता, उनके वाचक शब्द भी नहीं होते।

युक्ति 5–'अजीव' शब्द से ही जीव अर्थात् आत्मा की सिद्धि हो जाती है, क्योंकि जीव का निषेध जीव के अस्तित्व का अविनाभावी है अर्थात् यदि जीव की सत्ता न हो तो 'अजीव' शब्द ही नहीं बन सकता।

युक्ति 6–गुण (सुख, दुःख, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि) गुणी के बिना नहीं रह सकते। चूँकि ज्ञान–दर्शन आदि गुण पाये जाते हैं, अतः उनका स्वामी (गुणी) भी होना ही चाहिए, वह गुणी आत्मा है।

युक्ति 7–हर क्रिया का भी कोई–न–कोई कर्ता अवश्य होता है, अतः जाननेरूप क्रिया का कर्ता भी अवश्य होना चाहिए और वही आत्मा है।

युक्ति 8–उपर्युक्त प्रमुख युक्तियों के अतिरिक्त स्याद्वादमंजरी, तत्त्वार्थवार्तिक आदि कतिपय ग्रंथों में एक अकाट्य युक्ति यह भी प्रस्तुत की गई है कि बताइए 'यह आत्मा है'–ऐसा जो हमको अनुभवात्मक ज्ञान होता है, वह क्या है? संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय या सम्यग्ज्ञान ? कोई एक तो अवश्य होगा। यदि संशय है तो भी आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है क्योंकि अवस्तु का संशय नहीं होता। यदि विपर्यय है तो भी आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है क्योंकि सर्वत्र अप्रसिद्ध पदार्थ का विपर्यय नहीं होता। अनध्यवसाय तो हो नहीं सकता क्योंकि अनादिकाल से प्रत्येक व्यक्ति आत्मा का स्पष्ट अनुभव करता है। तथा यदि सम्यग्ज्ञान है तब तो वह आत्मा के अस्तित्व का साधक है ही।

इस प्रकार अनेक अकाट्य युक्तियों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने के बाद भी कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा इस पौद्गलिक शरीर से भिन्न नहीं है अपितु इसी की एक विशिष्ट क्रिया चेतनारूप में प्रतीत होती है तथा उस चेतना का उत्पाद–विनाश भी शरीर के ही जन्म–मरण तक सीमित रहता है।

किन्तु यह मत भी किंचिदपि युक्तिसंगत सिद्ध नहीं होता, शरीर और चेतना में सर्वथा भेद है, दोनों के गुण–धर्म सर्वथा भिन्न–भिन्न हैं; अतः शरीर और चेतन–इन दोनों को भिन्न–भिन्न दो द्रव्य मानना ही उचित है।

इस प्रकार विविध युक्तियों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध हो जाने के उपरान्त यह स्वयमेव सिद्ध हुआ मान लेना चाहिए कि आत्मा भी सत् है, अस्तित्वमय है, एक स्वतन्त्र द्रव्य है; अतः उसमें भी वे सभी सामान्य गुण पाये जाते हैं, जो किसी भी सत् या सत्तारूप वस्तु में पाये जाते हैं।

2.5 आत्मा स्वभावतः अनादि–अनन्त है—

आत्मा स्वभावतः अनादि–अनन्त है, उसकी सर्वथा न उत्पत्ति होती है और न ही नाश, किन्तु वह सर्वथा कूटस्थ भी नहीं है, उसमें सतत परिणमन भी पाया जाता है। अन्य वस्तुओं की भाँति वह भी नित्यानित्यात्मक है। उसमें निरन्तर उत्पाद (नई अवस्था का आगमन) और व्यय (पुरानी अवस्था का नाश) होता रहता है, फिर भी स्वभाव की अपेक्षा वह नित्य स्थायी भी बना रहता है।

आत्मा को सामान्य–विशेषात्मक भी कहा जा सकता है; उसमें यद्यपि अनन्तानन्त गुण–पर्यायें रहती हैं तथापि वह एक अखण्ड–अभेद रहता है। संख्यापेक्षा भी वे आत्माएँ अनन्त हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आत्मा का अस्तित्व है और जगत् के अनन्तानन्त पदार्थों की भाँति वह भी एक अनादि अनन्त सामान्य–विशेषात्मक सत्तारूप वस्तु है।

2.6 दर्शन और विज्ञान—

आज का युग वैज्ञानिक युग है। लोग विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित और चमत्कृत हैं। बात–बात पर विज्ञान की बात करते और पूछते हैं। अतः जब भी हम कोई दर्शनशास्त्र की बात करते हैं, तब भी वे तुरन्त 'विज्ञान इस विषय में क्या कहता है' अथवा 'इसका वैज्ञानिक आधार/प्रमाण क्या है'–इत्यादि प्रकार की बातें करने लग जाते हैं।

विचारणीय है कि दर्शन और विज्ञान में क्या अन्तर है ? क्या दर्शन भी विज्ञान ही नहीं है ?

वास्तविकता यह है कि दर्शन भी विज्ञान ही है, दर्शन और विज्ञान में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है; क्योंकि दोनों ही तर्क, युक्ति या परीक्षा से प्राप्त निष्कर्षों को ही स्वीकार करने पर जोर देते हैं।

वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि जिसे आधुनिक युग में 'विज्ञान' कहते हैं, उसे ही प्राचीन युग में 'दर्शन' कहा जाता था, अतः दर्शन भी वस्तुतः विज्ञान ही है और विज्ञान भी वस्तुतः दर्शन ही है, दोनों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। मात्र 'प्राचीन' और 'आधुनिक' का ही इन दोनों में अन्तर आज हो गया है। 'विज्ञान' नाम भी वस्तुतः कोई नया नहीं है, दर्शन–ग्रंथों में पहले से ही अनेक स्थानों पर 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे–जैनदर्शन को 'वीतराग–विज्ञान' शब्द से बहुत बार सम्बोधित किया गया है। यथा–

(क) मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान।

(ख) 'तीन भुवन में सार, वीतराग–विज्ञानता।

(ग) 'जय वीतराग–विज्ञान पूर।

(घ) 'वन्दूँ श्री अरिहंत पद, वीतराग–विज्ञान।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शास्त्रों में 'दर्शन' के लिए 'विज्ञान' शब्द का भी प्रयोग होता रहा है और उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि दर्शन और विज्ञान में वस्तुतः कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

2.7 धर्म और दर्शन में अन्तर—

डॉ. दरबारीलाल कोठिया ने धर्म और दर्शन का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया है–

"सब जीवों पर दया करो, किसी जीव की हिंसा न करो, सत्य बोलो, असत्य मत बोलो, आदि विधि और निषेध रूप आचार का नाम धर्म है। किन्तु जब इसमें 'क्यों' का सवाल उठता है तो उसके उत्तर में कहा जाता है कि जीवों पर दया करना कर्त्तव्य है, गुण (अच्छा) है, पुण्य है और इससे सुख मिलता है, किन्तु जीवों की हिंसा करना अकर्त्तव्य है, दोष है, पाप है और उससे दुःख मिलता है; इसी तरह सत्य बोलना कर्त्तव्य है, असत्य बोलना दोष है, पाप है और उससे दुःख प्राप्त होता है। इस प्रकार के विचार दर्शन कहे जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि धर्म तो सीधे–सीधे विधि–निषेध का उपदेश देता है, किन्तु दर्शन उस विधि–निषेध की अनेक तर्कों या प्रमाणों द्वारा भली–भाँति परीक्षा करता है, हमें सयुक्ति समझाता है कि वैसा ही विधि–निषेध क्यों समीचीन है, उससे भिन्न या विपरीत क्यों नहीं।

इस प्रकार धर्म को ठोस आधार देने का काम दर्शन करता है। दूसरे शब्दों में हम ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म की अनेक प्रमाणों द्वारा युक्तिसंगत परीक्षा करना ही तो दर्शन है। दर्शनशास्त्र का उद्‌भव ही वस्तुतः इसलिए हुआ प्रतीत होता है कि निर्दिष्ट धर्म की पूर्णतः निष्पक्ष होकर सप्रमाण परीक्षा की जाए। स्पष्ट है कि यही कार्य आधुनिक विज्ञान का भी है, वह भी निर्दिष्ट विषय की पूर्णतः निष्पक्ष होकर सप्रमाण परीक्षा करता है। इससे सिद्ध होता है, कि दर्शन और विज्ञान में मूलतः कोई अन्तर नहीं है, दोनों वस्तुतः एक ही हैं।

इस प्रकार यदि देखा जाए तो दर्शन और विज्ञान दोनों पर्यायवाची हैं, एक ही विधा के दो नाम हैं, उनमें प्रकृतिगत कोई अन्तर नहीं है। अतः हमेशा हर बात को मात्र आधुनिक विज्ञान द्वारा समर्थित होने पर ही स्वीकार करने का आग्रह रखना उचित नहीं है। अपितु सर्वत्र तार्किकता या युक्तिसंगतता को ही विशेष महत्त्व देना उचित है, क्योंकि वही हमें अज्ञानता या अन्धविश्वास से मुक्ति दिलाकर सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ है।

दर्शन और विज्ञान में इस प्रकार कोई मौलिक अन्तर न होते हुए भी, आधुनिक विज्ञान और दर्शनशास्त्र में आज बड़ा अन्तर देखने में आता है। एक तो स्पष्ट अन्तर यह आ गया है कि आधुनिक विज्ञान मात्र मूर्तिक पदार्थों के विषय में ही अध्ययन–अनुसंधान करता है, किन्तु दर्शनशास्त्र मानता है कि इस जगत् में दो प्रकार के पदार्थ हैं–1. मूर्तिक और 2. अमूर्तिक। तथा वह इन दोनों का ही अध्ययन प्रस्तुत करना अपना परम कर्तव्य समझता है। यही कारण है कि दर्शनशास्त्र के ग्रंथों में मूर्तिक और अमूर्तिक दोनों ही प्रकार के पदार्थों का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होता है।

दर्शनशास्त्र का मानना है कि जब जगत् में दो प्रकार के पदार्थ हैं–मूर्तिक और अमूर्तिक, तब दोनों का ही तो अध्ययन करना आवश्यक है, उनमें से किसी भी एक को छोड़ा कैसे जा सकता है ? तथा यदि छोड़ दिया जाए तो वह अध्ययन पूर्ण अध्ययन नहीं माना जाएगा।

यदि कोई कहे कि अमूर्तिक पदार्थ (आत्मादि अप्रत्यक्ष पदार्थ) हमारी पकड़ में ही नहीं आते, हमें बिल्कुल ही प्रत्यक्ष नहीं होते, तो हम उनका वैज्ञानिक (निष्पक्ष एवं प्रामाणिक) अध्ययन कैसे कर सकते हैं ? तो उसका उत्तर दर्शनशास्त्र यह देता है कि मात्र प्रत्यक्ष से ही निर्णय करने का आग्रह रखना संकीर्णता है। हर वस्तु का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष से ही नहीं होता, बहुत सी बातों का निर्णय हम लोक में भी अनुमानादि के द्वारा करते ही हैं। अनुमानादि द्वारा ज्ञात पदार्थ भी प्रत्यक्षादि की भाँति असन्दिग्ध तथा समीचीन सिद्ध होते हैं। तथा जिस वस्तु का प्रत्यक्ष सम्भव ही नहीं है, उसका किया ही क्या जा सकता है ? यह तो नहीं किया जा सकता कि हमें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती तो उसका अभाव ही मान लिया जाए, क्योंकि तब तो फिर हमें अपने प्रपितामहादि अनेक सद्‌भावरूप वस्तुओं को भी अभावरूप मानना पड़ेगा। जो उचित नहीं होगा।

अतः जिस वस्तु की परीक्षा जिस विधि (प्रमाण) से सम्भव हो, वही विधि हमें उसकी परीक्षा हेतु अपनानी चाहिए। एक ही विधि से सबकी परीक्षा का आग्रह रखना वैज्ञानिक (समीचीन) नहीं कहा जा सकता। स्वर्ण को शुद्ध करने की विधि अलग होती है और वस्त्र को शुद्ध करने की अलग। दोनों को एक ही विधि से शुद्ध करने का आग्रह वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता।

वैसे तो विज्ञान भी स्वयं यह नहीं कहता कि मैं मात्र मूर्तिक वस्तुओं के विषय में ही अध्ययन करूँगा, अमूर्तिक वस्तुओं के विषय में नहीं करूँगा, किन्तु यह उसकी मजबूरी/दुर्बलता है कि वह अमूर्तिक वस्तुओं के विषय में ठीक से अध्ययन नहीं कर पा रहा है; यद्यपि वह कोशिश बहुत कर रहा है, सम्भव है कि भविष्य में किसी–न–किसी प्रकार से

सफलता प्राप्त कर सकेगा।

वर्तमान में भी विज्ञान की अनेक शाखाएँ–उपशाखाएँ अमूर्तिक वस्तुओं का अध्ययन कर रही हैं। जैसे– मनोविज्ञान और जीवविज्ञान–ये दोनों विज्ञान की ही शाखाएँ हैं और बड़ी महत्त्वपूर्ण शाखाएँ हैं। ये दोनों प्राणियों की विविध मनोदशाओं और जैविक क्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत कर रही हैं, जो अमूर्तिक चैतन्य का ही अध्ययन है।

अतः सर्वथा यह समझना भी मिथ्या ही है कि आधुनिक विज्ञान मात्र मूर्तिक वस्तुओं के विषय में ही अध्ययन करता है, अमूर्तिक वस्तुओं के विषय में अध्ययन नहीं करता है। अमूर्तिक वस्तुओं के विषय में भी वह यथासम्भव कोशिश करता ही है परन्तु कुछ तो अभी उसमें भी अनेक कमियाँ हैं और कुछ उसके निष्कर्ष भी अधिक लोगों तक पहुँच नहीं पा रहे हैं, अतः उस ओर थोड़ा ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। यद्यपि यह भी सत्य है कि आधुनिक विज्ञान मूर्तिक वस्तुओं के विषय में ही अधिक अध्ययन करता है।

आधुनिक विज्ञान और दर्शनशास्त्र में बड़ा भारी अन्तर लोगों को इसलिए भी लगता है, क्योंकि आधुनिक विज्ञान तो प्रायः मूर्तिक (भौतिक) वस्तुओं के अध्ययन में ही डूबा हुआ है, जबकि दर्शनशास्त्र कहता है कि हमें अपने वास्तविक हित हेतु अमूर्तिक वस्तुओं–विशेषतः आत्मा, परमात्मा आदि के ज्ञान पर अधिक ध्यान देना चाहिए, मात्र मूर्तिक (भौतिक) वस्तुओं के ज्ञान में ही सारा समय व्यतीत करना बुद्धिमानी नहीं। जीवन छोटा है और ज्ञान का कोई अन्त नहीं है, अतः हमें वही शीघ्र सीख लेना चाहिए जिससे जन्म–मरण आदि दुःखों का विनाश हो।

2.8 आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में आत्मा का स्वरूप—

हमारा प्रकरण यहाँ आधुनिक विज्ञान में मत के आत्मा और परमात्मा का स्वरूप स्पष्ट करना है। ध्यान रखना चाहिए कि आत्मा और परमात्मा भी अमूर्तिक या अभौतिक (Non-matter) वस्तुएँ हैं जो किसी भी भौतिक उपकरण द्वारा पकड़ में आने वाली नहीं हैं, अतः आधुनिक विज्ञान उन्हें परखनली आदि में रखकर तो हमें नहीं दिखा सकता है, किन्तु ऐसे अनेक वैज्ञानिक तथ्य अवश्य प्रस्तुत करता है जिनसे आत्मा–परमात्मा के अस्तित्व और स्वरूप पर विशद प्रकाश पड़ता है।

आत्मा और परमात्मा भारतीय दर्शनों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय है और इसलिए भारतीय जन–जीवन में प्रारम्भ से लेकर आज तक निरन्तर अत्यधिक चर्चित रहता आया है। बालक से लेकर वृद्ध तक और राजा से लेकर रंक तक सभी लोग यहाँ सदैव आत्मा और परमात्मा की चर्चा करते रहते हैं। अतः आधुनिक विज्ञान ने भी इन विषयों पर गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का अनेक बार प्रयास किया है। यह बात अलग है कि वह अभी तक इनके सम्बन्ध में अपने कोई स्पष्ट निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं कर पाया है, किन्तु इन विषयों की उसने उपेक्षा की हो अथवा इनकी ओर कभी कोई ध्यान ही नहीं दिया हो–ऐसा नहीं है।

तथा अनेक घटनाओं और प्रयोगों के आधार पर वह इनके अस्तित्व की सम्भावना भी प्रकट कर चुका है। भले ही वह इनके स्वरूपादि को स्पष्टतया सिद्ध नहीं कर पा रहा हो, किन्तु अनेक जैविक क्रियाओं और मनोभावों के आधार पर वह यह भी सशक्त सम्भावना प्रस्तुत करता है कि इस शरीर में आत्मा जैसा कोई अन्य तत्त्व अवश्य ही होना चाहिए, अन्यथा जीवित और मृत शरीर में और क्या अन्तर हो सकता है। जिस प्रकार हमें लगता है कि हम चश्मा आदि उपकरणों से देख रहे हैं किन्तु वस्तुतः चश्मा आदि से नहीं, आँख से देख रहे होते हैं, उसी प्रकार हम किसी अन्य ज्ञान तत्त्व से देख रहे होते हैं, जो मृत्यु हो जाने पर शरीर से निकल जाता है। यदि आँख ही देखती हो तो मृत शरीर क्यों नहीं देखता, अतः सिद्ध होता है कि आँख तो चश्मा आदि के समान बाह्य निमित्त मात्र है, मूल कारण कोई अन्य ज्ञान तत्त्व है। यह अन्य ज्ञान तत्त्व ही दर्शन–ग्रंथों में 'आत्मा' या 'जीव' कहा गया है।

आँख की देखना क्रिया की भाँति सारे ही शरीर की सुनना, सूँघना आदि सभी सैंकड़ों जैविक क्रियाएँ जिस तत्त्व के रहने पर चलती रहती हैं और जिसके न रहने पर (शरीर से बाहर निकल जाने पर, मृत्यु हो जाने पर) नहीं चलती हैं, रुक जाती हैं, वह अन्य चैतन्य तत्त्व ही 'आत्मा' है।

2.9 आत्मा शरीर से भिन्न एक अलग स्वतन्त्र तत्त्व है—

इसे मात्र वैज्ञानिक तथ्यों द्वारा इस प्रकार सिद्ध किया गया है–

1. पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ–पृथ्वी पहले तपता हुआ आग का गोला था। इसके पर्याप्त शीतल हो जाने पर अनुकूल वातावरण में कई प्रकार के जटिल प्रोटीन बनने लगे। इन जटिल प्रोटीनों के संघटन से कोशिका का निर्माण हुआ और अमीबा जैसे सूक्ष्म जीव अस्तित्व में आये। (जीवन की उत्पत्ति का यह सिद्धांत मात्र भौतिक विज्ञान पर आधारित है, जैन मान्यतानुसार जीव का अस्तित्व अनादि काल से है। –संपादक)

कई वैज्ञानिकों का मत है कि जीव तत्त्व का निर्माण जटिल रसायनों के संश्लेषण द्वारा नहीं हुआ है बल्कि यह किसी अन्य ग्रह से आया है। अन्य ग्रहों पर भी जीवन की पूर्ण सम्भावनाएँ हैं। यह जीव तत्त्व आत्मा ही है जो कि जड़ पदार्थों से निर्मित नहीं हो सकता है। जड़ पदार्थों से निर्मित तो मात्र शरीर है जिसका निर्माण पृथ्वी पर हुआ।

2. ब्रह्माण्ड का विस्तार–खगोल–वैज्ञानिकों के अनुसार ब्रह्माण्ड का निरन्तर विस्तार हो रहा है। इस बात को प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध किया जा चुका है। वैज्ञानिकों का मत है कि ब्रह्माण्ड में संकुचन एवं विस्तरण होता रहता है। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मात्र जड़ तत्त्व से ही निर्मित होता तो इसमें एक स्थिरता होनी चाहिए, इसमें संकुचन–विस्तरण नहीं होना चाहिए। फिर यह विस्तार क्यों हो रहा है ? यह इस बात की ओर इशारा करता है कि ब्रह्माण्ड मात्र जड़ पदार्थ से निर्मित नहीं है, बल्कि इसमें जड़ पदार्थ से भिन्न अन्य तत्त्व भी मौजूद है जिस पर भौतिकी के नियम लागू नहीं होते हैं। जड़ से भिन्न यह तत्त्व आत्मा हो सकता है।

3. अंग–प्रत्यारोपण–अंग प्रत्यारोपण आज एक आम बात हो गई है। आँख, गुर्दा, हृदय आदि सभी अंग–प्रत्यंगों का प्रत्यारोपण किया जा सकता है। सैद्धान्तिक तौर पर मस्तिष्क का प्रत्यारोपण भी सम्भव है। किसी के शरीर से पूरे का पूरा खून निकाल कर किसी अन्य के खून को डाला जा सकता है। इन सबसे जुड़ी एक दिलचस्प बात यह है कि चाहे व्यक्ति के शरीर का पूरे का पूरा खून बदल दो, चाहे उसके गुर्दे, हृदय तथा मस्तिष्क को बदल दो; फिर भी वह व्यक्ति अपना वजूद, अपनी पहचान बनाये रखता है। उसका चित्त पहले जैसा बना रहता है। अपने परिवारी जनों एवं मित्रों के प्रति उसका प्रेम, उसकी स्मरण–शक्ति यथावत् बनी रहती है। इससे सिद्ध होता है कि चाहे सारे अंग–प्रत्यंग बदल दिये जाएँ, चाहे पूरा खून बदल दिया जाए, फिर भी कुछ ऐसा अवश्य होता है जो व्यक्ति को अपनी मूल स्थिति से अलग नहीं होने देता है, उसे अपने पूर्व संस्कारों से युक्त बने रहने को बाध्य करता है। और निश्चित तौर पर यह चैतन्य युक्त आत्मा ही है।

ये तीनों ही तर्क गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने योग्य हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रस्तुत दो प्रकार के पदार्थों का निम्नलिखित वर्गीकरण भी जीव या आत्मा के अस्तित्व को अनिवार्यतः सिद्ध करता है–

1. सजीव पदार्थ (Living things)

2. निर्जीव पदार्थ (Non-living things)

इनके सम्बन्ध में डॉ. अनिल कुमार जैन ने ठीक ही लिखा है–

"अधिकतर लोगों को सजीव और निर्जीव की पहचान करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। उदाहरण के तौर पर वे आसानी से यह बता सकते हैं कि मक्खी, घोड़ा और पेड़ सजीव हैं जो वृद्धि और प्रजनन जैसी कुछ क्रियाओं को करते

हैं। इस प्रकार जीव (सजीव) तथा निर्जीव (अजीव) की पहचान तो की जा सकती है, लेकिन जीवन (life) क्या है– इसका सीधा उत्तर दे पाना कठिन है। जैव वैज्ञानिकों के पास जीव से सम्बन्धित विशद ज्ञान है, फिर भी वे जीवन को परिभाषित करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से जीव के लक्षणों का निरूपण करते हुए वे आगे और भी लिखते हैं–

"पृथ्वी पर अनेकों प्रकार के जीव पाये जाते हैं। अब तक बीस लाख से अधिक प्रजातियों को खोजा जा चुका है। वे सूक्ष्म बैक्टेरिया से लेकर विशालकाय व्हेल मछली तक के अनेक प्रकार में पायी जाती हैं। ये जीव विभिन्न प्रकार के वातावरण में पाये जा सकते हैं। इनमें से कुछ गर्मी से तपते रेगिस्तानों में भी मिल सकते हैं तथा कुछ अन्य बर्फीले ध्रुवों पर भी। जीवों के खान–पान तथा रहन–सहन में भी विविधता पायी जाती है। इसके बावजूद भी सभी जीवों में कुछ समानताएँ होती हैं तथा वे ही जीव के लक्षण भी निर्धारित करती हैं। प्रत्येक जीव में एक प्रकार का रसायन पाया जाता है जो कि एक ही प्रकार की रासायनिक क्रिया भी करता है। ये रसायन एक यूनिट (Unit) में व्यवस्थित तरीके से रहते हैं जिसे कोशिका कहते हैं।

2.10 सभी जीवों में पाये जाने वाले समान लक्षण—

सभी जीवों में जो समान लक्षण पाये जाते हैं वे हैं–(1) प्रजनन (reproduction), (2) वृद्धि (growth), (3) चयापचय (metabolism), (4) हलन–चलन (movement), (5) संवेदन (responsiveness), (6) अनुकूलन (adaptation)। लेकिन कुछ जीव ऐसे भी हैं जिनमें ये सब पूर्णतः नहीं पाये जाते जबकि कुछ निर्जीवों में भी इनमें से कुछ गुण देखने को मिल जाते हैं। फिर भी ये गुण/लक्षण जीव की मूल प्रकृति को रेखांकित अवश्य करते हैं।।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि जीवविज्ञान (biology) और मनोविज्ञान (psychology) की प्रायः सभी खोजें कहीं–न–कहीं आत्मा के अस्तित्व को भी सिद्ध करती हैं तथा न केवल अस्तित्व को ही सिद्ध करती हैं, उसके स्वरूप को भी कुछ न कुछ स्पष्ट करती हैं। मनोविज्ञान ने क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, प्रार्थना, याचना आदि मनोभावों का जो सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है, उससे भी आत्मा का ही स्वरूप स्पष्ट होता है।

जीवविज्ञान (biology) और मनोविज्ञान (psychology) की भाँति वनस्पति–विज्ञान (botony) की खोजें भी जीव या आत्मा के स्वरूप पर विशद प्रकाश डालती हैं। महान् वैज्ञानिक डॉ0 जगदीशचन्द्र बसु (1858–1937) ने तो स्पष्ट तौर पर अनेकानेक वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि पेड़–पौधों में जीव होता है, क्योंकि उनमें चेतना पाई जाती है।

डॉ. जगदीशचन्द्र बसु के बाद तो आधुनिक विज्ञान में पेड़–पौधों पर और भी अधिक खोजें हो चुकी हैं और वैज्ञानिक मान गये हैं कि पेड़–पौधों में भी स्पष्टरूप से जैविक क्रियाएँ और जैविक भावनाएँ अनुभव की जा सकती हैं। कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो मनुष्य के छूने से मुरझा जाते हैं अथवा खिल जाते हैं–यह उनकी जैविक भावना ही प्रकट करता है।

2.11 क्या कम्प्यूटरों में आत्मा होती है ?—

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि आजकल बहुत ही शक्तिशाली व संवेदनशील कम्प्यूटर बनने लगे हैं जो हमारे जटिल प्रश्नों का बहुत शीघ्रता से और बिल्कुल सही उत्तर देते हैं। इसलिए इन कम्प्यूटरों में ज्ञान होना चाहिए और यदि इनमें ज्ञान हैं, तो हमारे कथनानुसार इनमें आत्मा भी अवश्य होनी चाहिए।

यह ठीक है कि आजकल के शक्तिशाली कम्प्यूटर हमारे जटिल प्रश्नों का बहुत शीघ्रता से और बिल्कुल ठीक उत्तर देते हैं और इन कम्प्यूटरों के कारण विज्ञान की बहुत सी समस्याएँ सुलझाना सरल भी हो गया है; परन्तु न तो

कम्प्यूटरों में चेतना है, न आत्मा है, न ज्ञान ही है। यह तो एक प्रकार की यान्त्रिक क्रिया मात्र है। एक ही कम्प्यूटर सब प्रकार के प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता। भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रश्नों के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के कम्प्यूटर बनाये जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य द्वारा बनाई हुई अन्य मशीनें मनुष्य की अपेक्षा शीघ्रता से कार्य सम्पन्न कर देती हैं, ठीक उसी प्रकार ये कम्प्यूटर भी कार्य करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि इन चमत्कारी कम्प्यूटरों का निर्माता आत्माधारी मनुष्य ही है।

2.12 कृत्रिम मनुष्य में आत्मा कैसे आती है ?—

दूसरी शंका यह उठती है कि वैज्ञानिकों ने परखनली में मनुष्य का निर्माण करने की दशा में सफलता प्राप्त कर ली है। इस प्रकार निर्माण किये गये मनुष्य में आत्मा कैसे आती है ?

इसके उत्तर में समझना है कि वैज्ञानिक बिल्कुल नयी विधि से मनुष्य का निर्माण नहीं कर रहे हैं ; अपितु वे तो कृत्रिमरूप से वैसी ही परिस्थितियाँ, वैसा ही वातावरण और वैसा ही स्थान बनाते हैं और उन्हीं विधियों का प्रयोग करते हैं, जैसी कि प्राकृतिक रूप से गर्भ–धारण व गर्भ–पोषण के लिये आवश्यक होती हैं। इन्हीं विधियों से परखनली में मनुष्य का निर्माण सम्भव हुआ है। प्रारम्भ के कुछ सप्ताह के लिये परखनली का प्रयोग किया जाता है और उसके पश्चात् उस भ्रूण को स्त्री के गर्भाशय में स्थापित किया जाता है और बालक गर्भाशय में ही बढ़ता है। पुरुष के जो शुक्र–कीट, स्त्री के गर्भाशय में प्राकृतिकरूप से प्रविष्ट होकर गर्भ धारण की क्रिया को सम्भव बनाते हैं, उन्हीं शुक्र–कीटों का प्रयोग परखनली में किया जाता है। परखनली जड़ में से जीवन का निर्माण नहीं कर देती; अपितु जीवित शुक्र –कीट से जीवित भ्रूण बनाने (अर्थात् परखनली गर्भाशय का काम करती है) में माध्यम होती है। वास्तव में तो शुक्र–कीट स्वयं ही आत्मा सहित चेतन होते हैं और ये शुक्र–कीट ही अनुकूल परिस्थितियों में बढ़ते–बढ़ते भ्रूण और फिर बालक का रूप लेते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक विज्ञान भी किसी न किसी रूप में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है और न केवल अस्तित्व को ही स्वीकार करता है, उसके स्वरूप को भी बहुत स्पष्ट करता है जो बहुत कुछ वैसा ही है जैसा कि भारतीय दर्शन–ग्रंथों में बताया गया है।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान भले ही हमें यह नहीं बता पा रहा कि ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है, आदि; किन्तु इतना अवश्य सिद्ध कर रहा है कि वह रागी–द्वेषी और जगत् का कर्ता–धर्ता–हर्ता नहीं हो सकता। हम समझते हैं कि इस प्रकार की मिथ्या धारणा से मुक्ति दिलाकर भी आधुनिक विज्ञान ने हम पर बड़ा उपकार किया है।

2.13 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—जैनागम में आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि किन प्रमुख युक्तियों के आधार पर की गयी है ?

प्रश्न 2—न्याय–वैशैषिक दर्शन के ग्रंथों में आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि हेतु क्या क्या तर्क प्रमाण दिये गये हैं।

प्रश्न 3—किन वैज्ञानिक तथ्यों द्वारा आत्मा को सिद्ध करने का तर्क संगत प्रयास किया गया है।

प्रश्न 4—क्या कम्प्यूटर में आत्मा होती है ?

पाठ-3 – पुनर्जन्म की सिद्धि

3.1 यद्यपि आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि से ही आत्मा के पूर्वजन्म–पुनर्जन्म की भी स्वयमेव सिद्धि हो जाती है, क्योंकि आत्मा अपने मूल स्वभाव से अजर–अमर होते हुए भी पर्याय–अपेक्षा से जन्म–मरणशील भी है। तथापि अनेक लोग इस विषय में भी बहुत शंकाएँ करते देखे जाते हैं, अतः यहाँ इस सम्बन्ध में भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत है–

3.2 आत्मा का अस्तित्व है, आत्मा एक सत्तारूप वस्तु है–

१. आत्मा का अस्तित्व है, आत्मा एक सत्तारूप वस्तु है और इसलिए उसमें वे सभी सामान्य गुण पाये जाते हैं, जो किसी भी सत् पदार्थ में पाये जाने चाहिए। सत् वस्तु का सर्वप्रथम गुण यही है कि उसका कभी सर्वथा उत्पाद या विनाश नहीं होता, मात्र अवस्थाएँ बदलती हैं। जिस प्रकार स्वर्ण पुद्गल का कभी सर्वथा उत्पाद नहीं हो सकता और संसार की कोई शक्ति उसका सर्वथा नाश भी नहीं कर सकती, उत्पाद–व्यय मात्र उसकी अवस्थाओं में ही होता है, मूल वस्तु तो अनादिकाल से अनन्तकाल तक ज्यों की त्यों बनी रहती है; उसी प्रकार आत्मा का भी सर्वथा नया उत्पाद नहीं होता और संसार की कोई शक्ति उस आत्मा का सर्वथा विनाश भी नहीं कर सकती। मूल आत्मतत्त्व अनादि–अनन्त ही रहता है, मात्र उसकी अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है। आत्मा के ऐसे अवस्था–परिवर्तन को समझ लेने पर वस्तुतः आत्मा के पूर्वजन्म परजन्म को न माना जाए तो आत्मा का त्रैकालिक अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकता।

२. आधुनिक विज्ञान भी इतना तो भलीभाँति सिद्ध कर ही चुका है कि इस जगत् की कोई वस्तु सर्वथा उत्पन्न नहीं होती और न ही कभी सर्वथा नष्ट होती है, उत्पत्ति और नाश केवल उसकी अवस्थाओं के परिवर्तन को ही कहा जाता है–``Nothing can be produced or destroyed completely. It's form only changes.''

अतः इससे भी समझा जा सकता है कि आत्माओं का जो जन्म–मरण हम देखते हैं, वह सर्वथा नवीन उत्पाद या पूर्ण विनाश नहीं हो सकता; उसके आगे–पीछे भी उन आत्माओं का किसी न किसी रूप में अस्तित्व अवश्य होना चाहिए और वह पूर्वजन्म–परजन्म (पुनर्जन्म) ही है।

३. पूर्वजन्म और परजन्म को न मानने से कर्म–सिद्धान्त भी सिद्ध नहीं हो सकता।

यदि हम ऐसा मानते हैं कि आत्मा अपने समस्त शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है तो हमें पूर्वजन्म–परजन्म को अवश्य मानना ही होगा।

आत्मा को उसके समस्त शुभाशुभ कर्मों का फल भोगते हुए यहाँ इसी वर्तमान जन्म में नहीं देखा जाता है, अतः अवश्य ही पुनर्जन्म होना चाहिए।

उदाहरणार्थ–यहाँ कोई व्यक्ति किसी एक आदमी की हत्या करता है तो उसे फाँसी की सजा दी जाती है और यदि वह दस आदमियों की हत्या करे तो भी उसे फाँसी ही दी जाती है, और यदि पचास आदमियों की हत्या करे तो भी फाँसी ही दी जाती है। एक आदमी की हत्या से दस आदमियों की हत्या का और दस आदमियों की हत्या से पचास आदमियों की हत्या का पाप अधिक है–अपराध बड़ा है, परन्तु यहाँ सभी की सजा एक जैसी फाँसी ही सुनाई जा सकती है, जो वस्तुतः देखा जाए तो न्याय नहीं हुआ है; अतः इसके न्याय हेतु अवश्य ही नरकादि गतियों में पुनर्जन्म का अस्तित्व मानना होगा।

इसी प्रकार इस जन्म में प्रयत्न किये बिना ही एक आदमी अत्यधिक अनुकूल भोग–सामग्रियों के बीच जन्म लेता है और महान सुख भोगता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति अत्यधिक प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच जन्म लेता है और घोर कष्ट सहता है इससे सिद्ध होता है कि पूर्वजन्म में किये गये कर्म ही वहाँ असली कारण हैं।

इसी प्रकार यदि पुनर्जन्म न हो तो जीव के पूजा–पाठ–दया–दानादि शुभकर्म और हिंसा–झूठ आदि अशुभकर्म

निरर्थक सिद्ध होंगे, क्योंकि इनका विशेष फल जीव अपने पुनर्जन्म में ही स्वर्गादि या नरकादि में भोगता है।

इसी प्रकार पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म को न मानने पर जन्म–मरण के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष जाने का सम्पूर्ण पुरुषार्थ भी व्यर्थ सिद्ध होगा। यदि जन्म–मरण ही नहीं है तो उससे मुक्ति की कामना भी व्यर्थ ही ठहरेगी और जब जन्म–मरण से ही मुक्ति नहीं है तो मोह–राग द्वेषादि विकारों को मिटाकर ज्ञान–वैराग्य–तपादि धारण करने से क्या प्रयोजन शेष रहेगा ?

४. प्रायः सभी धर्मों या दर्शनों में भी पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म को किसी न किसी रूप में अवश्य ही स्वीकार किया गया है। जैन पुराणों में एक ही आत्मा के असंख्य जन्मों का विवरण उपलब्ध होता है। वैदिक पुराणों में भी जन्म–जन्मान्तरों की हजारों कथाएँ वर्णित हैं। बौद्ध जातक भी पूर्वजन्म–पुनर्जन्म की ही कथाओं का चित्रण करते हैं।

इसके अतिरिक्त साहित्यिक एवं लौकिक प्रेम–कथाओं में भी नायक–नायिकाओं के अनेक जन्मों के प्रेम–सम्बन्धों का चित्रण उपलब्ध होता है।

५. यहाँ तक कि हम प्रत्यक्ष ही अनेकानेक लोगों को अपने पूर्वजन्म का सही–सही वृत्तान्त निरूपण करते भी देखते–सुनते हैं। यदा–कदा समाचार–पत्रों में भी ऐसी घटनाएँ पढ़ने को मिलती रहती हैं, जिनसे भी आत्मा के पुनर्जन्म की सिद्धि होती है।

पूर्वजन्म व पुनर्जन्म को नहीं मानने के पीछे एक तर्क प्रायः यह दिया जाता है कि पूर्वजन्म था तो उसका हमें स्मरण होना चाहिए था। जैसे कि बचपन की घटनाओं का बचपन बीत जाने पर भी स्मरण रहता है।

यदि पूर्वजन्म था तो आज हमें उसका स्मरण क्यों नहीं है ?

इसका समाधान यह है कि आज हमारा मानस–पटल केवल उन्हीं घटनाओं को याद रख पाता है जो उसकी ऊपरी सतह पर होती है, गहराई में बैठी बातों को याद नहीं कर पाता। बचपन की भी सारी बातें हमें बाद में कहाँ याद रह पाती हैं ? माता के स्तनपानादि के अनेक प्रसंग हम प्रायः सर्वथा भूल चुके होते हैं। इस प्रकार जब हमें इस जन्म की ही शैशवावस्था की बातें याद नहीं रहती तो पूर्वजन्म की बातें याद रहना तो और भी अधिक मुश्किल है।

परीक्षा द्वारा ही किसी मतवाद की सच्चाई पूर्णतः प्रमाणित होती है। ऋषिगण समस्त संसार को ललकार कर कह रहे हैं कि हमने उस रहस्य का पता लगा लिया है जिससे स्मृति–सागर की गम्भीरता का गहराई तक मन्थन किया जा सकता है–उसका प्रयोग करो और तुम अपने पूर्वजन्मों की सम्पूर्ण स्मृति प्राप्त कर लोगे।

साधना द्वारा मानस–पटल की गहराई में उतरकर अनेक योगी अपने पूर्वजन्मों का स्मरण करते भी देखे जाते हैं, जिसे जातिस्मरण ज्ञान कहा जाता है।

६. जैन ग्रंथों में अनेक जन्म–जन्मान्तरों का न केवल उल्लेख उपलब्ध होता है, अपितु जन्म–धारण की पूरी प्रक्रिया का भी विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध होता है, जो अतिसंक्षेप में इस प्रकार है–

जब कोई जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करने जाता है तो इस बीच की स्थिति को 'विग्रहगति' कहते हैं। 'विग्रह' का अर्थ होता है–शरीर और नवीन शरीर प्राप्त करने के लिए जो गति की जाती है उसे 'विग्रहगति' कहते हैं। जिन जीवों को संसारचक्र से मुक्त हो जाना है, पुनर्जन्म धारण नहीं करना है वे तो सीधे ऊपर जाकर एक 'समय' (काल की सबसे सूक्ष्म इकाई, जो सेकेण्ड ही नहीं, नैनो सेकेण्ड से भी बहुत छोटी बताई गयी है।) में लोक के अग्रभाग में जाकर स्थित हो जाते हैं, परन्तु जिन्हें पुनः शरीर धारण करना है, वे भी सर्वप्रथम सीधे ऊर्ध्वगमन करते हैं। उसके बाद जहाँ अगला जन्म धारण करना है, उस ओर ९० प्रतिशत के कोण से ही मुड़कर एकदम सीधे जाते हैं, टेड़े–मेड़े नहीं। आवश्यकतानुसार ये मोड़ तीन भी हो सकते हैं, परन्तु इससे अधिक नहीं; क्योंकि बिना शरीर का जीव संसारदशा में अधिक से अधिक चार समय तक ही रह सकता है, इससे अधिक नहीं। चौथे समय के बाद तो वह

निश्चितरूप से नया शरीर धारण कर ही लेता है।

बहुत से लोग कहते हैं कि अमुक की आत्मा अभी तक भटक रही है, उसकी गति नहीं हुई है परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि कोई भी आत्मा अपना एक शरीर छोड़ने के बाद कुछ ही समय में (अधिकतम ४ समय में, जो कुल मिलाकर भी एक सेकेण्ड से कम है।) निश्चितरूप से दूसरा शरीर धारण कर लेता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने से भी पुनर्जन्म में आस्था उत्पन्न होती है।

७. संस्कृत–साहित्य के अनेक ग्रंथों में एक श्लोक पाया जाता है, जो प्रायः सर्वमान्यरूप से प्रसिद्ध है। वह निम्न प्रकार है–

''तदर्हजस्तनेहातो, रक्षो दृष्टेर्भवस्मृतेः।
भूतानन्वयनात् सिद्धः, प्रकृतिज्ञ सनातनः।।''

अर्थात् आत्मा स्वयंसिद्ध सनातन है, क्योंकि इसके अनेक प्रमाण हैं। यथा–

(क) तत्काल उत्पन्न हुआ बालक स्तनपान की इच्छा करता है, उसकी यह इच्छा अनादिकालीन पूर्व संस्कारवश ही होती है।

(ख) व्यन्तरादि देखे जाते हैं, जो अपने और दूसरों के पूर्वजन्मों को बताते रहते हैं।

(ग) अनेक मनुष्यों को भी अपने पूर्वभव का स्मरण होता देखा जाता है, जो जाँच करने पर सत्य भी होता है।

(घ) आत्मा कोई पृथिवी आदि पंचभूतों से बना नहीं है, अपितु चैतन्य सत्तारूप प्राकृतिक वस्तु है।

इनसे भी आत्मा के पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म की भलीभाँति सिद्धि होती है।

संस्कार वाली बात को यहाँ साधारण नहीं समझना चाहिए। प्रत्येक प्राणी अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के अनुरूप ही दिखाई देता है। किसी विशेष वस्तु, व्यक्ति, विषय या स्थान आदि से प्रीति और किसी अन्य वस्तु, व्यक्ति, विषय या स्थान आदि से भय उत्पन्न होता है–यह अकारण नहीं हो सकता। समान परिस्थितियों में उत्पन्न अनेक पुरुषों में से एक व्यक्ति का मन चित्रकला में अधिक लगता है, दूसरे का युद्धकला में और तीसरे का काव्यकला में–इसमें अवश्य ही पूर्वजन्म के संस्कार कारण होते हैं। जम्बूद्वीप निर्माण की पावन प्रेरिका चारित्रचन्द्रिका गणिनीप्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की अद्वितीय विद्वत्ता में भी उनके पूर्वजन्म के संस्कार परिलक्षित होते हैं। जिन्होंने लौकिक शिक्षा चौथी क्लास भी पूर्ण न की हो और ४०० से अधिक ग्रंथों का लेखन जिनके कर–कमलों से हुआ हो, जिन्हें भारत के मान्य विश्वविद्यालयों द्वारा उनकी योग्यता के आधार पर दो बार डी. लिट् की उपाधि से अलंकृत किया जा चुका हो और जो सरस्वती की प्रतिमूर्ति मानी जाती हो, इन सबसे यही लगता है कि अनुपम ज्ञान के संस्कार मात्र इस जन्म के नहीं पूर्व जन्म के हैं। इसी प्रकार एक पुत्र माता–पिता की प्राणपन से सेवा करता है और दूसरा पुत्र उनकी हत्या करता है, यह भी अकारण नहीं हो सकता। इसमें भी पूर्वजन्म के संस्कारों की महती भूमिका होती है।

८. वैदिक वाङ्मय के विख्यात ग्रंथ 'भगवद्गीता' में आत्मा के जन्म–मरण को वस्त्र परिवर्तन की उपमा देकर इस प्रकार समझाया गया है–

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

अर्थात् जिस प्रकार कोई मनुष्य पुराने वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेता है।

प्रतीत होता है कि शरीर को वस्त्र की उपमा देने की परम्परा भारतीय वाङ्मय में अत्यधिक लोकप्रिय रही है और अनेक विद्वानों ने उसके द्वारा आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को भलीभाँति स्पष्ट करने में सफलता प्राप्त की है।

3.3 मृत्यु के लिए प्रयुक्त पर्यायवाची शब्दों से भी पुनर्जन्म की सिद्धि–

भारतीय संस्कृति में 'मृत्यु' के लिए जितने भी पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होता है, वे सभी शरीर और आत्मा के अलग होने को ही 'मरण' बताते हैं और सशक्तरूप से आत्मा की अमरता को सिद्ध करते हैं, जिससे पुनर्जन्म की दृढ़ सिद्धि होती है। यथा–

(क) स्वर्गवास–अर्थात् अब वह आत्मा यहाँ न रहकर स्वर्ग में निवास करेगा।

(ख) परलोक गमन–अर्थात् अब वह आत्मा दूसरे लोक (जन्म/गति) में चला गया है।

(ग) निधन–अर्थात् अब वह आत्मा इस दुनिया के घर–मकानादिरूप धन से रहित हो गया है।

(घ) देहान्त–अर्थात् उसके इस देह के संयोग का अन्त हो गया है, स्वयं उस आत्मा का नहीं।

(ङ) देहावसान–अर्थात् उसके देह के संयोग का अवसान (अन्त) हो गया है, आत्मा का नहीं।

(च) गुजर जाना–अर्थात् अब वह यहाँ से आगे चला गया है।

(छ) प्राणान्त–अर्थात् अब उसके इन्द्रियादि प्राण नष्ट हो गये हैं।

(ज) मृत्यु–अर्थात् अब उसकी इस संयोगी पर्याय के प्राणों का नाश हो गया है।

(झ) वैकुण्ठ जाना–अर्थात् उसकी वय (आयु) कुण्ठित (समाप्त) हो गई, स्वयं आत्मा नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मा के पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म को नहीं मानने का कोई कारण नहीं है। उन्हें मानकर व्यक्ति स्वयं को आध्यात्मिक सन्मार्ग पर निःशंकरूप से लगा सकता है।

इतना ही नहीं, पूर्वजन्म व पुनर्जन्म को मानने से व्यक्ति का लौकिक (व्यावहारिक) जीवन भी क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद आदि की अनेक संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर अत्यन्त उदार एवं विशाल हो जाने से पवित्र बन जाता है। मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी तक के प्रति उसके हृदय में सच्चा स्नेह उत्पन्न हो जाता है। अतः पूर्वजन्म व पुनर्जन्म को भलीभाँति समझकर, उसमें आस्था अवश्य रखनी चाहिए।

3.4 जन्मजात विषमता से पुनर्जन्म की पुष्टि–

जब हम अपने चारों ओर दृष्टि डालते हैं तो हम इस संसार में बहुत सी विषमताएँ व विडम्बनाएँ पाते हैं।

हम छोटे–छोटे बालकों को देखें तो हम पायेंगे कि उनमें से कुछ तो जन्म से ही अपंग व रोगी होते हैं। तो कुछ जन्म से ही हृष्ट–पुष्ट होते हैं। कुछ बालकों की अत्यधिक सम्हाल रखने पर भी रोग उनका पीछा नहीं छोड़ते जबकि कुछ बालक यथोचित पालन–पोषण के बिना ही स्वस्थ रहते हैं। कुछ बालकों को जन्म से ही सर्व प्रकार की सुख–सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। जबकि कुछ बालक अभावों में ही पलते हैं। कुछ बालक जन्म से ही मेधावी, चतुर व चंचल होते हैं। जबकि कुछ बालक जन्म से ही सुस्त और मन्द–बुद्धि होते हैं।

3.5 कर्मफल–

अधिकांश में हम देखते हैं कि हम जो भी कार्य करते हैं उनका हमको समुचित फल नहीं मिलता। कभी तो हमारे प्रयत्न बिल्कुल ही निष्फल हो जाते हैं, कभी हमें अपने प्रयत्नों की तुलना में थोड़ा ही फल मिलता है और कभी–कभी अपने प्रयत्नों की तुलना में हमें अधिक फल भी मिल जाता है। हम साधारणतया देखते हैं कि दो व्यक्तियों को एक जैसा प्रयत्न करने पर भी, भिन्न–भिन्न फल मिलता है। अन्ततः इस विडम्बना का कारण क्या है ? वास्तविकता तो यह है कि हमें जो भी फल मिलता है, वह हमारे केवल वर्तमान के प्रयत्नों का फल ही नहीं होता, अपितु भूतकाल में संचित कर्मों के फल का भी उसमें योग होता है।

इस विश्व में प्रत्येक प्राणी अपने द्वारा भूतकाल में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों का फल भोगता रहता है। कोई

अपेक्षाकृत अधिक दुःखी होता है कोई अपेक्षाकृत अधिक सुखी होता है। इस विश्व में कदाचित् ही कोई ऐसा प्राणी मिले जो सब प्रकार से दुःखी हो या सब प्रकार से सुखी हो। जिन प्राणियों ने मोक्ष प्राप्त कर लिया है केवल वही पूर्ण सुखी होते हैं।

एक शंका यह उठती है कि जो व्यक्ति परिश्रम व ईमानदारी से अपना कार्य करते हैं, वे अधिकांश में दुःखी ही रहते हैं और जो व्यक्ति दगाबाजी व बेईमानी करते हैं वे मौज–मजे में रहते हैं; इस का क्या कारण है ?

पहली बात तो यह है कि यह कोई नियम नहीं है कि ईमानदार व परिश्रमी व्यक्ति सदैव दुःखी ही हो और दगाबाज व बेईमान व्यक्ति सदैव सुखी ही हो; परन्तु कभी–कभी ऐसा देखा अवश्य जाता है। जो व्यक्ति ईमानदार व परिश्रमी होते हुए भी दुखी है, वह अपनी ईमानदारी व परिश्रम के कारण दुखी नहीं है, अपितु अपने पिछले जन्मों में किये हुए पापों के कारण दुःखी है, जिनका फल उसको इस जन्म में मिल रहा है। इसी प्रकार जो व्यक्ति दगाबाज व बेईमान होते हुए भी सुखी हैं, वे अपनी दगाबाजी व बेईमानी के कारण सुखी नहीं हैं, अपितु अपने पिछले जन्मों के पुण्यकर्मों के कारण सुखी हैं, जिनका फल इनको इस जन्म में मिल रहा है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ईमानदार व परिश्रमी को अच्छा फल नहीं मिलेगा अथवा दगाबाज और बेईमान व्यक्ति को अपनी वर्तमान में की जा रही दगाबाजी व बेईमानी का बुरा फल नहीं मिलेगा। उनको अपने–अपने अच्छे व बुरे कार्यों का फल अवश्य मिलेगा। उन कार्यों का एक अणुमात्र अंश भी बिना फल दिये व्यर्थ नहीं जायेगा। परन्तु एक साधारण व्यक्ति को यह मालूम नहीं होता कि वह फल कब और किस रूप में मिलेगा।

इस विषय में एक गीत भी प्रायः लोग गाते हैं–

इस भव में नहीं मिलता, तो परभव में मिलता है।
अपनी–अपनी करनी का फल, सबको मिलता है।।

इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

एक व्यक्ति के कुछ रूपये बैंक में जमा हैं। जब तक उस व्यक्ति के खाते में बैंक में रुपये मौजूद हैं, तब तक बैंक वाले उसके प्रत्येक चैक का भुगतान करेंगे; चाहे वह व्यक्ति वह रुपया अपनी आवश्यकताओं के लिये निकाल रहा हो, चाहे दूसरों की भलाई के लिए निकाल रहा हो और चाहे वह बुरे कार्यों पर व्यय करने के लिये निकाल रहा हो। बैंक को इस बात से कोई सरोकार नहीं है। वर्तमान में वह व्यक्ति धन उपार्जन करने के लिये कोई कार्य करे या न करे, वह अपने जमा किये हुए धन को मितव्ययता से खर्चे या फिजूलखर्ची में व्यय करें, जब तक बैंक में उसका धन उसको उपलब्ध होता रहेगा।

इसके विपरीत, यदि उसके पास पिछला जमा किया हुआ धन न होता, तो उसको अपनी वर्तमान आय पर ही निर्वाह करना पड़ता; चाहे उस आय में वह सुखपूर्वक रहता या दुःखपूर्वक। यदि उसके ऊपर कुछ ऋण भी होता, तो उसकी वर्तमान आय का कुछ भाग या सारी ही आय पिछला ऋण चुकाने में व्यय हो जाती और वर्तमान में उसे अपनी वर्तमान आय के बावजूद और भी बुरी दशा में रहना पड़ता।

इस उदाहरण में हम बैंक में जमा धन के स्थान पर "अपने पूर्व में किये हुए अच्छे कर्म" और ऋण के स्थान पर "अपने पूर्व में किये हुए बुरे कर्म" लगा लें, तो हमें जीवन में अकारण ही जो सुख व दुःख मिलते हुए दिखते हैं, उनका कारण भलीभाँति समझ में आ जायेगा।

3.6 अटल है कर्मोदय और अनिवार्य है कर्मबंध–

यह तो हमारी पराधीनता है कि जब तक यह संसार भ्रमण है तब तक देह में 'देही' या 'शरीरधारी' बनकर रहना ही होगा। और जब तक देह में रहेंगे तब तक निरन्तर कर्म का बंध करना ही होगा। परन्तु एक विकल्प है। अशुभ कर्म ही

बाँधते रहना है या कुछ शुभ का अर्जन भी करना है ? बहुत भारी ही बाँधते रहना या कुछ हल्का–फुल्का बाँध कर भी समझौता करते चलना है, यह हमारे वश में है। इस पर हमारी मरजी चल सकती है। बस, संत कहते हैं कि यही वह संधि है जहाँ से कर्म की पराजय और जीव की विजय–यात्रा का प्रारम्भ होता है। जिसने इस रहस्य को समझ लिया और उस पद्धति को अंगीकार कर लिया, उसकी दिशा और दशा दोनों बदल जाती हैं। वहीं से उसका आत्म–उत्कर्ष प्रारम्भ हो जाता है। यहीं से उसके कर्मों का भार कम होने लगता है और उनमें उज्वलता आने लगती है।

भविष्य के लिये हमें बुरा कर्म ही बाँधते जाना है या कुछ अच्छा भी बाँधना है, यह बहुत हद तक हमारे हाथ की बात है। यदि बुरा नहीं बाँधना है तो मन, वाणी और शरीर को, अपने सारे संसाधनों को, अशुभ से हटाकर शुभ की ओर लगा दें। पाप कार्यों को त्याग कर पुण्य कार्यों में लग जायें। जितना शुभ का अर्जन होगा नियम से उतने काल तक बँधने वाले अशुभ से हम बच सकेंगे।

पुण्य की कमाई करते समय अशुभ स्वयमेव छूटता या कम होता जायेगा। जब चिन्तन करें तब किसी का बुरा न सोचें। सबके लिये, अपने शत्रु के लिये भी, शुभ का ही चिन्तन करें। जब बोलें तो ऐसी वाणी न बोलें जो किसी को आघात पहुँचाती हो। किसी में कलह और अशान्ति उपजाती हो या जिससे हिंसा, वैर, विरोध और अशांति का जन्म होता हो। अपने शरीर से और अपने साधनों से कोई ऐसा काम न करें जिससे किसी की हिंसा या हानि होती हो, जिससे समाज में या देश में अव्यवस्था फैलती हो या किसी को कष्ट पहुँचता हो। कुछ ऐसे काम करते चलें जिससे संसार में सराहना हो, जिससे लोकोपकार की कोई परम्परा चले। जो व्यक्ति से लगाकर समष्टि तक स्व–पर–हित का साधक हो। प्रत्येक प्राणी कर्म करने में स्वतन्त्र है। किन्तु कर्म का फल भोगने में पराधीन है, अतः शुभ कर्म करना चाहिए और अशुभ कर्मों से बचना चाहिए तथा अशुभ कर्म के दुःखद फल को समता भाव से भोग लेना चाहिए, ताकि नवीन कर्म बन्ध ना हो। दुर्लभ मानव जीवन प्राप्त कर मानवीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए समाज और देश के उत्थान में योगदान देना चाहिए। जो व्यवहार आप अपने प्रति नहीं चाहते, वह दूसरों के प्रति भी ना करें।

इस प्रकार यद्यपि अनेक तर्कों से आत्मा के पूर्वजन्म–पुनर्जन्म की भलीभाँति सिद्धि होती है, तथापि जो लोग अभी भी शंकालु हैं, उन्हें और भी अधिक अध्ययन और गहरा चिन्तन करना चाहिए।

3.7 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की सिद्धि हेतु कोई चार तर्क प्रस्तुत करें ?

प्रश्न 2—'जन्मजात विषमता पूर्वजन्म के कर्मफल की द्योतक है' स्पष्ट करें ?

प्रश्न 3—भारतीय संस्कृति में मृत्यु के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त शब्द किस प्रकार आत्मा और शरीर की भिन्नता प्रकट करते हैं ?

पाठ-4 – जैन सिद्धान्तों की व्यापकता

4.1 विश्व के सभी प्राणियों में मानव का सर्वोच्च स्थान है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। स्वार्थ साधन हेतु वह पर के हित को आघात न पहुँचा दे, तदर्थ मानव के आचरणों का नियमन आवश्यक है। मानव के आचरण के नियमन हेतु कतिपय पारिवारिक नियम, संस्थागत नियम, सामाजिक नियम एवं नैतिक नियम होते हैं। इन नियमों के पालन से व्यक्ति स्वयं भी सुख शान्ति का अनुभव करता है तथा अन्य को भी अपने व्यवहार से प्रसन्न रखता है।

व्यक्ति की अपराधिक वृत्ति पर अंकुश रखने तथा देश व समाज में व्यवस्था बनाये रखने हेतु प्रत्येक देश की सरकार कुछ कानून बनाती है, जिनके पालन की अपेक्षा प्रत्येक नागरिक से होती है तथा जिनके उल्लंघन करने पर व्यक्ति को दंडित किये जाने की व्यवस्था होती है। हमारे देश के कानून भी बहुत व्यापक हैं तथा व्यक्ति के हर क्षेत्रीय व्यवहार का नियमन करने में सक्षम हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रहसंचय आदि दुष्कर्मों पर नियन्त्रण करने हेतु भारतीय दण्ड संहिता अधिनियम में व्यापक प्रावधान हैं तथा कठोर दण्ड की व्यवस्था है। फिर भी देश में हिंसा एवं आतंकवाद का ताण्डव नृत्य दृष्टिगत होता है, जीवन में असत्य का साम्राज्य छाया हुआ है। चोरी करना, मिलावट करना, करवंचना आदि व्यावसायिक कुशलता व सफलता के प्रतीक बन गए हैं। बलात्कार की घटनाएँ वृद्धिंगत होती जा रही हैं तथा ब्रह्मचर्य शब्द उपहास का बिन्दु बन गया है। येनकेन प्रकारेण अधिक धन संचय करने वाले हर क्षेत्र में सम्मानित किये जाते हैं, जिससे जमाखोर, रिश्वतखोर, दहेज–लालची आदि पनपते जा रहे हैं। इन सबसे यह लगता है कि व्यापक एवं कठोर राजनियम भी अप्रभावी हैं।

4.2 मानव को दुष्कृत्यों से रोकने एवं सुकृत में प्रवृत्त करने में राज संस्था एवं राजनियम कई बार असफल रहते हैं-

इसलिए धर्म–संस्था व धर्म–नियमों की अपरिहार्यता बढ़ जाती है। राज–संस्था के वांछित उद्देश्यों को पूरा करने में धर्म संस्था प्रभावी सहायक बनती है। छिपकर अपराध करने वाले अपराधी राज–संस्था से अदण्डित रह जाते हैं और कानून की नजर से बचकर अपराध करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है तथा सरकार विवश होकर पीड़ित जनता के साथ अन्याय देखती रहती है। आतंकवादियों द्वारा समय–समय पर किया जाने वाला नरसंहार इसका उदाहरण है। किन्तु धर्म–संस्था ने कर्म–सिद्धांत द्वारा मानव मन में ऐसी धारणा बिठा दी है कि कहीं भी कोई कार्य किया जाए वह रिकार्ड हो जाता है तथा उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। नरक का डर एवं स्वर्ग का प्रलोभन, चाहे कुछ व्यक्तियों द्वारा कल्पित माना जाये, पर इस धारणा ने व्यक्ति को दुष्कर्मों से बचाने एवं सुकर्मों में प्रवृत्त करने में एक प्रभावी कार्य किया है। छिपकर अपराध करने को उद्यत व्यक्ति भी पाप फल भुगतने से डर कर पापकर्म करने से रुक जाता है।

4.2.1 धर्मशास्त्रों के अनुसार किसी कार्य की क्रियान्विति तो दूर, उसको करने के भाव आने से ही कर्मबन्ध हो जाते हैं और उनका फल भोगना होता है। कर्मबन्धन में मन की भावना प्रमुख और क्रिया गौण हो जाती है। धर्म की यह बात राजनियम में भी गर्भित है। भारतीय दण्ड संहिता की धारायें 304 ए और 307 के प्रावधानों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति की लापरवाही से अनजाने में किसी की मौत हो जाने पर उसको धारा 304 ए के अन्तर्गत दो वर्ष तक का कारावास दिया जा सकता है। जबकि मारने के बुरे इरादे से कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को मारने का प्रयास करता है किन्तु अन्य के द्वारा रोक लिये जाने के कारण अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाता तो भी उसे धारा 307 के अनुसार 7 वर्ष तक की सजा दी जा सकती है। पहली घटना के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति के निमित्त से दूसरे की मृत्यु हो जाती है जबकि दूसरी घटना में वह व्यक्ति चाहते हुए भी अन्य को मारना तो दूर, चोट भी नहीं पहुँचा पाया। राजदंड की कठोरता घटना के परिणामानुसार नहीं वरन् व्यक्ति की दुर्भावनानुसार है। पहली घटना में

जिस व्यक्ति की असावधानी से अन्य की मौत हुई, उसके भाव मारने के बिल्कुल नहीं थे, जबकि दूसरी घटना में व्यक्ति के भाव पूर्णतया मारने के थे, चाहे परिणाम कुछ भी रहा हो। कानून की धाराओं में बुरे इरादे के सिद्ध होने पर ही कठोरतम सजा की व्यवस्था है, मात्र क्रिया से नहीं। जब मन में हिंसा के भाव नहीं होंगे तो न वे दुर्वचनों द्वारा अभिव्यक्त होंगे और न ही उनकी काया द्वारा हिंसा की क्रियान्विति होगी। अतः धर्म–संस्था हिंसा के उत्पत्ति–स्थान मन में दुर्भाव पैदा होने का भी निषेध करती है, जबकि राजनियम में मात्र मन में उत्पन्न हिंसा को, जब तक वह काय से व्यक्त न कर दी जाये, रोकने का कोई प्रावधान नहीं है।

4.2.2 राजनियम में कई खामियाँ (Loopholes) निकल आती हैं, जिनका सहारा लेकर भी अपराधी दण्डित होने से बच जाता है, किन्तु धर्म–नियमों में ऐसी सम्भावना नहीं है। राजनियम लागू करने वाले व्यक्ति को भयभीत अथवा प्रलोभित करके न्याय की दिशा बदलवाने में भी कई बार सफलता मिल जाती है किन्तु धर्म–नियमों में पक्षपात को कोई स्थान नहीं है। तीर्थंकर अवस्था में जबकि देवों के द्वारा उनके गर्भ–जन्मादि कल्याणक बड़ी धूमधाम से बनाये जाते हैं तब भी स्वयं तीर्थंकर को भी अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का फल भोगना पड़ता है। जैनदर्शन में प्रतिपादित कर्मसिद्धान्त पर आस्था हो जाने पर व्यक्ति कभी भी दुष्कर्म करने का साहस नहीं करेगा तथा सद्कर्मों में रत रहेगा। कर्म सिद्धान्त को तर्क की कसौटी पर भी परख लिया गया है। एक बालक धनी व्यक्ति के यहाँ जन्म लेकर सब सुविधाओं को पाता है तथा करोड़ों की सम्पत्ति में भागीदार बन जाता है, दूसरा नवजात शिशु किसी निर्धन के घर अपंग अवस्था में जन्म लेकर सभी तरह की परेशानियों में पलता है तथा हजारों रुपयों के ऋण में सहभागी बन जाता है। जन्मजात इस विषमता का तर्क संगत कारण उनके पूर्व जन्म के सुकृत व दुष्कृत का फल ही है। स्वकृत कर्म निष्फल नहीं होते अतः वर्तमान में दुराचारी को भौतिक सुख साधन सम्पन्न तथा वर्तमान में सदाचारी को निर्धनावस्था में देखकर सन्मार्ग से च्युत नहीं होना चाहिए। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के केवल वर्तमान में किये हुए ही कार्य उसके सुखी व दुखी होने के कारण नहीं होते, अपितु उसके द्वारा भूतकाल में किये हुए कार्य भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः मानव को हर स्थिति में धर्म का पालन करना चाहिए।

4.3 जैनधर्म के सिद्धान्तों के पालन से विश्व व राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं का समाधान–

जैनधर्म अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है किन्तु इसके प्रमुख सिद्धान्तों की उपयोगिता आज के युग में अधिक है। जैनधर्म के सिद्धान्तों के पालन से विश्व व राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं का समाधान हो सकता है। अहिंसा को जन–जीवन में उतारने पर आतंकवाद व शस्त्रास्त्रों की अन्धाधुन्ध होड़ पर अंकुश लगेगा तथा रक्षा व्यय के नाम पर की जाने वाली अपार धनराशि को मानव–कल्याण के लिए उपयोग में लाया जा सकेगा। विनाश के कगार पर खड़ी मानवता को राहत की साँस मिलेगी। अपने शौक की पूर्ति हेतु किये जाने वाले पशुवध में रुकावट आएगी तथा अन्धाधुन्ध हरे भरे वृक्ष काटने में लोग हिचकिचायेंगे। फलस्वरूप सभी लोग सुख शान्ति से रहेंगे, पशुधन में वृद्धि होगी तथा वनों के संरक्षण से पर्यावरण की शुद्धता बनी रहेगी। अहिंसा के बल पर ही वर्तमान युग में गाँधीजी ने भारत को स्वतन्त्र कराने में सफलता प्राप्त की।

4.4 अनेकान्त का सिद्धान्त

अनेकान्त का सिद्धान्त जैन दर्शन की विश्व को एक अनूठी देन है। विश्व की महान् शक्तियों में पारस्परिक वैमनस्य का मूलकारण वैचारिक दुराग्रह है। एक राष्ट्र अपनी विचारधारा को दूसरे पर थोपना चाहता है और दूसरे की विचारधारा का आदर नहीं करता। अनेकान्त सिद्धान्त दूसरे के दृष्टिकोण को समझने व दूसरों की विचार धारा का आदर करने की दिशा प्रदान करता है। तब विचारों में तनाव के स्थान पर सद्भाव व अहिंसा होगी क्योंकि अहिंसा का भवन अनेकान्त के धरातल पर ही ठहर सकता है।

4.5 अपरिग्रह का सिद्धान्त समाजवाद का आदि बिन्दु है।

अपरिग्रह का सिद्धान्त समाजवाद का आदि बिन्दु है। आर्थिक विषमता से ग्रस्त राष्ट्र में अहिंसक तरीके से समाजवाद अपरिग्रह के सिद्धान्त के पालन से ही आ सकता है। भारत जैसे देश में यदि कोई व्यक्ति आवश्यकता से अधिक संग्रह करता है तो अन्य की आवश्यकता पूर्ति में बाधा आयेगी। यही प्रवृत्ति वर्गभेद व वर्गसंघर्ष की जन्मदात्री है। अतः पेट भरो, पेटी नहीं। इच्छाओं पर नियन्त्रण रखने व संयमित जीवन व्यापन करने से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियाँ ठीक रहेंगी क्योंकि येन केन प्रकारेण धनसंग्रह की प्रवृत्ति मानव से सभी अकरणीय कार्य भी करवा लेती है। अतः शस्त्रसंचय की भाँति धनसंचय को भी अपराध माना जाना चाहिये, क्योंकि आधुनिक युद्ध का मुख्य शस्त्र तलवार नहीं, वरन् धन है। मात्र धन से स्थायी सुख शान्ति नहीं मिलती। प्राप्तव्य को प्राप्त करने की चिन्ता, उसकी रक्षा की चिन्ता व उसके नष्ट होने पर वियोग का दुख–इस तरह परिग्रह हर अवस्था में दुखदायी है। कभी–कभी तो सुखद भविष्य की कल्पना में वर्तमान को भी बिगाड़ लेते हैं तथा संचित धन का कभी भी उपयोग नहीं कर पाते। अतः व्यक्ति को परिग्रह को सीमित करना चाहिए तथा पूर्व संचित परिग्रह में से कुछ राशि विनयपूर्वक जरूरतमंदों के हितार्थ अर्पित करते रहना चाहिए जिससे निर्धनों के जीवन स्तर के उत्थान में सरकार के दायित्व में हम भी हाथ बटा सकें।

जो व्यक्ति जैन सिद्धान्तों का निष्ठा से पालन करता है, वह हर स्थिति में सुख–शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकता है। उसके आचरण से किसी कानून का उल्लंघन ही नहीं होगा। जैनाचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के 7वें अध्याय के 27वें सूत्र में कहा है–**स्तेनप्रयोग–तदाह्रतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रति–रूपकव्यवहाराः।**

अर्थात्–चोरी के लिए प्रेरणा करना अथवा चोरी के उपाय बताना, चुराई हुई वस्तु को लेना, राज्य के कानूनों के विरुद्ध चलना (जैसे कर–चोरी करना, जमाखोरी करना आदि), नापने तोलने के बांट आदि कमती, बढ़ती रखना और अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर अधिक मूल्य में बेचना, ये पाँच कार्य अचौर्याणुव्रत में दोष लगाने वाले हैं अर्थात् चोरी के ही पर्यायवाची हैं। इस सूत्र को ध्यान में रखकर यदि हर नागरिक चोरी से पूर्णतः बचे तो देश की कितनी समस्याओं का समाधान सहज में ही हो सकता है। जैन दर्शन में राजद्रोह का नहीं वरन् राजनियमों के पालन का निर्देश दिया है और देश के नियमों का यदि ध्यान से अवलोकन किया जाये तो उनमें जैन सिद्धान्तों के ही पालन की अपेक्षा की गई है। अन्तर सिर्फ पालने के तरीकों में है। जैन धर्म मानव को कर्त्तव्यनिष्ठ बनाकर स्वेच्छा से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह के सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की प्रेरणा देता है तो सरकार कानून का डर दिखाकर हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह संचय की वृत्ति पर अंकुश लगाती है। धर्म का प्रभाव स्थायी व आन्तरिक होता है और कानून का प्रभाव अस्थायी व दिखावटी होता है। किन्तु विश्वशान्ति हेतु धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करना ही पड़ेगा। आज 'एड्स' नामक प्राणघातक बीमारी के भय से स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों पर रोक लगी है व ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त को बल मिला है। 'रेड्स' के भय से काले धन संचय में कटौती हो रही है और अपरिग्रह को मान्यता दी जा रही है। प्राकृतिक सीमित साधनों के व्यर्थ में प्रयोग को रोकने हेतु सरकार करोड़ों रुपये विज्ञापन आदि में व्यय करके जनता को इस बारे में आगाह करती है। जैन दर्शन में अनर्थदण्डव्रत के द्वारा बिना प्रयोजन पानी, हवा, वनस्पति आदि के प्रयोग को निषिद्ध बताकर सीमित साधनों के संरक्षण में बहुत योग दिया है।

4.6 जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म है।

जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। इसके सिद्धान्त सर्वोपयोगी हैं। यह व्यक्ति को कर्त्तव्यपरायण बनाता है। जिससे वह

अपने जन्मदाता माता–पिता की सेवा भी निष्ठा से करता है और उन्हें वृद्धाश्रम प्रेषित करने की दुर्भावना कभी उसके मन में नहीं आती। परिजनों के साथ भी ऐसा व्यवहार करता है जिससे परिवार में सुख–शान्ति बनी रहती है। बच्चों में सुसंस्कार प्रारम्भ से डालता है जिससे वे संस्कारित होकर धर्मनिष्ठ होकर अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य का भली–भाँति निर्वहन करते हैं। आधुनिक वातावरण में रहते हुए भी धार्मिक संस्कारों के कारण गुरुजनों के प्रति भी विनयभाव रहते हैं और अनुशासित तथा धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करते हैं जिससे मानसिक सुख शान्ति के अलावा देश के चारित्र निर्माण में भी सहयोग प्रदान करते हैं।

जैन सिद्धान्तों के निष्ठापूर्वक पालन में ही विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान निहित है। धर्म–निरपेक्षता की आड़ में धर्मविहीन हो जाने से राष्ट्र का चारित्रिक पतन होता है। चारित्रिक पतन से राष्ट्रोत्थान की कल्याणकारी योजनायें निष्फल हो जाती हैं। अतः राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास एवं मानव की स्थायी सुख–शान्ति हेतु नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था जागृत करना नितान्त आवश्यक है। जैनधर्म नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न कराता है, जिनके परिपालन से ही स्थायी विश्वशान्ति सम्भव हो सकती है।

4.7 अभ्यास प्रश्न-

प्रश्न 1—मानव के आचरण के नियमन हेतु कौन–कौन से नियम होते हैं ?

प्रश्न 2—राजनियमों की क्या सीमाएँ हैं ?

प्रश्न 3—धर्म नियमों की प्रभावकता किस प्रकार है ?

प्रश्न 4—अनेकान्त के सिद्धान्त की प्रमुख उपयोगिता क्या है ?

प्रश्न 5—अपरिग्रह का सिद्धान्त किस प्रकार उपयोगी है ?

जैन धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप

-संदर्भ ग्रंथ-

1. **तिलोयपण्णत्ति** –यति वृषभाचार्य
2. **त्रिलोकसार** –श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्तचक्रवर्ती
3. **तत्त्वार्थसूत्र** –आचार्य उमास्वामी
4. **स्वास्थ्य ही जीवन** –आचार्य श्री सुविधि सागर जी
5. **भोजन कब ? कहाँ ? कैसे ?** –उपाध्याय श्री कामकुमारनन्दी
6. **त्रिलोक भास्कर** –गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
7. **जैन भूगोल** –गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
८. **जम्बूद्वीप** –गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
9. **जैन ज्योतिर्लोक** –गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
10. **स्वस्थ जीवन पद्धति** –डॉ. ए. के. जैन
11. **सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन** –प्रस्तुति श्री नथमल जैन छाबड़ा
12. **स्वस्थ आहार वैज्ञानिक दृष्टिकोण** –डॉ. ए. के. जैन
13. **शाकाहार ही क्यों ?** –श्री चेतनप्रकाश स्वरूपचन्द जैन (मार्सन्स) आगरा
14. **गर्भपात अनुचित** –श्री गोपीनाथ अग्रवाल
15. **मादक पदार्थ व धूम्रपान** –श्री गोपीचन्द अग्रवाल
16. **भारतीय दर्शन में आत्मा एवं परमात्मा** –डॉ. वीरसागर जैन
17. **जैनधर्म का वैज्ञानिक चिन्तन** –प्रा. निहालचन्द जैन
18. **जीवन क्या है ?** –डॉ अनिल कुमार जैन
19. **अर्हत् वचन (त्रैमासिक शोधपत्रिका)** –सम्बन्धित अंक
20. **www.encyclopediaofjainism.com**

प्रश्नावली (Questions Bank)

प्रश्न 1 —तीन लोक कौन–कौन से हैं ? तीन लोक की ऊँचाई और मोटाई कितनी है ?
प्रश्न 2 —त्रस नाड़ी की मोटाई और ऊँचाई (लम्बाई) कितनी है ? इसमें कौन से जीव पाये जाते हैं।
प्रश्न 3 —अधोलोक की सात नरक पृथ्वियों के क्या नाम हैं ?
प्रश्न 4 —भवनवासी देवों के कितने भेद हैं और उनके कुल कितने जिन मंदिर है ?
प्रश्न 5 —तीन लोक की प्रतिकृति का निर्माण कहाँ और किनकी प्रेरणा से हुआ।
प्रश्न 6 —मध्यलोक की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है ?
प्रश्न 7 —मध्यलोक के प्रथम पाँच द्वीपों के नाम बताइये ?
प्रश्न 8 —मनुष्य लोक का विस्तार कितना है, इसमें कौन–कौन से द्वीप समुद्र स्थित हैं ?
प्रश्न 9 —ढाईद्वीप सम्बन्धी अकृत्रिम चैत्याल्य कितने व किस प्रकार हैं ?
प्रश्न 10 —ढाईद्वीप में शाश्वत व अशाश्वत कर्मभूमियाँ कितनी–2 हैं ?
प्रश्न 11 —जम्बूद्वीप परिसर हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप रचना में कुल कितनी प्रतिमाएँ विराजमान हैं ?
प्रश्न 12 —जम्बूद्वीप का विस्तार कितना है ? इसके छह कुलाचलों के नाम लिखें ?
प्रश्न 13 —छह कुलाचलों पर स्थित सरोवरों का नामोल्लेख करें ?
प्रश्न 14 —जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों के नाम बताइये ?
प्रश्न 15 —जम्बूद्वीप में कुल अकृत्रिम चैत्यालय कितने हैं ?
प्रश्न 16 —जम्बूद्वीप की रचना कहाँ और किनकी प्रेरणा से निर्मित हुई है ?
प्रश्न 17 —सुदर्शन मेरु की ऊँचाई कितनी है ? इससे सम्बन्धित कितने चैत्यालय हैं ?
प्रश्न 18 —ज्योतिष्क देवों के कितने भेद हैं और कौन–कौन से हैं।
प्रश्न 19 —चन्द्रदेव एवं सूर्य देव की उत्कृष्ट आयु कितनी है।
प्रश्न 20 —नक्षत्र कितने होते हैं ?
प्रश्न 21 —जम्बूद्वीप में कितने सूर्य और चन्द्रमा हैं।
प्रश्न 22 —धातकी खण्ड द्वीप में कितने सूर्य और चन्द्रमा हैं।
प्रश्न 23 —पर्यावरण शब्द से क्या तात्पर्य है, यह कितने प्रकार का है ?
प्रश्न 24 —जैनागम में वर्णित षट्काय जीव कौन–कौन से हैं ?
प्रश्न 25 —तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर अंकित चिह्न पर्यावरण संरक्षण के प्रतीक किस प्रकार हैं ?
प्रश्न 26 —अनेकान्तवाद किस प्रकार का प्रदूषण दूर करने में सहायक है ?
प्रश्न 27 —पर्यावरण असन्तुलन के प्रमुख कारण क्या हैं ?
प्रश्न 28 —पर्यावरण संरक्षण में वनस्पति की किस प्रकार भूमिका है ?
प्रश्न 29 —वनसम्पदा के विनाश के क्या परिणाम होते हैं ?
प्रश्न 30 —किन्हीं पाँच प्रकार के प्रदूषणों का उल्लेख कीजिए।
प्रश्न 31 —भगवान आदिनाथ ने जनसंख्या नियन्त्रण के क्या उपाय बताये ?
प्रश्न 32 —जल प्रदूषण को रोकने में जैन सिद्धान्तों का क्या योगदान है ?
प्रश्न 33 —'जिओ और जीने दो' का सूत्र पर्यावरण संरक्षण में किस तरह योगदान कर सकता है ?
प्रश्न 34 —जैन श्रावक की दिनचर्या का पर्यावरण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है ?

प्रश्न 35 —पर्यावरण संरक्षण की समस्या किन कारणों से उत्पन्न हुई ?
प्रश्न 36 —आन्तरिक पर्यावरण की विशुद्धि कैसे संभव है ?
प्रश्न 37 —कत्लखाने पर्यावरण के दुश्मन किस प्रकार हैं ?
प्रश्न 38 —पर्यावरण संरक्षण में 'परस्परोपग्रहो–जीवानाम्' सूत्र की भूमिका स्पष्ट कीजिये ?
प्रश्न 39 —आध्यात्मिक शास्त्रों के अनुसार स्वस्थ किसे कहते हैं ?
प्रश्न 40 —जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व क्यों है ?
प्रश्न 41 —स्वास्थ्य के लिये दो प्रमुख आवश्यक बातें क्या हैं ?
प्रश्न 42 —रोगी होने के चार कारण कौन से हैं ?
प्रश्न 43 —जीवन में मुस्कान का क्या महत्त्व है ?
प्रश्न 44 —व्यवस्थित गहरी निद्रा क्यों आवश्यक है ?
प्रश्न 45 —मन से क्या आशय है ? इसके तीन स्तर कौन–कौन से हैं ?
प्रश्न 46 —मन पर नियन्त्रण करने की शारीरिक विधियों का उल्लेख कीजिए।
प्रश्न 47 —मन पर नियन्त्रण की प्रमुख पाँच आध्यात्मिक विधियों के बारे में बताइये ?
प्रश्न 48 —स्वस्थ तन मन के लिए शुभ भावों का क्या महत्त्व है ?
प्रश्न 49 —व्यक्तित्व के विकास के लिये क्या प्रयत्न आवश्यक हैं ?
प्रश्न 50 —अपनी भावना में सुधार लाने के लिये धार्मिक ग्रंथों में किन दस धर्मों का उल्लेख है ?
प्रश्न 51 —दैनिक चर्या में प्रयोग की जाने वाली योग की प्रमुख पाँच विधियों के बारे में बताइये ?
प्रश्न 52 —आसन प्राणायाम से पूर्व शरीर शुद्धि के लिए कौन से षट्कर्म उपयुक्त हैं ?
प्रश्न 53 —योग की भाषा में चक्र से क्या आशय है ? ये कौन–कौन से हैं ?
प्रश्न 54 —प्राणायाम से क्या आशय है ? इसमें निहित तीन नाड़ियों का उल्लेख कीजिए ?
प्रश्न 55 —प्राणायाम एवं योगासन के अभ्यास करने के किन्हीं प्रमुख पाँच नियमों के बार में बताइये ?
प्रश्न 56 —सूक्ष्म प्राणायाम एवं सूक्ष्म योगासन क्या हैं ? इन्हें क्यों करना चाहिए ?
प्रश्न 57 —अनुलोम विलोम प्राणायाम की विधि बताते हुए इसके लाभों का उल्लेख कीजिए ?
प्रश्न 58 —ओंकार प्राणायाम की विधि एवं लाभों का उल्लेख कीजिये ?
प्रश्न 59 —बटर फ्लाई योगासन की विधि एवं लाभों का उल्लेख कीजिये ?
प्रश्न 60 —मस्तकासन की विधि का वर्णन कीजिये ?
प्रश्न 61 —चक्षु आसन की विधि एवं लाभ बताइये ?
प्रश्न 62 —मोटापा आसन की विधि का वर्णन कीजिये ?
प्रश्न 63 —लम्बाई आसन की विधि एवं लाभों का वर्णन कीजिये ?
प्रश्न 64 —शाकाहार से क्या आशय है ? यह क्यों आवश्यक है ?
प्रश्न 65 —सन्तुलित भोजन के आवश्यक तत्त्व कौन–कौन से हैं ?
प्रश्न 66 —प्रोटीन एवं चिकनाई किन प्रमुख शाकाहारी पदार्थों में पाई जाती है ?
प्रश्न 67 —अहिंसक फैश पैक स्क्रव किस प्रकार तैयार किया जाता है ?
प्रश्न 68 —फास्ट फूड का प्रयोग किस प्रकार हानिप्रद है ?
प्रश्न 69 —माँसाहार नैतिक पतन का कारण किस प्रकार है ?
प्रश्न 70 —माँसाहारी भोजन के सेवन से उत्पन्न किन्हीं प्रमुख दो रोगों का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 71 —अण्डाहार की हानियों का उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न 72 —'अण्डा शाकाहारी नहीं होता' स्पष्ट कीजिये ?

प्रश्न 73 —रात्रि भोजन से क्या हानियाँ हैं ?

प्रश्न 74 —दिन में भोजन करने से क्या लाभ है ?

प्रश्न 75 —वैज्ञानिकों के अनुसार पानी की एक बूंद में कितने सूक्ष्म जन्तू होते हैं ?

प्रश्न 76 —जैनागम के अनुसार जल छानने की सही विधि का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 77 —प्रासुक जल से क्या अभिप्राय है इसकी मर्यादा कितनी है ?

प्रश्न 78 —प्रत्येक गर्भपात में हत्या अवश्य होती हैं, स्पष्ट कीजिये ?

प्रश्न 79 —गर्भपात (एबोर्शन) कराने की प्रचलित किन्हीं दो विधियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 80 —गर्भपात कराने वाली माँ के स्वास्थ्य पर तात्कालिक क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ?

प्रश्न 81 —भ्रूण का लिंग परीक्षण अभिशाप क्यों है ?

प्रश्न 82 —'धूम्रपान–शत्रु महान' संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ?

प्रश्न 83 —तम्बाकू में पाये जाने वाले किन्हीं तीन जहरीले पदार्थ और उनसे होने वाली बीमारियों का वर्णन करें ?

प्रश्न 84 —मद्यपान से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 85 —कोल्ड ड्रिंक्स में मिश्रित किन्हीं दो हानिकारक पदार्थों और उनसे होने वाली बीमारियों का उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न 86 —सन्तरे के रस के लाभों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 87 —अनार के रस के क्या गुण हैं ?

प्रश्न 88 —नाशपाती और नींबू से काकटेल किस प्रकार बनती है ?

प्रश्न 89 —मसाले वाली चाय में मिलाई जाने वाली प्रमुख वस्तुओं का उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न 90 —धर्म दर्शन व विज्ञान से क्या अभिप्राय है ?

प्रश्न 91 —जैन धर्म और गणित विज्ञान का सम्बन्ध बताइये ?

प्रश्न 92 —जैन धर्म और वनस्पति विज्ञान का सम्बन्ध बताइये ?

प्रश्न 93 —विज्ञान पर धर्म नीति का अंकुश आवश्यक है इसको स्पष्ट करें ?

प्रश्न 94 —जैनागम में आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि किन प्रमुख युक्तियों के आधार पर की गयी है ?

प्रश्न 95 —न्याय–वैशैषिक दर्शन के ग्रंथों में आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि हेतु क्या क्या तर्क प्रमाण दिये गये हैं।

प्रश्न 96 —किन वैज्ञानिक तथ्यों द्वारा आत्मा को सिद्ध करने का तर्क संगत प्रयास किया गया है।

प्रश्न 97 —क्या कम्प्यूटर में आत्मा होती है ?

प्रश्न 98 —पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की सिद्धि हेतु कोई चार तर्क प्रस्तुत करें ?

प्रश्न 99 —'जन्मजात विषमता पूर्वजन्म के कर्मफल की द्योतक है' स्पष्ट करें ?

प्रश्न 100 —भारतीय संस्कृति में मृत्यु के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त शब्द किस प्रकार आत्मा और शरीर की भिन्नता प्रकट करते हैं ?

प्रश्न 101 —मानव के आचरण के नियमन हेतु कौन–कौन से नियम होते हैं ?

प्रश्न 102 —राजनियमों की क्या सीमाएँ हैं ?

प्रश्न 103 —धर्म नियमों की प्रभावकता किस प्रकार है ?

प्रश्न 104 —अनेकान्त के सिद्धान्त की प्रमुख उपयोगिता क्या है ?

प्रश्न 105 —अपरिग्रह का सिद्धान्त किस प्रकार उपयोगी है ?